इकाई 1 - संवृद्धि एवं विकास की अवधारणा
(Concept of Growth And Development)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)
1.2 उद्देश्य (Objectives)
1.3 आर्थिक वृद्धि एवं विकास का विश्लेषण (Analysis of Economic Growth and Development)
1.3.1 संवृद्धि एवं विकास के बारे में ऐतिहासिक विवेचन (Historical Discussion about Growth and Development)
1.3.2 आर्थिक विकास की परिभाषाएं (Definitions of Economic Development)
1.3.3 आर्थिक विकास एवं वृद्धि का अन्तर (Difference Between Economic Growth and Development)
1.3.4 आर्थिक विकास की प्रकृति (Nature of Economic Development)
1.4 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
1.5 सारांश (Summary)
1.6 शब्दावली (Glossary)
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
1.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस अध्याय में, हम आर्थिक विकास के परिभाषा, विकास की प्रकृति, और आर्थिक वृद्धि एवं विकास के बीच अंतर पर ध्यान केंद्रित करेंगे। आर्थिक विकास का अध्ययन विशेष रूप से उन अल्पविकसित देशों के लिए महत्वपूर्ण है जो आर्थिक प्रगति की दिशा में अग्रसर होने के प्रयास में हैं। इस परिप्रेक्ष्य में, हम उन अवधारणाओं और सिद्धांतों की समीक्षा करेंगे जो आर्थिक विकास को परिभाषित करती हैं और इसे कैसे मापा जाता है।

अध्याय की शुरुआत में, हम समझेंगे कि आर्थिक विकास क्या है और इसके अध्ययन की आवश्यकता क्यों पड़ी। आर्थिक विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए, हम यह देखेंगे कि कैसे विभिन्न अर्थशास्त्री इसे परिभाषित करते हैं और उनके दृष्टिकोण में क्या भिन्नताएं हैं। हम मायर और वाल्डविन, प्रोफेसर लुईस और प्रोफेसर विलियमसन जैसे विद्वानों की परिभाषाओं की समीक्षा करेंगे, ताकि आर्थिक विकास की सतत प्रक्रिया, वास्तविक राष्ट्रीय आय, और दीर्घकालिक वृद्धि के महत्वपूर्ण पहलुओं को समझा जा सके।

इसके बाद, हम आर्थिक वृद्धि और विकास के बीच अंतर को स्पष्ट करेंगे। आर्थिक वृद्धि आमतौर पर उत्पादन में वृद्धि से संबंधित होती है और एक स्वाभाविक प्रक्रिया मानी जाती है, जबकि आर्थिक विकास संरचनात्मक परिवर्तनों और संस्थागत सुधारों की आवश्यकता होती है। प्रोफेसर शुम्पीटर और श्रीमती उर्सला हिक्स के दृष्टिकोण को देखते हुए, हम समझेंगे कि कैसे आर्थिक विकास में अधिक सृजनात्मकता और क्रांतिकारी परिवर्तन शामिल होते हैं, जबकि आर्थिक वृद्धि में नियमित और क्रमिक परिवर्तन होते हैं।

अंत में, हम आर्थिक विकास की प्रकृति पर ध्यान देंगे और जानेंगे कि क्यों यह एक गत्यात्मक प्रक्रिया है। स्थैतिक और गत्यात्मक अर्थशास्त्र के सिद्धांतों को समझकर, हम यह पहचानेंगे कि आर्थिक विकास केवल दीर्घकालिक और सतत परिवर्तन के माध्यम से ही संभव है। इस तरह, इस अध्याय के माध्यम से, हम आर्थिक विकास की जटिलताओं और उसकी गत्यात्मक प्रकृति को बेहतर ढंग से समझ सकेंगे, जो हमें विकासशील देशों की समस्याओं और संभावनाओं को बेहतर ढंग से समझने में मदद करेगा।

1.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- ✓ आर्थिक विकास एवं आर्थिक वृद्धि क अर्थ समझ सकेंगे।
- ✓ विकास एवं वृद्धि को किस रूप में परिभाषित किया गया है यह समझ सकेंगे।
- ✓ आर्थिक विकास एवं आर्थिक वृद्धि में अन्तर समझ सकेंगे।
- ✓ स्थैतिक एवं प्रावैगिक अर्थशास्त्र की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- ✓ स्थैतिक अर्थशास्त्र एवं प्रावैगिक अर्थशास्त्र में अन्तर कर सकेंगे।

1.3 आर्थिक वृद्धि एवं विकास का विश्लेषण (Analysis of Economic Growth and Development)

विकास का अर्थशास्त्र अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। यद्यपि आर्थिक विकास के अध्ययन ने वाणिज्यवादियों एवं एडम स्मिथ से लेकर मार्क्स और केन्ज तक सभी अर्थशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया था, फिर भी, उनकी दिलचस्पी प्रमुख रूप से ऐसी समस्याओं में रही जिनकी प्रकृति विशेषतया स्थैतिक थी और जो अधिकतर सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं के पश्चिम यूरोपीय ढांचे से संबंध रखती थी। वर्तमान शताब्दी के पांचवे दशक में और विशेष रूप से दूसरे विश्व युद्ध के बाद ही अर्थशास्त्रियों ने अल्पविकसित देशों की समस्याओं के विश्लेषण की ओर ध्यान देना शुरू किया। विकास के अर्थशास्त्र में उनकी दिलचस्पी राजनैतिक पुनरूत्थान की उस लहर के द्वारा और भी बढ़ी, जो दूसरे विश्व युद्ध के बाद एशिया एवं अफ्रीका के राष्ट्रों में फैल गई थी। इन देशों के नेता शीघ्रता से आर्थिक विकास को बढ़ावा देना चाहते थे और साथ ही विकसित राष्ट्र भी यह महसूस करने लगे थे कि **"किसी एक स्थान की दरिद्रता प्रत्येक सम्पन्न स्थानों की समृद्धि के लिए खतरा है।"** इन दोनों बातों से अर्थशास्त्रियों की

रूचि इस विषय में और सजग हुई। इस सन्दर्भ में **मायर** एवं **बाल्डविन** ने कहा है कि ***'राष्ट्रों के धन के अध्ययन की अपेक्षा राष्ट्रों की दरिद्रता के अध्ययन की अधिक आवश्यकता है।'*** इस क्रम में अल्पविकसित देशों की विशाल दरिद्रता को दूर करने में धनी राष्ट्रों की रूचि किसी मानवहितवादी उद्देश्य को लेकर नहीं जागृत हुई है बल्कि धनी विकसित देशों द्वारा इन गरीब राष्ट्रों को अन्य गरीब देशों के मुकाबले में अधिक सहायता देने का वचन देकर प्रत्येक दशा में अल्पविकसित देशों का समर्थन एवं वफादारी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

आज के इस प्रगतिशील युग की मुख्य समस्या आर्थिक विकास की समस्या है। वर्तमान आर्थिक जगत में, आर्थिक विकास का विचार एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है एवं अधिकांश अर्थशास्त्रियों द्वारा किये जाने वाले चिन्तन का यह एक केन्द्र बिन्दु बना हुआ है। आर्थिक विकास जैसा कि इस शब्द से स्पष्ट होता है, का अर्थ है- ***'अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादकता के स्तर को बढ़ाना।'*** विस्तृत अर्थ में, आर्थिक विकास से अभिप्राय राष्ट्रीय आय में वृद्धि करके, निर्धनता को दूर करना एवं सामान्य जीवन स्तर में सुधार करना है।

1.3.1 आर्थिक वृद्धि एवं विकास के बारे में ऐतिहासिक विवेचन (Historical Discussion about Growth and Development)

विभिन्न अर्थशास्त्रियों में आर्थिक विकास की परिभाषा के लिए भिन्न-भिन्न आधारों को अपनाया है। अर्थशास्त्रियों के एक समूह ने आर्थिक विकास का अर्थ, कुल राष्ट्रीय वास्तविक आय में वृद्धि करना बताया है, तो दूसरी विचारधारा के लोगों ने प्रति-व्यक्ति वास्तविक आय में की जाने वाली वृद्धि को आर्थिक विकास की संज्ञा दी है। प्रथम सम्प्रदाय में प्रो. साइमन कुजनेट्स, मायर एवं बाल्डविन एवं ए. जे. यंगसन, आदि को सम्मिलित किया जाता है। द्वितीय सम्प्रदाय में प्रति व्यक्ति की आय में वृद्धि को, आर्थिक विकास मानने वाले अर्थशास्त्रियों में डा. बैंजमीन हिगीन्स, हार्वे लिवेस्टीन, डब्लू. आर्थर लेविस, प्रो. विलियमसन एवं जैकब वाइनर आदि प्रमुख रूप से है। हम आर्थिक विकास की कुछ प्रचलित परिभाषाओं की विवेचना निम्नवत प्रस्तुत कर रहे हैं-

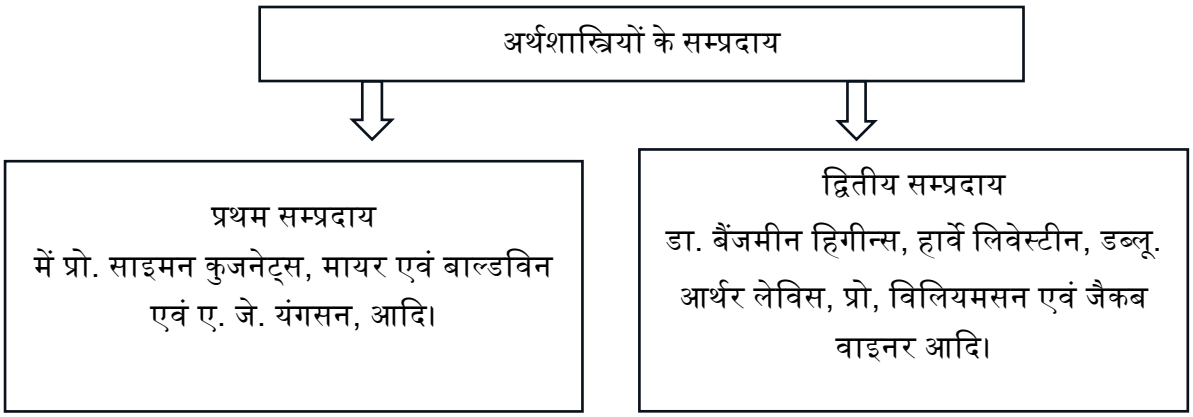

1.3.2. आर्थिक विकास की परिभाषाएं (Definitions of Economic Development)

विभिन्न विद्वानों ने आर्थिक विकास को निम्न प्रकार व्यक्त किया है-

मायर एवं **वाल्डविन** के मतानुसार ***"आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।"***

प्रो. लुईस के शब्दों में ***"आर्थिक विकास का अर्थ, प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि से लगाया जाता है।"***

प्रो. यंगसन के विचारानुसार ***"आर्थिक प्रगति से आशय किसी समाज से सम्बन्धित आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की शक्ति में वृद्धि करना है।"***

प्रो. विलियमसन के अनुसार *"आर्थिक विकास अथवा वृद्धि से उस प्रक्रिया का बोध होता है जिसके द्वारा किसी देश अथवा प्रदेश के निवासी उपलब्ध साधनों का उपयोग, प्रति व्यक्ति वस्तुओं के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि के लिए करते है।"*

प्रो. डी. ब्राइट सिंह की दृष्टि में **"आर्थिक वृद्धि से अभिप्राय, एक देश के समाज में होने वाले उस परिवर्तन से लगाया जाता है जो अल्प-विकसित स्तर से उच्च आर्थिक उपलब्धियों की ओर अग्रसर होता है।"**

उपरोक्त परिभाषाओं के विवेचन से स्पष्ट है कि जहां मायर एवं वाल्डविन ने आर्थिक विकास में वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने की बात कही है वहीं विलियमसन एवं लेविस द्वारा प्रति व्यक्ति उत्पादन अथवा आय में वृद्धि का समर्थन किया गया है लेकिन उपर वर्णित सभी परिभाषाओं में तीन महत्वपूर्ण बातें समान रूप से परिलक्षित होती हैं-

1. **विकास की सतत प्रक्रिया (Continuous Process of Development) -** आर्थिक विकास एक सतत प्रक्रिया है। जिसका अर्थ, कुछ विशेष प्रकार की शक्तियों के कार्यशील रहने के रूप में, लगाया जाता है। इन शक्तियों के एक अवधि तक निरन्तर कार्यशील रहने के कारण आर्थिक घटकों में सदैव परिवर्तन होते रहते हैं। यद्यपि इस प्रक्रिया के फलस्वरूप किसी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन तो होता है किन्तु इस प्रक्रिया का सामान्य परिणाम, राष्ट्रीय आय में वृद्धि होना है।
2. **वास्तविक राष्ट्रीय आय (Real National Income) -** आर्थिक विकास का सम्बन्ध वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि से है। ध्यान रहे, वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि से अभिप्राय किसी राष्ट्र द्वारा एक निश्चित काल में उत्पादित समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के विशुद्ध मूल्य में होने वाली वृद्धि से लगाया जाता है, न कि मौद्रिक आय की वृद्धि से। चूंकि आर्थिक विकास को मापने के लिये राष्ट्रीय आय को ही आधार माना जाता है इसलिये किसी देश का आर्थिक विकास तभी माना जाएगा जब उस देश में वस्तओं और सेवाओं का उत्पादन निरन्तर बढता रहे। कुल राष्ट्रीय उत्पादन में से मूल्य ह्रास अथवा मूल्य स्तर में हुए परिवर्तनों को समायोजित करने पर विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन प्राप्त हो जाता है।
3. **दीर्घकालीन अथवा निरन्तर वृद्धि (Long term or Continuous Growth)-** आर्थिक विकास का सम्बन्ध अल्पकाल से न होकर दीर्घकाल से होता है। दूसरे शब्दों में, विकास की यह प्रक्रिया एक या दो वर्षों में होने वाले अल्पकालीन परिवर्तनों से सम्बन्धित नहीं होती बल्कि 15 से 20 वर्षों के बीच दीर्घकालीन परिवर्तनों से सम्बन्धित होती है। इसलिये अगर किसी अर्थव्यवस्था में किन्हीं अस्थायी कारणों से देश की आर्थिक स्थिति में सुधार हो जाता है, जैसे अच्छी फसल अथवा अप्रत्याशित निर्यात होना, तो इसे आर्थिक विकास नहीं समझना चाहिए, क्योंकि आर्थिक विकास विशेष घटकों से प्रभावित होने वाला विकास है।

1.3.3 आर्थिक विकास एवं आर्थिक वृद्धि में अन्तर (Difference Between Economic Growth and Development)

अल्पविकसित देशों की समस्यायें उपयोग में न लाये गये साधानों के विकास से सम्बन्ध रखती है, भले ही उनके उपभोग भली-भांति ज्ञात न हों, जबकि उन्नत देशों की समस्यायें वृद्धि से सम्बन्धित रहती है, जिनके बहुत सारे साधन पहले से ज्ञात और किसी सीमा तक विकसित रहते हैं। प्राय: आर्थिक विकास एवं आर्थिक वृद्धि में कोई अंतर नहीं किया जाता है किन्तु **प्रो. शुम्पीटर** एवं **श्रीमती उर्सला हिक्स** ने इन दोनों शब्दों में भेद करने का प्रयास किया है। आर्थिक वृद्धि एक स्वाभाविक एवं सामान्य प्रक्रिया है जिसके लिए समाज को कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पडता है, इसके विपरीत आर्थिक विकास के लिये विशेष प्रयत्नों का किया जाना जरूरी है अर्थात आर्थिक विकास की प्रक्रिया के अंतर्गत अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तनों का होना आवश्यक है ताकि विद्यमान आर्थिक व्यवस्था के पूरे

स्वरूप को परिवर्तित किया जा सके। **प्रो. शुम्पीटर** के अनुसार ***"विकास स्थिर अवस्था में होने वाला एक ऐसा असतत एवं स्वत: परिवर्तन है जो पहले से स्थापित संतुलन की अवस्था (अर्थात् विद्यमान स्थिति) को हमेशा के लिये बदल देता है, जबकि इसके विपरीत 'वृद्धि' दीर्घकाल में घटित होने वाला एक क्रमिक एवं स्थिर गति वाला परिवर्तन है जो बचत और जनसंख्या की दर में होने वाली सामान्य वृद्धि का परिणाम होता है।"***

इस प्रकार जो उन्नति धीरे-धीरे आर्थिक व सामाजिक तत्वों में होने वाले परितर्वतनों के कारण होती है। उसे आर्थिक वृद्धि कहते हैं, परन्तु जब अर्थव्यवस्था में उन्नति की प्रबल इच्छा के तदन्तर, कुछ विशेष प्रयत्नों व क्रियाओं द्वारा क्रान्तिकारी परिवर्तन लाये जाते हैं तो उसके फलस्वरूप होने वाली उन्नति को, आर्थिक विकास कहा जाता है। इस सन्दर्भ में यह बात ध्यान योग्य है कि उन्नति के यह दोनों स्वरूप दीर्घकालीन तथ्य हैं। प्रो. शुम्पीटर ने आर्थिक विकास को आर्थिक वृद्धि की अपेक्षा अधिक उपयुक्त माना है।

इस सम्बन्ध में **श्रीमती उर्सला हिक्स** का कहना है कि आर्थिक वृद्धि शब्द का प्रयोग विकसित देशों के लिये किया जाता है क्योंकि इन देशों में उत्पादन के साधन पहले से ही ज्ञात एवं विकसित होते हैं। इसके विपरीत 'विकास' का सम्बन्ध अल्प-विकसित देशों से है जहां अशोषित व अर्द्ध शोषित साधनों के पूर्ण उपयोग व विकास की सम्भावनाएं विद्यमान होती हैं। इसी प्रकार **प्रो. बोन** ने भी आर्थिक विकास एवं आर्थिक वृद्धि में अन्तर स्थापित किया है। उनके मतानुसार ***"विकास के लिए विशेष निर्देशन, नियंत्रण, प्रयास व मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है और यह बात अल्प विकसित देशों के सम्बन्ध में ही ठीक बैठती है। इसके विपरीत आर्थिक वृद्धि का स्वभाव स्वेच्छानुसार होता है जो कि एक उन्नत स्वतंत्र उपक्रम वाली अर्थव्यवस्था का लक्षण है।"***

क्र. सं.	आर्थिक वृद्धि (Economic Growth)	आर्थिक विकास (Economic Development)
1.	स्वाभाविक क्रमिक व स्थिर गति वाला परिवर्तन	प्रेरित एवं असंगत प्रकति का परिवर्तन
2.	केवल उत्पादन में वृद्धि का होना	उत्पादन वृद्धि+प्राविधिक एवं संस्थागत परिवर्तनों का होना।
3.	आर्थिक व संस्थागत घटकों में परिवर्तन होने पर स्वत: ही घटित होती रहती है।	विकास के लिए संरचनात्मक परिवर्तनों का किया जाना आवश्यक है।
4.	वर्तमान साम्य की अवस्था में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं होता।	नई शक्तियों से नये मूल्यों का निर्माण किया जाता है एवं प्रचलित साम्य में सुधार लाये जाते हैं।
5.	आर्थिक उन्नति नियमित घटनाओं का परिणाम है।	आर्थिक विकास उन्नति इच्छा, विशेष निर्देशन व सृजनात्मक शक्तियों का परिणाम है।
6.	यह उन्नत देशों की समस्याओं का समाधान है।	यह अल्प विकसित देशों की समस्याओं को हल करने का एक नारा है।
7.	आर्थिक वृद्धि स्थैतिक साम्य की स्थिति है।	आर्थिक विकास गतिशील साम्य का एक रूप है।

प्रो. किण्डले बर्जर के मतानुसार ***"आर्थिक वृद्धि का अर्थ केवल उत्पादन वृद्धि से है जबकि आर्थिक विकास का अर्थ है उत्पादन वृद्धि के साथ प्राविधिक एवं संस्थागत परिवर्तन का होना है।"***

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आर्थिक वृद्धि की दशा में आर्थिक जीवन प्रत्येक वर्ष उन्हीं आर्थिक धाराओं से होकर इस प्रकार बहता चला जाता है जिस प्रकार एक प्राणी की धमनियों में रक्त का

संचालन होता है। दूसरे शब्दों में आर्थिक वृद्धि के अंतर्गत ज्यादा नवीनता का सृजन नहीं होता है बल्कि जो कुछ भी उन्नति होती है वह परम्परागत एवं नियमित घटनाओं का परिणाम होती है। इसके विपरीत आर्थिक विकास में नई शक्तियों को जन्म दिया जाता है और प्रचलित संतुलन में निरन्तर सुधार लाने के प्रयत्न किये जाते हैं आर्थिक वृद्धि एवं आर्थिक विकास में पाये जाने वाले प्रमुख अन्तरों की विवेचना निम्नवत है -

प्रो. एलन बरेरी ने आर्थिक वृद्धि एवं प्रगति में अंतर करने का प्रयत्न किया है। उनके मतानुसार 'प्रगति' से अभिप्राय प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से है। जबकि **'आर्थिक वृद्धि'** का अर्थ, जनसंख्या एवं कुल वास्तविक आय (राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय) दोनों में होने वाली बढ़ोत्तरी से लगाया जाता है। आर्थिक प्रगति, आर्थिक वृद्धि के बिना भी सम्भव हो सकती है अर्थात् जब (1) कुल आय के स्थिर रहने पर जनसंख्या में कमी हो जाये अथवा (2) कुल आय में कमी होने पर जनसंख्या में अपेक्षाकृत और अधिक कमी हो जाये तो यह **'प्रगति'** बिना वृद्धि के मानी जायेगी। ठीक इसी प्रकार आर्थिक वृद्धि आर्थिक प्रगति के बिना भी संभव हो सकती है। **प्रो. बरेरी** महोदय द्वारा आर्थिक वृद्धि के निम्न स्वरूप बताये गये हैं

1. **प्रगतिशील वृद्धि -** जब कुल आय में वृद्धि जनसंख्या मे होने वाली वृद्धि से अधिक हो।
2. **अधोगामी वृद्धि -** जब कुल आय में वृद्धि की अपेक्षा जनसंख्या मे होने वाली वृद्धि अधिक हो।
3. **स्थिर उन्नति -** जब कुल आय में वृद्धि व जनसंख्या में होने वाली वृद्धि दोनों समान दर से बढ़ रही हों।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यद्यपि आर्थिक वृद्धि एवं आर्थिक विकास में भेद करना सम्भव है किन्तु इस प्रकार का भेद व्यावहारिक दृष्टि से अधिक उपयोगी नहीं कहा जा सकता। अत: 'विकास' एवं 'वृद्धि' शब्द को पर्यायवाची मानते हुए इन्हें एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है। प्रो. पॉल ए. बरन का भी यह मत है।

1.3.4 आर्थिक विकास की प्रकृति (Nature of Economic Development)

आर्थिक विकास का अर्थ व परिभाषा जान लेने के बाद एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि आर्थिक विकास की प्रकृति क्या है? चूंकि आर्थिक विकास का स्वभाव अर्थशास्त्र के स्थैतिक एवं गत्यात्मक स्वरूपों पर आधारित है इसलिये यह अधिक उपयुक्त होगा कि पहले संक्षेप में इन दोनों शब्दों का अर्थ स्पष्ट कर लिया जाये।

1. स्थैतिक अर्थशास्त्र- (Static Economics)

स्थैतिक (Static) शब्द का सामान्य अर्थ है **'स्थिर रहना'** एवं डायनामिक (Dynamic) शब्द का अर्थ है **'गतिमान'** होना। इसी प्रकार भौतिक शास्त्र में भी स्थैतिक शब्द से अभिप्राय **'विश्राम की अवस्था'** से होता है। इसके विपरीत अर्थशास्त्र में स्थैतिक शब्द का आशय गतिहीन अवस्था से नहीं होता बल्कि उस अवस्था से होता है जिसमें परिवर्तन तो हों परन्तु इन परिवर्तनों की गति अत्यन्त कम हो।

प्रो. हैराड ने स्थैतिक शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी है- ***"एक स्थैतिक संतुलन कर अर्थ, विश्राम की अवस्था से नहीं होता बल्कि उस अवस्था से होता है जिसमें कार्य निरन्तर रूप से दिन-प्रतिदिन अथवा वर्ष-प्रति वर्ष हो रहा हो परन्तु उसमें वृद्धि अथवा कमी न हो रही हो। इस सक्रिय अपरिवर्तनीय प्रक्रिया को 'स्थैतिक अर्थशास्त्र' कहा जाता है।"***

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि स्थैतिक अवस्था कोई विश्राम या गतिहीनता की अवस्था नहीं है। इसमें क्षण प्रति क्षण परिवर्तन होते हैं। यह परिवर्तन इतनी कम गति से होते हैं कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हो पाता। स्थैतिक अवस्था **'गति मे स्थिरता'** की द्योतक है।

2. गत्यात्मक अथवा प्रावैगिक अर्थशास्त्र (Dynamic Economics)

परिवर्तन प्रकृति का निरन्तर नियत है। दिन के बाद रात, दु:ख के बाद सुख, धूप के बाद छांव एवं जन्म के बाद मृत्यु होना अवश्यम्भावी है। सत्यता तो यह है कि वास्तविक जीवन में पूर्ण स्थैतिक अवस्था कहीं देखने को नहीं मिलती है। परिवर्तनशीलता की इस प्रवृत्ति को ही गत्यात्मक अर्थशास्त्र कहते हैं।

प्रो. हैरोड के अनुसार **"प्रावैगिक (अर्थशास्त्र) का सम्बन्ध विशेषतया निरन्तर परिवर्तनों के प्रभाव एवं निर्धारित किये जाने वाले मूल्यों में परिवर्तन की दरों से होता है।"**

आपको स्पष्ट करना है कि **प्रो. जे. बी. क्लार्क** ने गत्यात्मक अर्थशास्त्र के पांच प्रमुख लक्षणों की ओर संकेत किया है। जो कि निम्नवत है- पहला जनसंख्या में वृद्धि,दूसरा पूँजी व पूँजी निर्माण में वृद्धि,तीसरा उत्पादन विधियों में सुधार,चौथा औद्योगिक संगठनों के स्वरूपों में परिवर्तनतथा पांचवा उपभोक्ता की आवश्यकताओं में वृद्धि ।

आर्थिक विकास की प्रकृति मूलतः गत्यात्मक है (The Nature of Economic Development is Basically Dynamic)

स्थैतिक एवं गत्यात्मक अर्थशास्त्र के उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि आर्थिक विकास मूलतः गत्यात्मक प्रकृति का है। जिस प्रकार गत्यात्मक अवस्था में पुराने साम्य टूट कर नये साम्य निर्मित होते रहते हैं ठीक उसी प्रकार विकास की पुरानी अवस्थाओं में परिवर्तन होने पर नई अवस्थाओं का निर्माण होता रहता है। आर्थिक विकास का उद्देश्य जहां एक ओर आर्थिक प्रगति की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन करना है वहीं दूसरी ओर दीर्घकाल में आर्थिक गतिविधियों का विश्लेषण करना भी है। ध्यान रहे आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादकता के ऊंचे स्तर को प्राप्त करना होता है जिसके लिये 'विकास प्रक्रिया' अर्थव्यवस्था को प्रगति के एक निचले साम्य से ऊपर उठाकर किसी अन्य उच्चस्तरीय साम्य के धरातल पर लाकर खड़ा कर देती है और यह आवश्यक भी है, अन्यथा आर्थिक विकास एक महत्वहीन विचारधारा बनकर रह जायेगा।

यहां यह लिखना आवश्यक होगा कि **प्रो. शुम्पीटर** द्वारा वर्णित आर्थिक वृद्धि की प्रकृति भी मूलरूप से गत्यात्मक ही है, परन्तु इसका झुकाव स्थैतिकता की ओर अधिक होता है। इसका कारण यह है कि आर्थिक वृद्धि के तद्न्तर होने वाले विकासमयी परिवर्तन बहुत धीमी गति से होते हैं, और इनमें किसी भी प्रकार की नवीनता का सृजन नहीं हो पाता है। आर्थिक विकास की गत्यात्मक प्रकृति की पुष्टि निम्न चित्र द्वारा भी की जा सकती है -

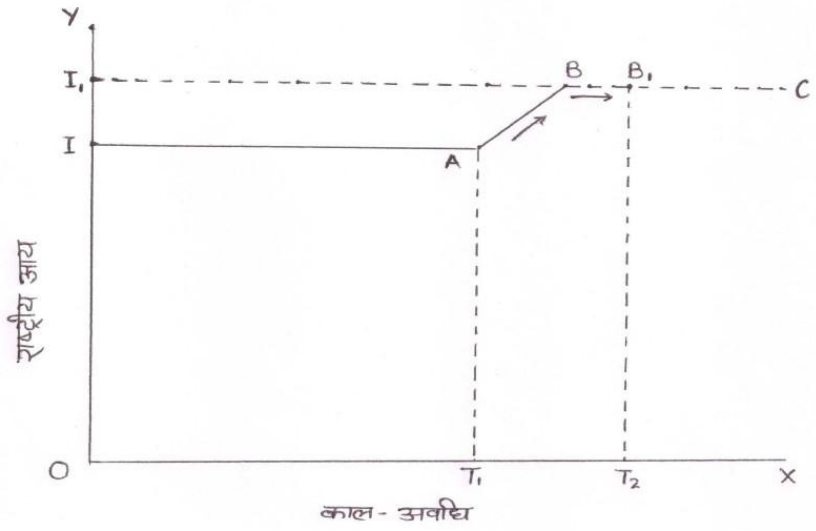

चित्र 1.1

चित्र में OX रेखा पर समय और OY रेखा पर राष्ट्रीय आय को दिखाया गया है। हमारी मान्यता यह है कि अर्थव्यवस्था अर्द्ध रोजगार की सन्तुलन स्थिति में चल रही है। इसी प्रकार राष्ट्रीय आय OI पूर्ण रोजगार के स्तर से नीचे मानी गई है क्योंकि O से T_1 अवधि तक राष्ट्रीय आय में कोई परिवर्तन नहीं होता ($OI=AT_1$) अर्थात् इसकी वृद्धि की दर शून्य ही बनी रहती है। राष्ट्रीय आय की इस स्थैतिक स्थिति पर रहते हुये अर्थात् अवधि के T_1 बिन्दु पर सरकार द्वारा किसी प्रकार का सार्वजनिक विनियोग का कार्यक्रम प्रारम्भ करने से गुणक क्रियाशील हो उठता है। जिससे कई महीनों तक राष्ट्रीय आय में होने वाली निरन्तर वृद्धि अन्त में जाकर अवधि T_2 पर OI के स्तर पर पहुंच जाती है जो कि इसका स्थिर व नवीन सन्तुलन बिन्दु है। अवधि T_1 और T_2 के बीच, राष्ट्रीय आय में I से I_1 तक जो वृद्धि हुई है वह धनात्मक अवश्य है परन्तु OI पर पहुंचने के बाद यह पुन: शून्य मानी जायेगी। इसका कारण यह है कि एक निश्चित साम्य बिन्दु पर पहुंचने के बाद विकास की प्रत्येक दर अगले पड़ाव (साम्य) की दृष्टि से स्थिर व शून्य ही होती है। जब कोई अर्थव्यवस्था साम्य की एक स्थिति से दूसरी उच्च स्तरीय अथवा निम्न स्तरीय साम्य स्थिति की ओर अग्रसर होती है तो साम्य परिवर्तन की गति का अध्ययन करने के लिए **'गत्यात्मक आर्थिक विश्लेषण'** का ही सहारा लेना पड़ता है।

वास्तव में, t_1 चित्र का उद्देश्य इसी तथ्य को स्पष्ट करता है। उपर्युक्त चित्र में सपाट रेखा AB उस मार्ग को दर्शाती है जिस पर राष्ट्रीय आय, अवधि के बिन्दु से T_{12} के बीच बढ़ती है अर्थात् साम्य परिवर्तन होता है। अतः स्पष्ट है आर्थिक विकास की प्रक्रिया की सही जानकारी करने हेतु आर्थिक गत्यात्मक विश्लेषण का अध्ययन जरूरी है। दूसरे शब्दों में आर्थिक विकास की प्रकृति मूलतः गत्यात्मक ही है।

1.4 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. आर्थिक विकास .....सतत प्रक्रिया है। (एक **या** तीन) ।
2. आर्थिक विकास का सम्बन्ध अल्पकाल से ना होकर .....से होता है। (अति अल्पकाल **या** दीर्घकाल)
3. श्रीमती उर्सला हिक्स ने आर्थिक वृद्धि शब्द का प्रयोग .....देशों लिए किया जाता है। (विकसित **या** विकासशील)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. आर्थिक विकास का अर्थ प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि से लगाया जाता है।
2. विकास एक सतत प्रक्रिया होती है।

1.5 सारांश (Summary)

उपयुक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते है कि आर्थिक वृद्धि का संबंध देश की प्रति व्यक्ति आय या उत्पादन में एक मात्रात्मक निरन्तर वृद्धि से है जो कि उसकी श्रम शक्ति, उपभोग, पूँजी और व्यापार की मात्रा में प्रसार के साथ होती है। दूसरी ओर, आर्थिक विकास एक विस्तृत धारणा है। जो कि आर्थिक आवश्यकताओं, वस्तुओं, प्रेरणाओं और संस्थाओं में गुणात्मक परिवर्तनों से संबंधित है। यह प्रौद्योगिकी और संरचनात्मक परिवर्तनों जैसे वृद्धि के अंतर्निहित निर्धारकों का वर्णन करता है। विकास में वृद्धि और ह्रास दोनों सम्मिलित होते हैं। एक अर्थव्यवस्था वृद्धि कर सकती है परन्तु यह विकास नहीं कर सकती क्योंकि प्रौद्योगिकी और संरचनात्मक परिवर्तनों के अभाव के कारण गरीबी, बेरोजगारी और असमानताएं निरंतर विद्यमान रहती है। परन्तु प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि में अभाव के कारण, विशेषकर जब जनसंख्या तीव्रता से बढ़ रही है तो आर्थिक वृद्धि के बिना विकास के बारे में सोचना कठिन है।

1.6 शब्दावली (Glossary)

- **आर्थिक विकास (Economic Development):** आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा दीर्घकाल में एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।
- **आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth):** आर्थिक संवृद्धि से मतलब किसी समयावधि में किसी अर्थव्यवस्था में होने वाली वास्तविक आय में वृद्धि से है। सामान्य रूप से यदि किसी देश की सकल घरेलू उत्पाद और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है तो कहा जाता है कि उस देश में आर्थिक संवृद्धि हो रही है।
- **राष्ट्रीय आय (National Income):** किसी देश का श्रम व पूँजी उसके प्राकृतिक साधनों पर क्रियाशील होकर प्रति वर्ष जिन भौतिक वस्तुओं एवं सेवाओं का शुद्ध वास्तविक उत्पादन करते हैं उनका मौद्रिक मूल्य राष्ट्रीय आय कहलाता है।
- **वास्तविक आय (Real Income):** मौद्रिक आय की क्रय शक्ति को वास्तविक आय कहते हैं।
- **प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income):** किसी देश की राष्ट्रीय आय को वहाँ की जनसंख्या से विभाजित करके प्रति व्यक्ति आय ज्ञात की जाती है।
- **स्थैतिक अर्थशास्त्र (Statistical Economics):** जिसमें कार्य निरंतर रूप से दिन प्रतिदिन हो रहा है। परंतु उसमें वृद्धि अथवा कमी ना हो रही हो। इस सक्रिय अपरिवर्तनयी प्रक्रिया को ही स्थैतिक अर्थशास्त्र कहते हैं।
- **प्रगतिशील वृद्धि (Progressive Growth):** जब कुल आय में वृद्धि जनसंख्या में होने वाली वृद्धि से अधिक हो।
- **अधोगामी वृद्धि (Degressive Growth):** जब कुल आय में वृद्धि की अपेक्षा जनसंख्या मे होने वाली वृद्धि अधिक हो।
- **स्थिर उन्नति (Steady Growth):** जब कुल आय में वृद्धि व जनसंख्या में होने वाली वृद्धि दोनों समान दर से बढ़ रही हों।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. एक 2. दीर्घकाल 3. विकसित

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. असत्य 2. सत्य

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- वी.सी. सिन्हा (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिहं (2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम. एल. झिंगन (2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
- आई. सी. धींगरा (1987), "इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया', एस0 चन्द्र नई दिल्ली।

1.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- Hicks, U. "Learning about Economic Development" O.E.R. Feb. 1957.

- Maddision, A. Economic Progress and Policy in Development Countries, 1970.
- C. P. Kindleberger and Herick, Economic Development, 2/e, 1965.
- Kuznets, Simon 'Economic Growth and Income Inequality, "AER. March 1955.
- Kuznets, Simon "Qualitative Aspects of Economic Growth of Nations: Distributions of Income by Size, "Economic Development and cultural Change, January 1963.
- Adelman, I. (1961) *Theories of Economic Growth and Development*, Stanford University Press, Stanford
- Galbraith, J.K (1969) *Economic Development*, Oxford University Press, London
- Hollis Chenery and T.N. Srinivasan (2007) *Handbook of Development Economics*, Vols. 1 & 2, Elsevier North Holland, UK
- Kindleberger, C. P. (1977) *Economic Development*, (3rd Edition), McGraw Hill, New York.
- Kuznets, Simon (1969) *Economic Growth & Structure*, Oxford & IBH Publishing Co., New Delhi
- Meier, G. M. (1995) *Leading Issues in Economic Development*, (6th Edition), Oxford University Press, New Delhi
- Mishra and Puri (2006) *Economic of Growth and Development*, Himalaya Publishing House, New Delhi
- Meier, G. M. and D. Seers (Eds.) (1987) *Pioneers in Development*, Oxford University Press, New York.
- Philip Arestis (1996) *Employment, Economic Growth and the Tyranny of the Market*, Edward Elgar Publishing Ltd, UK
- Taneja, M. L. and R. M. Myer (2013) *Economics of Development and Planning*, Vishal Publishing Co., Jalandhar
- Thirlwall, A P. (2003) *Growth and Development*, Palgrave Macmillan Press Ltd., New York
- Todaro, Michael P. and Stephen C. Smith (2014) *Economic Development*, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd., New Delhi
- Vaidyanathan, A. (2005) *India's Economic Reforms and Development*,

Academic Foundation, New Delhi

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. आर्थिक संवृद्धि की परिभाषा दीजिए। आर्थिक संवृद्धि की प्रकृति एवं महत्व का उल्लेख कीजिए।
2. क्या आपके विचार में आर्थिक संवृद्धि और आर्थिक विकास में अंतर है? आप इस अंतर को कैसे स्पष्ट करेंगे? इस संदर्भ में श्रीमती उर्सला हिक्स एवं शुम्पीटर के विचारों की विवेचना कीजिए।
3. "आर्थिक विकास आर्थिक शक्तियों के वृत्तीय प्रवाह की दिशाओं में आकस्मिक एवं अनैरन्तर्यपूर्ण (Discontinuous) परिवर्तन अथवा सन्तुलन स्थिति में झकझोर उत्पन्न करने वाली हलचल है जो वर्तमान सन्तुलन स्थिति को परिवर्तित और विस्थापित कर देती है।" व्याख्या कीजिए।

इकाई 2 - विकास का मापन
(Measurement of Development)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)
2.2 उद्देश्य (Objectives)
2.3 आर्थिक विकास का मापन (Measurement of Economic Development)
2.3.1 सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं आर्थिक विकास (Gross National Product and Economic Development)
2.3.2 सकल राष्ट्रीय उत्पाद के माप में कठिनाइयाँ (Difficulties in Measuring Gross National Product (GNP)
2.3.3 प्रति व्यक्ति आय एवं आर्थिक विकास (Per Capita Income and Economic Development)
2.4 आर्थिक कल्याण एवं आर्थिक विकास (Economic Welfare and Economic Development)
2.5 मूलभूत आवश्यकतायें एवं आर्थिक वृद्धि (Basic Needs and Economic Growth)
2.6 मानव विकास संकेतक एवं आर्थिक विकास (Human Development Indicator and Economic Development)
2.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
2.8 सारांश (Summary)
2.9 शब्दावली (Glossary)
2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)
2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
2.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)
2.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

आर्थिक संवृद्धि एवं आर्थिक विकास को कैसे मापा जाय? मापदण्ड के रूप में क्या आधार चुना जाय? इसके सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद हैं। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने इसको मापने के सम्बन्ध में अनेक मापदण्डों की चर्चा की है। वाणिकवादी अर्थशास्त्री किसी देश में सोने एवं चांदी की मात्रा को ही आर्थिक संवृद्धि का सूचक मानते थे। एडम स्मिथ ने किसी भी देश के आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में उस देश की उत्पादन शक्ति, तकनीकी ज्ञान, श्रमिकों की दशा एवं विशिष्टीकरण को स्वीकार किया। जे. एस. मिल ने अर्थव्यवस्था में सहकारिता के स्तर एवं कार्ल मार्क्स ने समाजवाद की स्थापना को ही आर्थिक विकास की चरम अवस्था माना। मायर एवं बाल्डबिन जैसे अर्थशास्त्री आर्थिक संवृद्धि एवं आर्थिक विकास को वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि को दीर्घकालीन प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हैं तो दूसरी और रोस्टोव जैसे अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि एवं हिगिन्स, वी. के. आर. बी. राव सभी लोग उत्पादकता की वृद्धि को ही आर्थिक संवृद्धि का मापक मानते हैं।

2.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- ✓ आर्थिक विकास को समझ सकेंगे।
- ✓ कुल राष्ट्रीय उत्पाद की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- ✓ प्रति व्यक्ति आय की अवधारणा को आप समझ सकेंगे।
- ✓ आर्थिक कल्याण के विषय में आप जान पाएंगे।
- ✓ सामाजिक सूचकों का आर्थिक विकास में क्या योगदान है ये भी समझ सकेंगे।

2.3 आर्थिक विकास का मापन (Measurement of economic development)

'आर्थिक विकास' आज के इस प्रगतिशील युग का एक बहुचर्चित विषय है और प्रत्येक राष्ट्र विकास की इस दौड़ में दूसरों से आगे निकलने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील है। पर सवाल यह उठता है कि आर्थिक विकास की कसौटी अथवा मानदण्ड क्या हो? अर्थात् किसी देश में आर्थिक विकास हो रहा है अथवा नहीं, इस बात का किस प्रकार पता लगाया जाए? आर्थिक विकास की माप हेतु विकासवादी अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्नलिखित मापदण्ड प्रस्तुत किए गए हैं-

2.3.1 सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं आर्थिक विकास (Gross National Product (GNP) and Economic Development)

कुछ अर्थशास्त्री सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि को ही आर्थिक विकास का सूचक मानते हैं। उनके अनुसार, ***"आर्थिक विकास को समय की किसी दीर्घावधि में एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के रूप में मापा जाए।"*** इस कथन को नीचे चित्र 2.1 से स्पष्ट किया गया है। क्षैतिज अक्ष पर समय को लिया गया है जबकि अनुलंब अक्ष पर राष्ट्रीय आय में परिवर्तन समय के साथ दिखाया गया है। रेखा Ya देश A में राष्ट्रीय आय के स्तर को और Yb देश B में राष्ट्रीय आय के स्तर को दर्शाती है। समय T तक देश A में राष्ट्रीय आय में वृद्धि देश B में विकास परियोजनाएं शुरू होने से राष्ट्रीय आय की तीव्रता से वृद्धि होती है। जैसा कि चित्र 2.1 में E बिन्दु के बाद Yb > Ya से स्पष्ट हो रहा है। इस संदर्भ में **प्रोफेसर मॉयर एवं बाल्डबिन** ने ठीक ही कहा है कि ***"आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में दीर्घकाल में वृद्धि होती है।"***

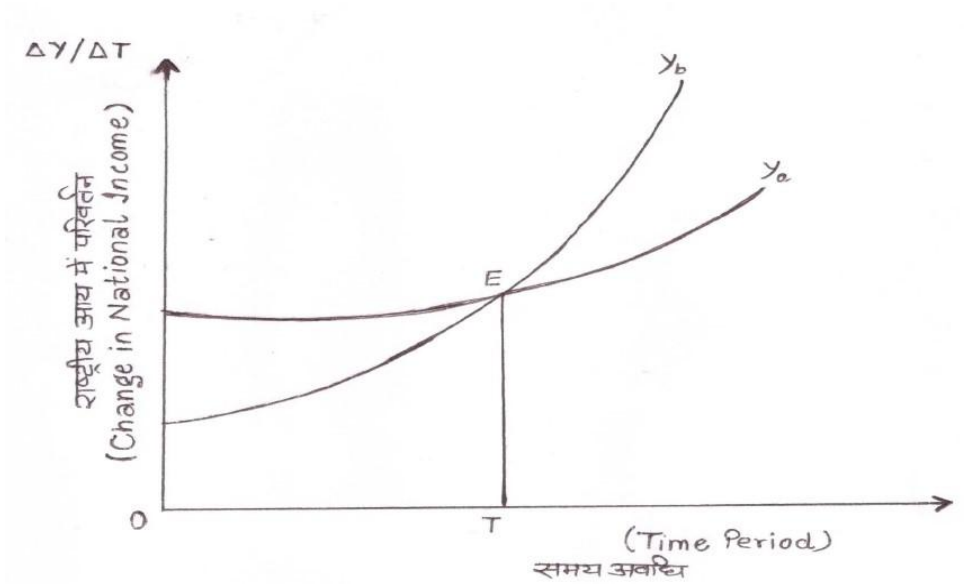

चित्र 2.1

2.3.2 सकल राष्ट्रीय उत्पाद के माप में कठिनाइयाँ (Difficulties in measuring Gross National Product (GNP)

किसी भी देश की राष्ट्रीय आय का आगणन करना एक जटिल समस्या है जिसमें निम्नलिखित कठिनाइयां पाई जाती हैं।

1. **राष्ट्र की परिभाषा (Definition of Nation)-** प्रथम कठिनाई **'राष्ट्र'** की परिभाषा है। हर राष्ट्र की अपनी राजनीतिक सीमाएं होती है परन्तु राष्ट्रीय आय में राष्ट्र की सीमाओं से बाहर विदेशों में कमाई गई देशवासियों की आय भी सम्मिलित होती है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय के दृष्टिकोण से 'राष्ट्र' की परिभाषा राजनैतिक सीमाओं को पार कर जाती है। इस समस्या को सुलझाना कठिन है।
2. **कुछ सेवाएं (Some Services) -**राष्ट्रीय आय सदैव मुद्रा में ही मापी जाती है परन्तु बहुत सी वस्तुएं और सेवाएं ऐसी होती हैं जिनका मुद्रा में मूल्यांकन करना मुश्किल होता है, जैसे किसी व्यक्ति द्वारा अपने शौक के लिए चित्र बनाना, मां का अपने बच्चों को पालना आदि। इसी प्रकार जब एक फर्म का मालिक अपनी महिला सेक्रेटरी से विवाह कर लेता है तो उसकी सेवाएं राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं होती जबकि विवाह से पहले वह राष्ट्रीय आय का भाग होती हैं। ऐसी सेवाएं राष्ट्रीय आय में सम्मिलित ना होने से राष्ट्रीय आय कम हो जाती है।
3. **दोहरी गणना (Double Counting)-** राष्ट्रीय आय की परिगणना करते समय सबसे बड़ी कठिनाई दोहरी गणना की होती है। इसमें एक वस्तु या सेवा को कई बार गिनने की आशंका बनी रहती है। यदि ऐसा हो तो राष्ट्रीय आय कई गुना बढ़ जाती है। इस कठिनाई से बचने के लिए केवल अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं को ही लिया जाता है जो आसान काम नहीं है।
4. **अवैध क्रियाएं (Illegal Actions)**- राष्ट्रीय आय में अवैध क्रियाओं से प्राप्त आय सम्मिलित नहीं की जाती जैसे जुए या चोरी से बनाई गई शराब से आय। ऐसी सेवाओं में वस्तुओं का मूल्य होता है और वे उपभोक्ता की आवश्यकताओं को भी पूरा करती है परन्तु इनको राष्ट्रीय आय में शामिल न करने से राष्ट्रीय आय कम रह जाती है।
5. **अन्तरण भुगतान(Transfer Payments)-** राष्ट्रीय आय में अन्तरण भुगतानों को

सम्मिलित करने की कठिनाई उत्पन्न होती है। पेन्शन, बेरोजगारी भत्ता एवं सार्वजनिक ऋणों पर व्याज व्यक्तियों को प्राप्त होते हैं पर इन्हें राष्ट्रीय आय में सम्मिलित किया जाए या न किया जाये, एक कठिन समस्या है। एक ओर तो ये प्राप्तियां व्यक्तिगत आय का भाग हैं। दूसरी ओर ये सरकारी व्यय हैं। यदि इन्हें दोनों ओर सम्मिलित किया जाए तो राष्ट्रीय आय में बहुत वृद्धि हो जाएगी। इस कठिनाई से बचने के लिए इन्हें राष्ट्रीय आय में से घटा दिया जाता है।

6. **वास्तविक आय (Real Income) -** मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय की परिगणना वास्तविक आय का न्यून आगणन करती है। इसमें किसी वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया में किए गए अवकाश का त्याग शामिल नहीं होता। दो व्यक्तियों द्वारा अर्जित की गई आय समान हो सकती है परन्तु उसमें से यदि एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा अधिक घंटे काम करता है तो यह कहना कुछ ठीक ही होगा कि पहले की वास्तविक आय कम बताई गई है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय वस्तु के उत्पादन की वास्तविक लागत को नहीं लेती।

7. **सार्वजनिक सेवाएं (Public Services) -** राष्ट्रीय आय की परिगणना में बहुत सी सार्वजनिक सेवाएं भी ली जाती हैं, जिनका ठीक-ठीक हिसाब लगाना कठिन होता है। पुलिस एवं सैनिक सेवाओं में छावनियां में ही विश्राम करती है। इसी प्रकार सिंचाई एवं शक्ति परियोजनाओं से प्राप्त लाभों का मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय में योगदान का हिसाब लगाना भी एक कठिन समस्या है।

8. **पूँजीगत लाभ या हानियाँ (Capital Gains or Losses) -** जो संपत्ति मालिकों को उनकी पूँजी परिसंपत्तियों के बाजार मूल्य में वृद्धि,कमी या मांग में परिवर्तनों से होती है वे सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी.) में शामिल नहीं की जाती है क्योंकि ऐसे परिवर्तन चालू आर्थिक क्रियाओं के कारण नहीं होता है। जब पूँजी या हानियां चालू प्रवाह या उत्पादकीय क्रियाओं के अप्रवाह के कारण होते हैं तो उन्हें सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी.) में सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार पूँजी लाभों या हानियों की राष्ट्रीय आय में आगणन करने की बहुत कठिनाई होती है।

9. **माल सूची परिवर्तन (Inventory Changes) -** सभी माल सूची परिवर्तन चाहे ऋणात्मक हों या धनात्मक सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी.) में शामिल किये जाते हैं। परन्तु समस्या यह है कि फर्मे अपनी माल सूचियों को उनकी मूल्य लागतों के हिसाब से दर्ज करती हैं न कि उनकी प्रतिस्थापन लागत के हिसाब से। जब कीमतें बढ़ती है तो मूल्य सूचियों के अंकित मूल्य में लाभ होता है। इसके विपरीत कीमतें गिरने पर हानि होती है। अत: सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी) का सही हिसाब लगाने के लिए माल सूची समायोजन की आश्यकता होती है जो कि बहुत कठिन काम है।

10. **मूल्य हास (Depreciation) -** जब पूँजी मूल्य हास को सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी.) में से घटा दिया जाता है तो शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (एन. एन. पी.) प्राप्त होती है। परन्तु मूल्य हास की गणना की समस्या बहुत मुश्किल है। उदाहरणार्थ यदि कोई ऐसी पूँजी परिसम्पत्ति है जिसकी प्रत्याशित आयु बहुत अधिक जैसे 50 वर्ष है, तो उसकी चालू मूल्य हास दर का हिसाब लगा सकना बहुत कठिन होगा और यदि परिसम्पत्तियों की कीमतों में प्रत्येक वर्ष परिवर्तन होता जाए, तो यह कठिनाई और बढ़ जाती है। माल सूचियों के विपरीत मूल्य हास मूल्यांकन कर पाना बहुत कठिन और जटिल तरीका होता है।

11. **हस्तान्तरण भुगतान (Transfer Payments) -** राष्ट्रीय आय के माप में हस्तान्तरण भुगतानों की समस्या भी पाई जाती है। व्यक्तियों को पेंशन, बेकारी भत्ता और सार्वजनिक ऋण पर ब्याज प्राप्त होता है। परन्तु इन्हें राष्ट्रीय आय में शामिल करने की कठिनाई उत्पन्न

होती है। एक ओर तो यह अर्जन व्यक्तिगत आय का भाग है और दूसरी ओर यह सरकारी व्यय है।

2.3.3 प्रति व्यक्ति आय एवं आर्थिक विकास (Per Capita income and Economic Development)

दूसरी परिभाषा का सम्बन्ध लम्बी अवधि में **प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि** से है। **'''प्रति *व्यक्ति वास्तविक आय" या "उत्पादन में वृद्धि"*** के रूप में आर्थिक विकास की परिभाषा देने में अर्थशास्त्री एकमत हैं। **बुकैनन** एवं **एलिस (Buchanan and Ellis)** के अनुसार ***"विकास का अर्थ पूँजी निवेश के उपयोग द्वारा अल्पविकसित क्षेत्रों की वास्तविक आय संभाव्यताओं का विकास करने के लिए ऐसे परिवर्तन लाना और ऐसे उत्पादक स्रोतों का बढ़ाना है, जो प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बढ़ाने की संभावना प्रकट करते है।"*** इन परिभाषाओं का उद्देश्य इस बात पर बल देना है कि आर्थिक विकास के लिए वास्तविक आय में वृद्धि की दर जनसंख्या में वृद्धि की दर से अधिक होनी चाहिए। परन्तु फिर भी कठिनाईयों रह जाती हैं।

यहाँ यह भी संभव है कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप जन साधारण के वास्तविक जीवन स्तर में सुधार न हो। यह संभव है कि जब प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बढ़ जाती है, तो प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा कम होती जा रही हो। हो सकता है कि लोग बचत की दर बढ़ा रहे हों, या फिर सरकार स्वयं इस बढ़ी हुई आय को सैनिक अथवा अन्य उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल कर रही हों। वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के बावजूद जनसाधारण की गरीबी का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि बढ़ी हुई आय बहुसंख्यक गरीबों के पास जाने के बजाए मुट्ठी भर अमीरों के हाथ में जा रही हो। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार की परिभाषा उन प्रश्नों को गौण बना देती है जो समाज के ढांचे, उनकी जनसंख्या के आकार एवं बनावट, उसकी संस्थाओं एवं संस्कृति साधन-स्वरूप और समाज के सदस्यों में उत्पादन के समान वितरण से सम्बन्ध रखते हैं।

प्रति व्यक्ति आय आगणन की कठिनाइयां -

अल्प विकसित देशों में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के माप एवं उन्नत देशों की प्रति व्यक्ति आय से उनकी तुलना करने में भी बड़ी कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं। जिनके कारण नीचे दिये जा रहे हैं-

1. **अमौद्रिक क्षेत्र (Non-Monetary Sector) -** अल्पविकसित देशों मे एक महत्वपूर्ण अमौद्रिक क्षेत्र होता है जिसके कारण राष्ट्रीय आय का हिसाब लगाना कठिन है। कृषि क्षेत्र में जो उत्पादन होता है, उसका बहुत- सा भाग या तो वस्तुओं में विनिमय कर लिया जाता है या फिर व्यक्तिगत उपभोग के लिए रख लिया जाता है। इसके परिणाम स्वरूप प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय कम बताई जाती है।
2. **व्यावसायिक विशिष्टीकरण का अभाव (Lack of Occupational Specialization) -** ऐसे देशों में व्यावसायिक विशिष्टीकरण का अभाव होता है। जिससे वितरणात्मक हिस्सों के द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना करना कठिन हो जाता है। उपज के अतिरिक्त किसान ऐसी अनेक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, जैसे अण्डे, दूध, वस्त्र आदि जिन्हें प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के अनुमान में कभी शामिल नहीं किया जाता।
3. **अशिक्षा (Illiteracy) -** अल्प विकसित देशों में अधिकतर लोग अशिक्षित होते हैं और हिसाब-किताब नहीं रखते, और यदि हिसाब किताब रखें भी तो अपनी सही आय बताने को तैयार नहीं होते। ऐसी स्थिति में मोटे तौर पर ही अनुमान लगाया जा सकता हैं जो कि दोषपूर्ण होता है।
4. **गैर-बाजार लेन-देन (Non-Market Transactions) -** राष्ट्रीय आय के आगणन में केवल उन

वस्तुओं और सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनका वाणिज्य में प्रयोग होता है। परन्तु अल्पविकसित देशों में गांवों में रहने वाले लोग प्राथमिक वस्तुओं से उपभोग-वस्तुओं का निर्माण करते हैं और बहुत से खर्चों से बच जाते हैं। वे अपनी झोपड़ियां, वस्त्र एवं अन्य आवश्यक वस्तुएं स्वयं बना लेते हैं। इस प्रकार अल्पविकसित देशों में अपेक्षाकृत कम वस्तुओं का मार्केट के मार्ग से प्रयोग होता है और इसीलिये वे प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के आगणन में भी शामिल नहीं होता है।

5. **वास्तविक आय (Real Income) -** मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय की गणना वास्तविक आय का न्यून अनुमान करती है। इसमें किसी वस्तु के उत्पादन की वास्तविक लागत, प्रयत्न या उत्पादन की प्रक्रिया में किये गये अवकाश का त्याग शामिल नहीं होता। दो व्यक्तियों द्वारा अर्जित की गयी आय समान हो सकती है परन्तु यदि उनमें एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा अधिक घंटे काम करता है, तो यह कहना कुछ ठीक नहीं होगा कि पहले की वास्तविक आय कम बतायीं गयी है।
6. **कीमत परिवर्तन (Price Change) -** कीमत स्तर में परिवर्तन के कारण जो परिवर्तन उत्पादन में होते हैं, उसका उचित माप राष्ट्रीय आय के आगणन में नहीं कर पाते। कीमत स्तर के परिवर्तन को मापने के लिए काम में लाये जाने वाले सूचकांक भी केवल मोटे तौर पर अंदाजे से बनाये जाते हैं। फिर भिन्न-भिन्न देशों में कीमत स्टार भी भिन्न होते है। प्रत्येक देश में उपभोक्ताओं की इच्छाएं और अधिमान भी भिन्न होते हैं। इसीलिये विभिन्न देशों के प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के आंकड़े प्रायः भ्रांतिजनक एवं अतुलनीय होते हैं।
7. **भ्रमपूर्ण आंकड़े (Confusing Data) -** अविश्वसनीय एवं भ्रमपूर्ण आंकड़ों के कारण अल्पविकसित देशों के प्रति व्यक्ति आय के हिसाब किताब में उसके कम या अधिक बताये जाने की संभावना रहती है। इन सब सीमाओं के बावजूद, विभिन्न देशों के आर्थिक प्रगति के स्तर के लिए सबसे अधिक व्यापक रूप से किया जाने वाला माप प्रति व्यक्ति आय ही है। फिर भी, अल्पविकास सूचकों के रूप में केवल प्रति व्यक्ति आय आगणनों का कोई मूल्य नहीं है।

2.4 आर्थिक कल्याण एवं आर्थिक विकास (Economic Welfare and Economic Growth)

विभिन्न देशों में यह प्रवृत्ति भी होती है कि आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से आर्थिक विकास की परिभाषा दी जाये। ऐसी प्रक्रिया को आर्थिक विकास माना जाये जिससे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होती है और उसके साथ साथ असमानताओं का अंतर कम होता है एवं समस्त जनसाधारण के अधिमान संतुष्ट होते हैं। इसके अनुसार आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तियों के वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग में वृद्धि होती है।

ओकन और **रिचर्डसन (Ocon and Richardson)** के शब्दों में **'आर्थिक विकास'** भौतिक समृद्धि में ऐसा अनवरत दीर्घकालीन सुधार है। जो कि वस्तुओं और सेवाओं के बढ़ते हुए प्रवाह में प्रतिबिम्बित समझा जा सकता है।

इसकी सीमाएँ –

यह परिभाषा भी सीमाओं से मुक्त नहीं है।

प्रथम, यह आवश्यक नहीं है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि का अर्थ **'आर्थिक कल्याण'** में सुधार ही हो। ऐसा संभव हैं कि वास्तविक राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने से अमीर अधिक अमीर हो रहे हों या गरीब और अधिक गरीब। इस प्रकार केवल आर्थिक कल्याण में वृद्धि से ही आर्थिक विकास नहीं होता, जब कि राष्ट्रीय आय का वितरण न्यायपूर्ण न माना जाये।

दूसरे, आर्थिक कल्याण को मापते समय कुल उत्पादन की संरचना का ध्यान रखना पड़ता है जिसके कारण प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है, और यह उत्पादन कैसे मूल्यांकित हो रहा है? बढ़ा हुआ

कुल उत्पादन पूँजी पदार्थो से मिलकर बना हो सकता है और यह भी उपभोक्ता वस्तुओं के कम उत्पादन के कारण।

तीसरे, वास्तविक कठिनाई इस उत्पादन के मूल्यांकन में होती है। उत्पादन तो मार्केट कीमतों पर मूल्यांकित होता है, जबकि आर्थिक कल्याण वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन या आय में वृद्धि से मापा जा सकता है। वास्तव में, आय के विभिन्न वितरण से कीमतें भिन्न होंगी और राष्ट्रीय उत्पादन का मूल्य एवं संरचना भी भिन्न होंगे।

चौथे, कल्याण के दृष्टिकोण से हमें केवल यह नहीं देखना चाहिए कि क्या उत्पादित किया जाता है। बल्कि यह भी कि उसका उत्पादन कैसे होता है? वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन के बढ़ने से संभव है कि अर्थव्यवस्था में वास्तविक लागतों एवं पीड़ा और त्याग जैसी सामाजिक लागतों में वृद्धि हुई हो। उदाहरणार्थ उत्पादन में वृद्धि अधिक घंटे एवं श्रम-शक्ति की कार्यकारी अवस्थाओं में गिरावट के कारण हुई हो।

पांचवे, हम प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि को भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि के बराबर नहीं मान सकते। विकास की इष्टतम दर निश्चित करने के लिए हमें आय-वितरण, उत्पादन की संरचना, रूचियों,वास्तविक लागतों एवं ऐसे अन्य सभी विशिष्ट प्रयत्नों के सम्बन्ध में मूल्य-निर्णय करने पडेंगे, जो कि वास्तविक आय में कुल वृद्धि से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिये मूल्य निर्णयों से बचने और सरलता के लिए अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति वास्तविक राष्ट्रीय आय को आर्थिक विकास का माप बनाकर प्रयोग करते हैं।

अंतिम, सबसे बड़ी कठिनाई व्यक्तियों के उपभोग को भार देने की है। वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग व्यक्तियों की रूचियों और अधिमानों पर निर्भर करता है। जो भिन्न-भिन्न होते हैं। इसीलिये व्यक्तियों का कल्याण सूचक बनाने में समान भार लेना सही नहीं है।

2.5 मूलभूत आवश्यकतायें एवं आर्थिक वृद्धि (Basic Needs and Economic Growth)

आर्थिक विकास के माप के रूप में राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय की कीमत से असंतुष्ट होकर, कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास को सामाजिक अथवा मूलभूत (आधारभूत) आवश्यकता सूचक के रूप में मापना प्रारम्भ किया है। जिसके अनेक कारण निम्नवत हैं-

1950 एवं 1960 के दशकों में (GNP) में वृद्धि एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि को आर्थिक विकास का सूचक माना जाता रहा। 1960 के विकास दशक के लिए संयुक्त राष्ट्र ने एक प्रस्ताव द्वारा अल्पविकसित देशों के लिए GNP में 5 प्रतिशत की वृद्धि दर का लक्ष्य निश्चित किया। इस लक्ष्य दर को प्राप्त करने के लिए अर्थशास्त्रियों ने शहरीकरण के साथ तीव्र औद्योगिकरण का सुझाव दिया। उनका यह मत था कि GNP की वृद्धि से प्राप्त लाभ अपने आप रोजगार और आय के सुअवसरों ने वृद्धि के रूप में गरीबों तक धीरे-धीरे पहुंच जायेंगे। इस प्रकार, विकास के इस माप के अनुसार गरीबी, बेरोजगारी और आय असमानताओं की समस्याओं को गौण महत्व दिया गया।

रोस्टोव द्वारा प्रतिपादित विकास के इस एक रेखीय वृद्धि की अवस्थाओं के पथ को नर्से के कम बचतों, छोटी मार्केटों एवं जन संख्या दबावों के कुचक्रों ने और शक्ति प्रदान की। यह समझा गया कि इन कुचक्रों को दूर करने के लिए प्राकृतिक शक्तियां मुक्त हो जायेंगी। जो अर्थव्यवस्था में ऊंची वृद्धि लायेंगी। इसके लिए **रोडान** ने **'बड़ा धक्का'** **नर्क्से** ने '**संतुलित विकास', हर्षमैन** ने '**असंतुलित विकास'** एवं **लीबन्स्टीन** ने '**क्रान्तिक न्यूनतम प्रयत्न सिद्धान'** का सुझाव दिया। परन्तु अल्पविकसित देशों में विकास के लिए पूँजी, तकनीकी ज्ञान विदेशी विनिमय आदि के रूप में **'लुप्त अंशों'** को प्रदान करने के लिए अंर्तराष्ट्रीय सहायता पर अधिक बल दिया गया। विदेशी सहायता के तर्क के पीछे **'दोहरा अंतराल मॉडल'** एवं आयत स्थानापन्नता द्वारा औद्योगिकीकरण था ताकि अल्पविकसित देश धीरे-धीरे विदेशी सहायता का परित्याग कर दें।

डेविड मोरवैट्ज के अनुमान यह बताते हैं कि इस विकास कूटनीति के अपनाने से विकासशील देशों

में 1950-75 के बीच GNP एवं प्रति व्यक्ति आय में 3.4 प्रतिशत प्रति वर्ष औसत दर से वृद्धि हुई। परन्तु यह वृद्धि दर ऐसे देशों की गरीबी, बेरोजगारी एवं असमनताओं को दूर करने में असफल रहीं।

आर्थिक विकास के सूचक के रूप में GNP के विरूद्ध अर्थशास्त्रियों के बीच आलोचनायें 1960 की दशाब्दी से बढ़ती जा रही थी। परन्तु सार्वजनिक तौर से प्रथम प्रहार **प्रो. सिराज** ने 1969 में नई दिल्ली में आयोजित **Eleventh World Conference of the society for International Development** के अध्यक्षीय भाषण में किया। उसने समस्या को इस प्रकार प्रस्तुत किया, ***"एक देश के विकास के बारे में पूछे जाने वाले प्रश्न हैं - गरीबी का क्या हो रहा है? बेरोजगारी का क्या हो रहा है? असमानता को क्या हो रहा है? यदि यह तीनों ऊंचे स्तरों से कम हुए हैं तो बिना संशय के उस देश के लिए विकास की अवधि रही है। यदि इन मुख्य समस्याओं में से एक या दो अधिक बुरी अवस्था में हो जा रही हो, या तीनों ही निम्नता में हों तो परिणाम को विकास कहना आश्चर्यजनकहोगा चाहे प्रति व्यक्ति आय दुगनी हुई हो।"*** उस समय के विश्व बैंक के गवर्नर **रोबर्ट मैक्कनमारा** ने भी फरवरी 1970 में विकास शील देशों में GNP वृद्धि दर को आर्थिक विकास के सूचक की विफलता को इन शब्दों में स्वीकार किया- ***"प्रथम विकास दशाब्दी में GNP में 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर के विकास उद्देश्य को प्राप्त किया गया था। यह मुख्य उपलब्धि थी। परन्तु GNP में सापेक्षतया ऊंची वृद्धिदर विकास में संतोष जनक उन्नति न लाई। विकासशील विश्व में, दशाब्दी के अंत में, कुपोषण सामान्य है, शिशु मृत्यु दर ऊंची है, अशिक्षा विस्तृत है, बेरोजगारी स्थानिक रोग है जो और बढ़ जाता है, धन और आय का पुनर्वितरण अत्यन्त विषम है।"***

विकास की GNP प्रति व्यक्ति मापों से असंतुष्ट होकर, 1970 की दशाब्दी से आर्थिक विचारकों ने विकास प्रक्रिया की गुणवत्ता की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया है। जिसके अनुसार वे तीन महत्वपूर्ण विन्दुओं रोजगार को बढ़ाने, गरीबी को दूर करने एवं आय और धन की असमानताओं को कम करने के लिए मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं की कूटनीति पर बल देते हैं। इसके अनुसार, जनसाधारण को स्वास्थ्य, शिक्षा, जल, खुराक, कपड़े, आवास, काम आदि के रूप में मूलभूत भौतिक आवश्यकताएं और साथ ही सांस्कृतिक पहचान एवं जीवन और कार्य में उद्देश्य एवं सक्रिय भाग की भावना जैसी अभौतिक आवश्यकताएं प्रदान करना है। मुख्य उद्देश्य गरीबों को मूलभूत मानवीय आवश्यकताएं प्रदान करके उनकी उत्पादकता बढ़ाना और गरीबी दूर करना है। यह तर्क दिया जाता है कि मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं का प्रत्यक्ष प्रबन्ध करने से गरीबी पर थोड़े संसाधनों द्वारा और थोड़े समय में प्रभाव पड़ता है। शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य मूलभूत आवश्यकताओं के रूप में मानव संसाधन विकास के उत्पादकता के उच्च स्तर प्राप्त होते हैं। ऐसा विशेषतौर से वहां होता है जहां ग्रामीण भूमिहीन अथवा शहरी गरीब पाये जाते हैं एवं जिनके पास दो हाथ और काम करने की इच्छा के सिवाय कोई भौतिक परिसम्पत्तियां नहीं होती हैं। इस कूटनीति के अंतर्गत मूलभूत न्यूनतम आवश्यकताओं के अलावा, रोजगार के सुअवसरों, पिछड़े वर्गों के उत्थान एवं पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर बल देना और उचित कीमतों एवं दक्ष वितरण प्रणाली द्वारा आवश्यक वस्तुओं को गरीब वर्गों के लिए जुटाना है।

सामाजिक सूचक-

अब हम सामाजिक आर्थिक विकास के सूचकों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं जो कि निम्नवत हैं-

अर्थशास्त्री सामाजिक सूचकों में तरह-तरह की मदों को शामिल कर लेते हैं। इसमें से कुछ आगतें हैं जैसे पौष्टिकता मापदण्ड या अस्पताल के बिस्तरों की संख्या या जनसंख्या के प्रतिव्यक्ति डॉक्टर, जबकि दूसरी कुछ मदें इन्हीं के अनुरूप निर्गतें हो सकती हैं, जैसे नवजात शिशुओं की मृत्यु दर के अनुसार स्वास्थ्य में सुधार, रोग दर, आदि। सामाजिक सूचकों को प्राय: विकास के लिए मूल आवश्यकताओं के संदर्भ में लिया जाता है। मूल आवश्यकताएं, गरीबों की मूल मानवीय आवश्यकताओं को उपलब्ध करा कर गरीबी उन्मूलन पर केन्द्रित होती है। स्वास्थ्य, शिक्षा, खाद्य, जल, स्वच्छता, एवं आवास जैसी प्रत्यक्ष सुविधाएं थोड़े से

मौद्रिक संसाधनों एवं अल्पावधि में ही गरीबी पर प्रभाव डालती है। जबकि GNP प्रति व्यक्ति आय की कूटनीति उत्पादकता बढ़ाने एवं गरीबों की आय बढ़ाने के लिए दीर्घावधि में स्वत: ही कार्य करती है। मूल आवश्यकताओं की पूर्ति उच्च स्तर पर उत्पादकता एवं आय बढ़ाती है, जिन्हें शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं जैसे मानव विकास के साथ साधनों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

प्रो. हिक्स और **स्ट्रीटन** मूलभूत आवश्यकताओं के लिए छ: सामाजिक सूचकों पर विचार करते हैं:

क्रम संख्या	मूल आवश्यकता	सूचक
1.	स्वास्थ्य	जन्म के समय जीवन की प्रत्याशा।
2.	शिक्षा	प्राथमिक शिक्षा विद्यालयों में जनसंख्या के प्रतिशत के अनुसार दाखिले द्वारा साक्षरता की दर।
3.	खाद्य	प्रति व्यक्ति कैलोरी आपूर्ति ।
4.	जल आपूर्ति	शिशु मृत्यु दर एवं पीने योग्य पानी तक कितने प्रतिशत जनसंख्या की पहुंच।
5.	स्वच्छता	शिशु मृत्यु दर एवं स्वच्छता प्राप्त जनसंख्या का प्रतिशत।
6.	आवास	कोई नहीं।

सामाजिक सूचकों की विशेषता यह है कि वे लक्ष्यों से जुड़े और वे लक्ष्य हैं मानव विकास। आर्थिक विकास इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक साधन है। सामाजिक सूचकों से पता चलता है कि कैसे विभिन्न देश वैकल्पिक उपयोगों के बीच अपने GNP का आवंटन करते हैं। कुछ शिक्षा पर अधिक एवं अस्पतालों पर कम खर्च करना पसंद करते हैं। इसके साथ साथ इनसे बहुत सी मूल आवश्यकताओं की उपस्थिति, अनुपस्थिति अथवा कमी के बारे में जानकारी मिलती है।

उपयुक्त सूचकों में प्रतिव्यक्ति कैलोरी आपूर्ति को छोड़कर शेष सूचक निर्गत सूचक हैं। नि:सन्देह नवजात शिशुओं की मृत्युदर, स्वच्छता एवं साफ पेय जल सुविधाओं दोनों की सूचक है क्योंकि नवजात शिशु पानी से होने वाले रोगों का शीघ्र शिकार हो सकते हैं। नवजात शिशु मृत्युदर भोजन की पौष्टिकता से भी संबंधित है। इस प्रकार शिशुओं की मृत्युदर 6 में से 4 मूल आवश्यकताओं को मापती है। कुछ सामाजिक सूचकों से संबंधित विकास का एक सामान्य सूचक बनाने में कुछ समस्यायें उत्पन्न होती हैं जो कि निम्नवत है।

प्रथम, ऐसे सूचक में शामिल किए जाने वाली मदों की संख्या और किस्मों के बारे में अर्थशास्त्रियों में एक मत नहीं है। उदाहरणार्थ, हेगन और संयुक्त राष्ट्र की सामाजिक विकास के लिए अन्वेषण संस्था 11 से 18 मदों का प्रयोग करते हैं। जिनमें से बहुत कम समान हैं। दूसरी ओर **डी. मौरिस** तुलनात्मक अध्ययन के लिए विश्व के 23 विकसित और विकासशील देशों से संबंधित **'जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक'** बनाने के लिए केवल तीन मदों अर्थात् जीवन प्रत्याशा, शिशु मृत्युदर और साक्षरता दर को लेता है।

दूसरे, विभिन्न मदों को भार देने की समस्या उत्पन्न होती है जो देश के सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक ढांचे पर निर्भर करती है। यह व्यक्तिपरक बन जाती है। मौरिस तीनों सूचकों को समान भार प्रदान करता है जो विभिन्न देशों के तुलनात्मक विश्लेषण के लिए सूचक का महत्व कम कर देता है। यदि प्रत्येक देश अपने सामाजिक सूचकों की सूची का चुनाव करता है और उनको भार प्रदान करता है तो उनकी अन्तर्राष्ट्रीय तुलनाएं उतनी ही गलत होंगी जितने की GNP के आंकड़े होते है।

तीसरे, सामाजिक सूचक वर्तमान कल्याण से सम्बन्धित होते हैं न कि भविष्य के कल्याण से।

चौथे, अधिकतर सूचक आगत है न कि निर्गत जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य आदि। अन्तिम, उनमें मूल्य निर्णय पाए जाते हैं। अतः मूल निर्णयों से बचने और सुगमता के लिए अर्थशास्त्री एवं यू. एन. के संगठन

GNP एवं प्रति व्यक्ति आय को आर्थिक विकास के माप के रूप में प्रयोग करते हैं।

मूलभूत आवश्यकताएं बनाम आर्थिक वृद्धि (Basic Needs versus Economic Growth)

क्या आर्थिक वृद्धि और मूलभूत आश्यकताओं की कूटनीति के बीच कोई विवाद है? जैसा कि पहले कहा गया है, मूलभूत आवश्यकताएं लक्ष्यों से संबंधित हैं और आर्थिक वृद्धि इन लक्ष्यों को पाने का साधन। अतः आर्थिक वृद्धि एवं मूलभूत आवश्यकताओं में कोई विरोध नहीं है। **गोल्डस्टीन** ने शिशु मृत्युदर के माध्यम से आर्थिक वृद्धि एवं मूलभूत आवश्यकताओं के बीच गहरा संबंध पाया है। वह आर्थिक विकास को कुशलता का नाम देता है। उसके अनुसार, शिशुओं की मृत्यु दर को 5 प्रतिशत से कम रखने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए GDP का स्तर आवश्यक है। जो देश अपने GDP का एक बड़ा हिस्सा अथवा प्रतिशत स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च करते हैं, वे अधिक कुशल हैं, क्योंकि इस प्रकार वे शिशु मृत्युदर को घटाने में सफल हो जाते हैं। **गोल्डस्टीन** ने पाया कि कुछ विकासशील देशों ने अपने थोड़े से संसाधनों को शिक्षा एवं स्वास्थ्य की मूल आवश्यकताओं को पूर्ण करने में लगाया। अपने विभिन्न वर्गों के अध्ययन में उसने स्कूलों में दाखिले एवं महिलाओं में स्वास्थ्य के साथ-साथ शिक्षा की प्राप्ति को लिया। उसने पाया कि कुछ विकासशील देशों ने बहुत थोड़े संसाधनों को शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसी मूलभूत आवश्यताओं को पूरा करने के लिए लगाया। वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि जो विकासशील देश प्राथमिक स्कूली शिक्षा एवं महिला शिक्षा पर अधिक ध्यान देते हैं, वे इन मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कम खर्च करके भी अधिक विकास कर सकते हैं।

फाई, रैनिस एवं **स्टूअर्ट (Fai, Raines and Stuart)** के अनुसार विकासशील देशों में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति पर खर्च करने से उत्पादक निवेश मे कमी नहीं होती। उन्होंने नौ देशों का सैम्पल लिया। उनके अध्ययन से पता चलता है कि ताईवान, दक्षिण कोरिया, फिलीपीन्स, उरूग्वे एवं थाईलैण्ड ने मूलभूत आवश्यकताओं का अच्छा प्रबन्ध किया एवं उनके निवेश अनुपात भी औसत से अधिक थे। जबकि कोलम्बिया, क्यूबा, जर्मका एवं श्रीलंका ने अच्छी मूलभूत आवश्यकताओं के साथ-साथ ओसत निवेश अनुपात रखें। उन्होंने नौ विभिन्न देशों के मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में किए गए कार्य को औसत से अधिक एवं औसत से कम आर्थिक वृद्धि के साथ भी संबद्ध किया। इनमें से ताइवान, दक्षिण कोरिया एवं इंडोनेशिया ऐसे है जिन्होंने मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ औसत से अधिक आर्थिक वृद्धि की। ब्राजील ने मात्र न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा किया एवं औसत से अधिक आर्थिक वृद्धि भी की। जबकि दूसरी ओर सोमाली, श्रीलंका, क्यूबा एवं मिस्र की आर्थिक वृद्धि दर औसत से कम रही। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मूलभूत आवश्यकताओं के अधिक प्रावधान करने से आर्थिक वृद्धि भी होती है। नॉरमन हिक्स ने भी अपने अध्ययन में यह दर्शाया है कि कई विकासशील देशों की आर्थिक वृद्धि की दर मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति द्वारा बढ़ी है।

आइये अब दीर्घकाल में GNP प्रति व्यक्ति GNP मूलभूत आवश्यकताओं एवं कल्याण धारणाओं की आर्थिक विकास पर प्रभावों की तुलना करें। चित्र 2.2 में तीन पर्थ A_1, A_2 एवं A_1 दिखाए गए हैं। इसमें समय को क्षैतिज अक्ष पर रखा गया है एवं विकास की दर को अनुलंब अक्ष पर गरीबों में प्रति व्यक्ति उपभोग द्वारा मापा गया है। पथ A_1 का संबंध GNP/ प्रति व्यक्ति GNP कूटनीति से है। स्पष्ट है कि आरंभ में गरीबों में प्रति व्यक्ति उपभोग समय T_1 तक घटता है क्योंकि तेजी से उद्योगीकरण एवं शहरीकरण से गरीबी, बेरोजगारी एवं असमानता में वृद्धि होती है। लेकिन जब GNP प्रति व्यक्ति GNP में वृद्धि के लाभ गरीबों तक रिस कर पहुंचते हैं तो उनके रोजगार एवं आय में वृद्धि होती है एवं समय T_1 के बाद प्रति व्यक्ति उपभोग में भी वृद्धि होनी आरंभ हो जाती है।

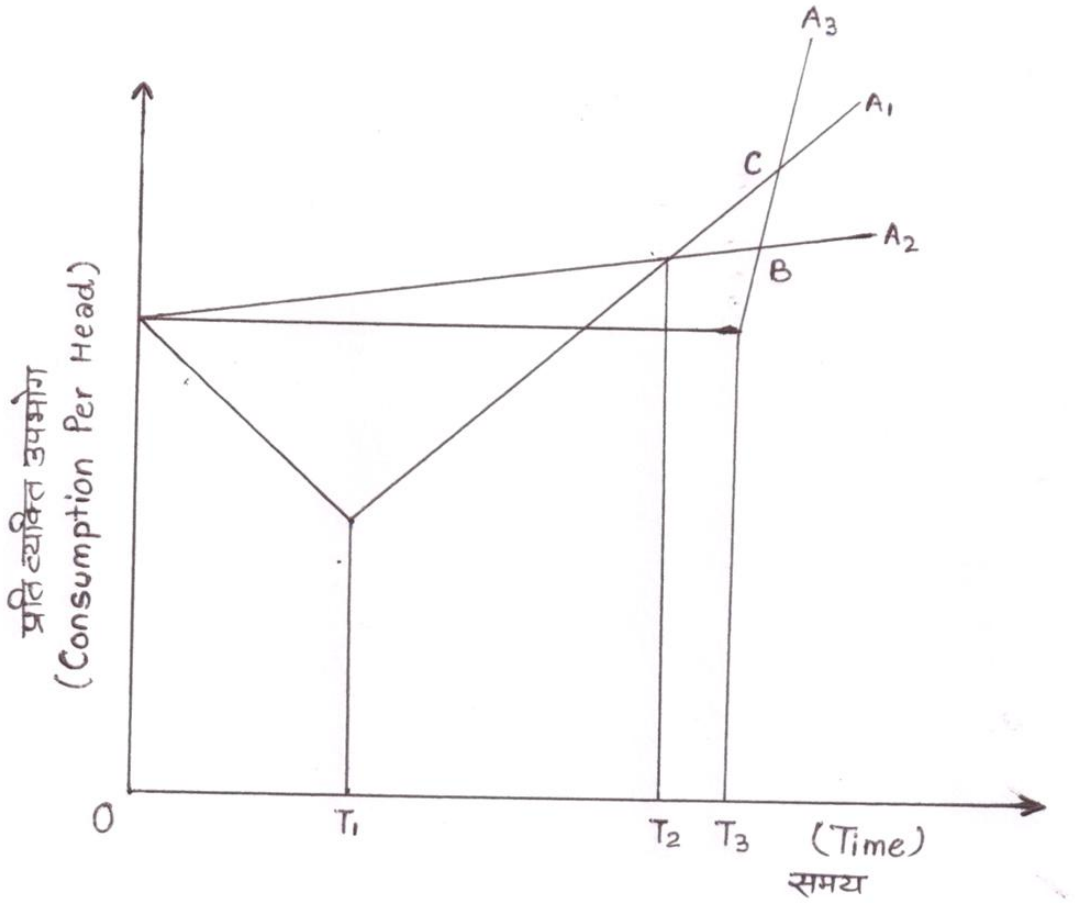

चित्र 2.2

पथ A_2 का संबंध कल्याण धारणा से है जो गरीबों में प्रति व्यक्ति उपभोग की धीमी वृद्धि को दर्शाता है। यह पथ समय T_2 से पथ A_1 से पीछे रहता है। पथ A_3 मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति से संबंधित है। आरम्भ में गरीबों में उपभोग के मूल न्यूनतम वर्तमान स्तर को प्राप्त करने को उच्च प्राथमिकता दी जाती है जो समय T_3 तक कल्याण एवं GNP प्रति व्यक्ति GNP के उपभोग स्तरों से कम हो सकता है। जब एक दीर्घ अवधि में गरीबों की मूलभूत आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं एवं उनकी उत्पादकता एवं आय के स्तरों में वृद्धि हो जाती है तो समय T_3 से आगे आर्थिक वृद्धि तेजी से होने लगती है। पथ A_3 पहले पथ A_2 को B बिन्दु पर पीछे छोड़ देता है एवं बाद में C बिन्दु पर पथ A_1 को। इस प्रकार मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति GNP प्रति व्यक्ति GNP और कल्याण की आर्थिक विकास की कूटनीति से बेहतर है।

2.6 मानव विकास संकेतक एवं आर्थिक विकास (Human Development Indicator and Economic Development)

अर्थशास्त्रियों ने एक, दो अथवा अधिक संकेतकों को लेकर मानव विकास के सम्मिश्र सूचकों के निर्माण के लिए मूल आवश्यकताओं के सामाजिक सूचकों को मापने का प्रयास किया है। अब मौरिस द्वारा विकसित जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक एवं संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा विकसित मानव विकास सूचक (HDI) का अध्ययन करेंगे।

1.जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक (Physical quality of Life Indicator)

मौरिस डी. मौरिस (Maurice D. Maurice) ने 1979 में 23 विकसित एवं विकासशील देशों के जीवन की सम्मिश्र भौतिक गुणवत्ता का तुलनात्मक अध्ययन किया। उसने शिशु मृत्युदर, एक वर्ष की आयु में जीवन सम्भाव्यता एवं 15 वर्ष की आयु में मूल शिक्षा जैसे तीन सूचक घटकों को, लोगों की मूल आवश्यकताओं को पूरा करने के कार्य के मूल्यांकन के लिए जोड़ा। इस सूचक से बहुत से सूचकों, जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल, पोषण एवं स्वच्छता आदि का पता चलता है। प्रत्येक सूचक के तीनों घटकों को शून्य से 100 तक के पैमाने पर रखा गया है जिसमें शून्य को मन्दतम एवं 100 को सर्वोत्तम प्रदर्शन के रूप में परिभाषित किया गया है। PQLI सूचक की गणना तीनों घटकों को समान भार देते हुए औसत निकाल कर की जाती है एवं सूचक को भी शून्य से 100 के पैमाने पर रखा गया है। मौरिस के अनुसार तीनों सूचकों में से प्रत्येक सूचक परिणाम को मापता है न कि आगतों को, जैसे आय। प्रत्येक सूचक आवंटन प्रभावों के प्रति संवेदनशील है अर्थात् इन सूचकों में वृद्धि अथवा सुधार से लोगों को उसी अनुपात में मिलने वाले लाभ का पता चलता है। परन्तु कोई भी सूचक विकास के किसी स्तर विशेष पर निर्भर नहीं है। प्रत्येक सूचक की अन्तर्राष्ट्रीय तुलना की जा सकती है। सन् 1950 में गेबन की शिशु मृत्युदर 229 प्रति हजार को मन्दत्तम मानते हुए मौरिस ने इसे शून्य पर स्थिर कर दिया, एवं इसकी उच्चतम सीमा को सन् 2000 तक 7 प्रति हजार का लक्ष्य बनाया गया। इसी प्रकार, वियतनाम में एक वर्ष की आयु पर जीवन संभव्यता सन् 1950 में 38 वर्ष ली। इसे मौरिस ने जीवन संभव्यता सूचक पर शून्य का स्थान दिया। उसकी उच्चतम सीमा पुरूषों में एवं महिलाओं को मिलाकर सन् 2000 तक 77 वर्ष रखी गई। अंत में, 15 वर्ष की आयु में शिक्षा की दर को शिक्षा सूचक बनाया गया। **मौरिस** ने इसके सहसंबंध निम्न अनुसार प्रस्तुत किए हैं-

(N= 150)	शिशु मृत्युदर	जीवन संभव्यता
एक वर्ष की आयु में जीवन की संभव्यता	0.919	0.897

एक वर्ष की आयु में जीवन संभव्यता एवं शिशु मृत्युदर के बीच सहसंबंध का गुणांक उच्च डिग्री एवं ऋणात्मक है। इस प्रकार का सहसंबंध शिक्षा एवं शिशु मृत्युदर के बीच है अर्थात् शिक्षा के साथ शिशु मृत्युदर में गिरावट आती है। शिक्षा एवं जीवन संभव्यता के बीच गुणांक ऊंची डिग्री का धनात्मक सह-संबंध दर्शाता है अर्थात् शिक्षा के साथ-साथ जीवन संभव्यता में भी वृद्धि होती है। मौरिस के अनुसार एक वर्ष की आयु में जीवन संभाव्यता एवं शिशु मृत्युता जीवन की भौतिक गुणवत्ता के बहुत अच्छे सूचक हैं और यही बात शिक्षा एवं जीवन संभाव्यता के बारे में कही गई है। वास्तव में शिक्षा सूचक विकास की संभाव्यता को व्यक्त करता है :

देश	PQLI			औसत वार्षिक GNP प्रति व्यक्ति वृद्धि दर %
	1950	1960	1970	
भारत	14	30	40	1.8
श्रीलंका	65	75	80	1.9
इटली	80	87	92	5.0
संयुक्त राज्य अमेरिका	89	91	93	2.4

उपर्युक्त तालिका से पता चलता है कि भारत जिसे मोरिस **'बास्केट केस'** कहता है, अपनी GNP प्रति व्यक्ति 1.8 की धीमी वृद्धि के बावजूद 1950 से 1970 तक की दो दशकों की अवधि में इसके PQLI में 14 से 40 तक की धीमी, परन्तु कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। उसी अवधि के दौरान श्रीलका का PQLI भारत से कहीं अधिक था, हालांकि इसकी औसत GNP प्रति व्यक्ति वृद्धि दर (1.9%) लगभग भारत में

बराबर रही। अमेरिका एवं इटली दोनों विकसित देशों का PQLI काफी ऊंचा था। परन्तु इटली की प्रति व्यक्ति GNP दर (5%) अमेरिका (2.4%) से लगभग दुगुनी थी। इस संदर्भ में मौरिस ने देखा की प्रति व्यक्ति GNP दर एवं PQLI के बीच कोई स्वत: तालमेल नहीं है। वास्तव में सामाजिक संबंधों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति, पोषण संबंधी दर्जा, लोगों का स्वास्थ्य, शिक्षा एवं पारिवारिक वातावरण, किसी समाज के PQLI को निर्धारित करते हैं। इसके अतिरिक्त उच्च POLI को बनाने एवं बनाए रखने में सहायक संस्थागत प्रबंध के निर्माण में बहुत समय लग जाता है।

इसकी सीमाएं-

मॉरिस ने यह स्वीकार किया है कि PQLI मूल आवश्यकताओं को केवल एक सीमा तक ही माप सकता है। यह GNP का परिपूरक है न कि विस्थापक। यह आर्थिक वृद्धि को मापने का काम भी नहीं करता है। इसके अतिरिक्त यह सामाजिक और आर्थिक संगठन के बदलते हुए ढांचे को भी नहीं दर्शाता। इसी प्रकार यह कुल कल्याण को भी नहीं मापता है। फिर भी यह जीवन की गुणवत्ताओं को मापता है जो गरीबों के लिए बहुत जरूरी है।

मॉरिस द्वारा PQLI के प्रयुक्त तीन चरों को मनगढ़ंत भार देने के कारण मौरिस की आलोचना हुई। **प्रो.** मायर के अनुसार PQLI द्वारा लिए गए गैर-आय वाले घटक महत्वपूर्ण हैं परन्तु उतने ही महत्वपूर्ण समग्र गरीबी सूचकांक को प्राप्त करने के लिए समूहन के वितरण, संवेदनशील तरीके, आय एवं उपभोग के आंकड़े भी होते हैं।

इन सीमाओं के बावजूद PQLI अल्पविकसित देशों के विशेष क्षेत्रों का पता लगाने एवं सामाजिक नीतियों की असफलता अथवा उपेक्षा के शिकार समाज के विभिन्न वर्गों की जानकारी प्राप्त करने में काम आ सकता है। यह उस सूचक की ओर इंगित करता है जहां तुरंत कार्यवाही की आवश्यकता है। सरकार ऐसी नीतियां अपना सकती है जिससे PQLI में भी शीघ्र वृद्धि हो एवं आर्थिक विकास भी बढ़े। 1990 में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) अपनी वार्षिक मानव विकास रिपोर्ट को मानव विकास सूचक (HDI) के रूप में प्रस्तुत कर रहा है। HDI तीन सामाजिक सूचकों का एक मिश्रित सूचक है। जीवन सभाव्यता, व्यस्क शिक्षा एवं स्कूली वर्ष। इसमें वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP का भी ध्यान रखा जाता है। अतः HDI तीन आधारभूत पहलुओं में उपलब्धियों का एक मिश्रित सूचक है। जिसमें एक लम्बा व स्वस्थ जीवन, ज्ञान एवं उत्कृष्ट जीवन स्तर सम्मिलित है। किसी देश के HDI का मूल्य निकालने के लिए तीन सूचकों को लिया जाता है।

1. **दीर्घायु (Longevity)-** इसे जन्म के समय जीवन की संभाव्यता द्वारा मापा जाता है। जो कि 25 वर्ष से 85 वर्ष के बीच होती है।
2. **शैक्षिक योग्यताओं की प्राप्ति (Achievement of Education Qualifications)-** जिसे व्यस्क शिक्षा (दो तिहाई भार) एवं प्राथमिक, माध्यमिक व क्षेत्रीय विद्यालयों में उपस्थित अनुपातों (एक तिहाई भार) के मिश्रण के रूप में मापा जाता है। उदाहरणार्थ, व्यस्क शिक्षा: 0% से 100% एवं दाखिलों का मिश्रित अनुपात 0 % से 100%।
3. **जीवन स्तर (Standard of Living)-** जिसे क्रय शक्ति समता (Purchasing Power Parity) पर आधारित वास्तविक प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (GDP) द्वारा मापा जाता है। HDI जीवन की संभाव्यता सूचक, शैक्षिक प्राप्तियां सूचक एवं समायोजित वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP सूचक का सरल औसत सूचक है। इसकी गणना इन तीनों संकेतकों के योग को 3 से विभाजित कर निकाली

जाती है। इसमें प्रत्येक चर का न्यूनतम एवं अधिकतम मूल्य स्थिर है, जिसे घटाकर शून्य (0) एवं एक (1) के बीच पैमाने पर रखा गया है एवं प्रत्येक देश इस पैमाने के किसी न किसी बिन्दु पर आता है। प्रत्येक देश का HDI मूल्य यह दर्शाता है कि उसे अपने कुछ परिभाषित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कितना प्रयास करना है 85 वर्ष के औसत जीवन की अवधि, सभी के लिए शिक्षा की उपलब्धि एवं उत्कृष्ट जीवन स्तर के आधार पर HDI एक दूसरे के संबंध में विभिन्न देशों के क्रम (rank) तय करता है। किसी भी देश का HDI क्रम विश्व आवंटन के बीच ही तय होता है। उदाहरणार्थ, यह क्रम प्रत्येक विकसित एवं विकासशील देशों से संबंधित अपने HDI मूल्य पर आधारित है। जिसके लिए उस देश द्वारा HDI न्यूनतम मूल्य शून्य (0) से HDI अधिकतम मूल्य एक (1) तक प्रयास किए गए। ऐसे देश जिनका HDI मूल्य 0.5 से कम है उन्हें निम्नस्तर के मानव विकास एवं 0.5 से 0.8 मूल्य वाले देशों को मध्यम एवं 0.8 से ऊपर HDI मूल्य वाले देश उच्च स्तर में गिने जाते हैं। HDI में देशों को उनके प्रति व्यक्ति GDP के आधार पर भी क्रमबद्ध किया जाता है।

इसकी सीमाएं-

HDI की भी अपनी सीमाएं हैं। **प्रथम**, केवल तीन सूचक ही मानव विकास के सूचक नहीं हैं। शिशु मृत्युदर, पोषण आदि अन्य सूचक भी हो सकते हैं। **द्वितीय**, HDI निरपेक्ष (absolute) की बजाय सापेक्ष मानव विकास को मापता है। यदि सभी देश समान दर से अपने पैमाने में सुधार करें, तो कम मानव विकास वाले देशों में सुधार का पता नहीं चल पाएगा। **तृतीय**, किसी देश का HDI वहां पाई जाने वाली ऊंची असमानता को दूर करने के लक्ष्य से भटक सकता है।

2.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. .....अर्थशास्त्री किसी देश में सोने एवं चांदी की मात्रा को ही आर्थिक संवृद्धि का सूचक मानते थे। (वणिकवादी **या** भाग्यावादी)
2. राष्ट्रीय आय सदैव .....मापी जाती है। (मुद्रा में **या** कीमत में)
3. सभी माल सूची परिवर्तन चाहे ऋणात्मक हों या धनात्मक .....शामिल किये जाते हैं। (जी.एन.पी. **या** जी.डी.पी.

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. जब पूँजी मूल्य ह्रास को जी.एन.पी. में से घटा दिया जाता है तो एन.एन.पी. प्राप्त होता है।
2. अल्पविकसित देशों में अधिकतर लोग कुशल होते हैं।

2.8 सारांश (Summary)

आर्थिक विकास का उपयुक्त मापदण्ड क्या हो? यह समस्या आज भी अपने में विवादग्रस्त बनी हुई है। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक नहीं होगा कि आर्थिक विकास के अभिसूचक के रूप में मुख्य विवाद 'राष्ट्रीय आय' व 'प्रति व्यक्ति आय' के बीच है। चूंकि इन दोनों मापदण्डों के अपने-अपने गुण व दोष हैं इसलिए सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं के लिए किसी एक ही मापदण्ड का चुनाव करना न तो सम्भव है और न उचित ही है। हमारी राय में विकसित देशों के आर्थिक विकास का एक अभिसूचक राष्ट्रीय आय में वृद्धि माना जाना चाहिये और अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास की कसौटी हेतु प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि को स्वीकार किया जा सकता है। वैसे अधिकांश अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति आय मापदण्ड का अधिक समर्थन करते हैं।

2.9 शब्दावली (Glossary)

- **सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP):** एक अर्थव्यवस्था में अंतिम रूप से उत्पादत की जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं का समस्त मौद्रिक मुल्य को सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है।
- **आर्थिक कल्याण (Economic Welfare):** आर्थिक कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे मुद्रा के माप दण्ड से प्रत्यक अथवा परोक्ष रूप से सम्बन्धित किया जा सकता है।
- **सकल घरेलू उत्पाद (GDP):** एक वर्ष की अवधि में जितनी वस्तुओं एवं सेवाओं का किसी देश में उत्पादन होता है उसका बाजार कीमतों पर मौद्रिक मूल्य सकल घरेलू उत्पाद (GDP) कहलाता है।
- **मानवीय पूँजी निर्माण (Human Capital Formation):** मानवीय पूँजी निर्माण का सम्बन्ध उस विनियोग से है जो धन के उत्पादकों के रूप में लोगों की योग्यताओं एवं क्षमताओं में सुधार करने के उद्देश्य से किया जाता है।

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. वणिकवादी 2. मुद्रा में 3 जी.एन.पी.

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. सत्य 2.असत्य

2.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- सिन्हा वी.सी. (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिहं (2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन (2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
- धींगरा आई0सी0 (1987), "इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया", एस. चन्द्र नई दिल्ली।

2.12 सहायक अध्ययन सामग्री (Helpful Text)

- B.Okun and R.W. Richanison, Studies in Economic Development,.
- Measuring the Conditions of the World's Poor: The Physical Quality of Life Index 1979.
- Norman L. Hicks and Paul P. Streeten, "Indicators of Development: The Search for a Basic Needs Yardstick," World Development. Vol. 7 1979.
- N.S. Buchanan and E. Ellis, Approaches of Economic Development.
- C.H. Fei. G. Ranis and F. Stewart, basic Needs: A Framework for Analysis, 1979
- Everett E. Hagen A framework for Analysing Economic and Political Development in Rebert E Asher (ed) Development of Emerging countries Donald H. Niewiaroski - the level of Living of Nations.

- Irma Adelman Society, Politics and Economic Development.
- Morris D. Morris Measuring the condition of the world's poor. The Physical quality of Lite Index.
- F. H. Harbimsan and others - Quantitative Analysis of Modernisation and development

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. आर्थिक संवृद्धि को परिभाषित कीजिए। इसका मापन कैसे किया जा सकता है?
2. आर्थिक विकास के अभिसूचक स्पष्ट कीजिए। आर्थिक और सामाजिक अभिसूचकों में अंतर कीजिए।
3. आर्थिक विकास को परिभाषित कीजिए। आर्थिक विकास के विभिन्न मापों का विवेचना कीजिए। इनमें से आप किसको सर्वाधिक उपयुक्त समझते हैं। और क्यों?

इकाई 3 - विकास:- निर्धारक घटक एवं अवस्थाएँ
(Development :- Determinant Factors and Stages)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)
3.2 उद्देश्य (Objectives)
3.3 आर्थिक विकास के निर्धारक घटक (Determinant Factors of Economic Development)
3.3.1 आर्थिक कारक (Economic Factors)
3.3.2 अनार्थिक कारक (Non-Economic Factors)
3.4 आर्थिक विकास की अवस्थाएं (Stages of Economic Development)
3.4.1 आर्थिक विकास की अवस्थाओं के विभिन्न प्रकार (Different Types of Stages of Economic Development)
3.4.2 आर्थिक विकास की अवस्थाओं की आलोचनाएँ (Criticisms of The Stages of Economic Development)
3.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
3.6 सारांश (Summary)
3.7 शब्दावली(Glossary)
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)
3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
3.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)
3.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस अध्याय में हम मानव संसाधनों और मानव पूंजी के निर्माण की अवधारणाओं की गहराई से समीक्षा करेंगे। यहाँ हम समझेंगे कि मानव संसाधन केवल देश की जनसंख्या का प्रतिनिधित्व नहीं करते, बल्कि शिक्षा, कौशल, और स्वास्थ्य के माध्यम से उनकी कार्यक्षमता और समृद्धि में कैसे योगदान करते हैं। अध्याय में विशेष ध्यान मानव पूंजी के निर्माण पर दिया जाएगा, जिसमें शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ, और पोषण जैसे कारकों की भूमिका पर चर्चा की जाएगी। हम यह भी देखेंगे कि कैसे ये तत्व एक

अर्थव्यवस्था के विकास को प्रभावित करते हैं और अर्द्धविकसित देशों में इनकी कमी कैसे समस्याएँ उत्पन्न कर सकती है। इस प्रकार, इस अध्याय का उद्देश्य मानव संसाधनों और पूंजी निर्माण की महत्वता को स्पष्ट करना और उनके प्रभावशाली विकास के उपायों पर प्रकाश डालना है।

3.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- ✓ आर्थिक विकास का निर्धारण के तरीके से अवगत हो।
- ✓ आर्थिक विकास के आर्थिक तत्व क्या हैं ये जान सकेंगे।
- ✓ आर्थिक विकास के अनार्थिक तत्वों को जान पाएंगे।
- ✓ आर्थिक विकास की अवस्थाएं को जान पायेंगे।
- ✓ भारत की विकास अवस्था से अवगत हो सकेंगे।

3.3 आर्थिक विकास के निर्धारक घटक (Determinant Factors of Economic Development)

प्रत्येक देश के आर्थिक विकास की पृष्ठभूमि में कुछ ऐसे तत्व विद्यमान होते हैं जिन पर उस देश का आर्थिक विकास निर्भर करता है। आमतौर से इन तत्वों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है-***पहला*** है प्रधान एवं अनुपूरक तत्व और ***दूसरा*** है आर्थिक एवं गैर आर्थिक तत्व।

(अ) प्रधान एवं अनुपूरक तत्व (Prime and Supplement Elements)

प्रधान चालक अथवा प्राथमिक तत्व वे तत्व होते हैं जो उस देश के आर्थिक विकास के कार्य को प्रारम्भ करते हैं।विकास की नींव वास्तव में इन्हीं तत्वों पर रखी जाती है। प्रधान चालक तत्वों के माध्यम से जब विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है तो कुछ अन्य तत्व इनको तीव्रता प्रदान करते हैं। वास्तव में इन्हें ही अनुपूरक अथवा गौण अथवा सहायक तत्व कहा जाता है। इस प्रकार प्राथमिक तत्व विकास की आधारशिला हैं जबकि अनुपूरक तत्व, आर्थिक विकास को गति प्रदान करते हैं और इसे बनाये रखने में सहायक सिद्ध होते हैं।

प्रधान चालक तत्वों में प्राकृतिक साधन मानवीय साधन, कौशल निर्माण एवं सामाजिक, सांस्कृतिक व संस्थागत तत्वों को सम्मिलित किया जाता है। इसके विपरीत अनुपूरक तत्वों में जनसंख्या वृद्धि, प्राविधिक विकास की दर, और पूँजी निर्माण की दर मुख्य हैं। प्रधान चालक और अनुपूरक तत्वों के सापेक्षिक महत्व, वर्गीकरण व स्वरूपों के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में काफी मतभेद पाया जाता है। कुछ लोग प्रधान चालक तत्वों को महत्व प्रदान करते हैं तो कुछ लोग सहायक तत्वों को।

(ब) आर्थिक एवं गैर आर्थिक तत्व (Economic and Non-Economic Factors)-

उपरोक्त वर्गीकरण के अलावा,निर्धारक तत्वों को आर्थिक एवं गैर आर्थिक आधार पर भी वर्गीकृत किया गया है। आर्थिक एवं गैर आर्थिक तत्वों की सूची इस प्रकार है-

आर्थिक विकास के निर्धारक तत्व

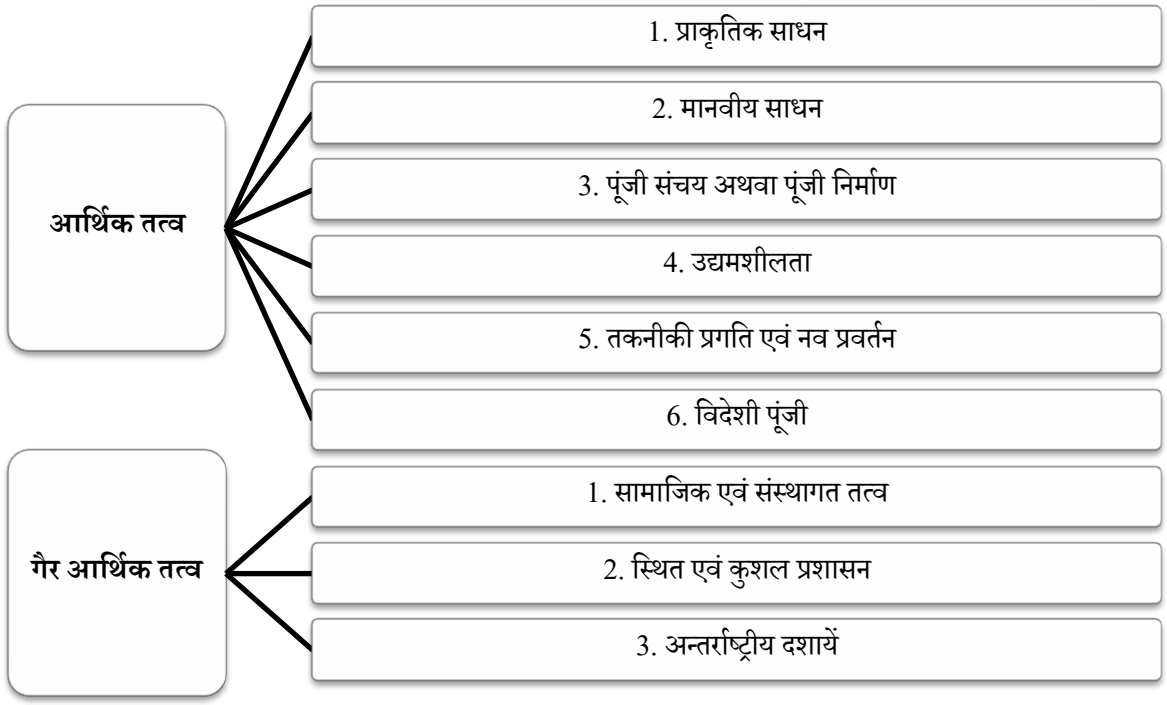

3.3.1 आर्थिक कारक (Economic Factors)

किसी देश की आर्थिक विकास को निर्धारित करने वाले आर्थिक तत्व निम्नलिखित कहे जा सकते हैं-

1. **प्राकृतिक साधन (Natural resources)-** प्राकृतिक साधनों से हमारा अभिप्राय उन सभी भौतिक अथवा नैसर्गिक साधनों से है जो प्रकृति की ओर से एक देश को उपहार स्वरूप प्राप्त होते हैं। किसी देश में उपलब्ध होने वाली भूमि, खनिज पदार्थ, जल सम्पदा, वन सम्पत्ति, वर्षा एवं जलवायु, भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक बन्दरगाह उस देश के प्राकृतिक साधन माने जायेंगे। यह प्राकृतिक साधन देश के आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। आमतौर से यह बात स्वीकार की जा चुकी है कि अन्य बातों के समान रहने पर जिस देश के प्राकृतिक साधन जितने अधिक होंगे, उस देश का आर्थिक विकास उतना ही शीघ्र एवं अधिक होगा।

   आर्थिक विकास की दृष्टि से प्राकृतिक साधनों के महत्व को स्पष्ट करते हुए **रिचार्ड डी गिल (Richard D Gill)** ने लिखा है "***जनसंख्या एवं श्रम की पूर्ति की भांति प्राकृतिक साधन भी एक देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। उपजाऊ भूमि और जल के अभाव में कृषि का विधिवत विकास नहीं हो पाता। लोहा, कोयला व अन्य खनिज सम्पदा के न होने पर तीव्र औद्योगीकरण का स्वप्न अधूरा ही बना रहता है। जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण आर्थिक क्रियाओं के विस्तार में अवरोध उत्पन्न होते हैं। वास्तव में प्राकृतिक साधनों का किसी देश के आर्थिक विकास को सीमित करने अथवा प्रोत्साहित करने में एक निर्णायक स्थान होता है।***" प्राकृतिक साधनों के बारे में दो बातों को दृष्टि में रखना आवश्यक है

   प्रथम, प्रकृति-दत्त साधन सदैव के लिये सीमित व निश्चित होते हैं, मानवीय प्रयत्नों से उन्हें खोजा तो जा सकता है परन्तु उनका नव निर्माण नहीं किया जा सकता। **गिल** महोदय का भी कहना है कि ***"जनसंख्या बढ़ सकती है, उपकरणों, मशीनों एवं फैक्ट्रियों का निर्माण***

किया जा सकता है। किन्तु हमें प्रकृति द्वारा दिये गए प्राकृतिक उपहार (साधन) सदैव के लिए सीमित एवं निश्चित होते हैं।"

द्वितीय, यह सोच लेना एक भयंकर भूल होगी कि जिस देश में जितने अधिक प्राकृतिक साधन होंगे, उस देश का विकास उतना ही अधिक होगा। आर्थिक विकास के लिये प्राकृतिक साधनों की केवल बाहुल्यता ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उनका उचित ढंग से विदोहन किया जाना अधिक आवश्यक है। उदाहरण के लिए स्विटजरलैंड एवं जापान के प्राकृतिक साधन कम होते हुए भी आज वे विश्व के सर्वाधिक विकसित राष्ट्र माने जाते हैं। भारत के सम्बन्ध में कहा जाने वाला यह वाक्य आज भी इस दृष्टि से अडिग है कि-*'भारत एक धनी देश है जहां निर्धन वास करते हैं।'* (India is a rich country where the poor live.)

2. मानवीय साधन (Human Resources) - मानवीय साधनों से हमारा अभिप्राय किसी देश में निवास करने वाली जनसंख्या से है। श्रम, प्राचीन काल से ही उत्पादन का एक महत्वपूर्ण एवं सक्रिय साधन माना जाता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **एडम स्मिथ (Adam Smith)** का कहना था कि *"प्रत्येक देश का वार्षिक श्रम वह कोष है जो मूल रूप से जीवन की अनिवार्यताओं व सुविधाओं की पूर्ति करता है।"* मानवीय श्रम ही वह शक्ति है जिस पर देश का आर्थिक विकास निर्भर करता है। प्राय: यह कहा जाता है कि जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास की पूर्व आवश्यकता है लेकिन तीव्र गति से होने वाली जनसंख्या का बढ़ना तभी तक श्रेष्ठकर माना जायेगा जब तक कि उनका प्रति व्यक्ति उत्पादन पर कोई विपरीत प्रभाव ना पड़ने पाये। दूसरे शब्दों में देश की जनसंख्या व उसका आकार, वृद्धि दर, संरचना, विभिन्न व्यवसायों में वितरण व कार्यक्षमता आदि का उस देश के आर्थिक विकास पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ता है। यहाँ आपको स्पष्ट रूप से यह बताना है कि ***किसी देश की वास्तविक सम्पत्ति उस देश की भूमि या पानी में नहीं, वनों या खानों में नहीं, पक्षियों या पशुओं के झुण्डों में नहीं, और ना ही डालरों के ढेर में आंकी जाती है बल्कि उस देश के स्वस्थ, सम्पन्न व सुखी पुरूषों, स्त्रियों एवं बच्चों में निहित है।***

अत: आवश्यकता इस बात की है कि आर्थिक विकास के लिये मानवीय शक्ति का सही ढंग से उपयोग करने हेतु सबसे ***पहले*** जनाधिक्य पर नियंत्रण लगाया जाये,और ***दूसरा*** श्रम शक्ति में उत्पादकता एवं गतिशीलता बढ़ाते हुए उसके दृष्टिकोण में परितर्वन किया जाये ताकि उसमें श्रम-गौरव की भावना आ सके । और ***तीसरा*** मानवीय पूँजी निर्माण पर बल दिया जाये।

मायर्स के अनुसार मानवीय पूँजी निर्माण से हमारा आशय *"देश की जनसंख्या उसके आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप है और उसके निवासी विवेकशील, चरित्रवान, स्वस्थ, परिश्रमी, शिक्षित व कार्यदक्ष हैं तो निःसन्देह अन्य बातों के समान रहने पर, उस देश का अधिक होता है।"*

प्रो. रिचार्ड टी. गिल (Pro. Richard T. Gill) का कहना है कि *"आर्थिक विकास एक यांत्रिक प्रक्रिया मात्र ही नहीं, वरन् अन्तिम रूप से यह एक मानवीय उपक्रम है। अन्य मानवीय उपक्रमों की भांति इसका परिणाम, सही अर्थों में, इसको संचालित करने वाले जन समुदायों की कुशलता, गुणों व प्रवृत्तियों पर निर्भर करता है।"*

इसमें कोई संदेह नहीं कि जहां विकसित देशों के आर्थिक विकास में जनसंख्या व उसकी क्रमिक वृद्धि का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है, वहां अल्प विकसित देशों के अवरूद्ध आर्थिक विकास का एक मात्र कारण जनसंख्या की तीव्र वृद्धि ने विश्व के अधिकांश पिछड़े हुए देशों के लिए एक गम्भीर समस्या उत्पन्न कर दी है। अवांछित रूप से बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भूमि एवं यंत्रों पर दबाव बढ़ने लगता है, प्रति व्यक्ति आय, बचतों एवं पूँजी निर्माण की दरों में

कमी आती है, उत्पादकता मे ह्रास होता है, प्रति व्यक्ति पूँजीगत साधनों का अभाव होने लगता है, बेरोजगारी बढ़ती है एवं जीवन स्तर में कमी आने लगती है और इस प्रकार आर्थिक विकास के अंतर्गत प्राप्त उपलब्धियां स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं।

3. **पूँजी संचय(Capital Accumulation)** - **प्रो. कुजनेट्स** के शब्दों में, ***"पूँजी व पूँजी का संचय आर्थिक विकास की एक अनिवार्य आवश्यकता है।"*** जब तक देश में पर्याप्त मात्रा में पूँजी व पूँजी निर्माण नहीं होगा तब तक आर्थिक विकास का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता है। **प्रो. नर्कसे** का कहना है कि ***"पूँजी निर्माण आर्थिक विकास की एक पूर्व आवश्यकता है।"*** देश के आर्थिक विकास के लिये एक बड़ी मात्रा में पूँजी व पूँजीगत वस्तुओं जैसे भवन, कल-कारखाने, मशीनें, यन्त्र व उपकरण, बांध, नहरें, रेलें, सड़कें, कच्चा माल व ईंधन की आवश्यकता होती है। जिस देश के पास यह साधन जितने अधिक होंगे, अन्य बातें समान रहने पर उसका आर्थिक विकास उतना ही अधिक होगा। आज विकसित कहे जाने वाले राष्ट्रों की प्रगति का मुख्य कारण, इन देशों में पूँजी निर्माण की ऊंची दर का पाया जाना है जबकि अल्प विकसित देशों में पूँजी निर्माण की धीमी दर के कारण उनका आर्थिक विकास आज भी अवरूद्ध अवस्था में पड़ा हुआ है। सत्यता तो यह है कि पूँजी का संचय, वर्तमान समय में, अमीर-गरीब के बीच पाये जाने वाले अन्तर का कारण व प्रतीक है, यह निर्धन देशों को धनवान बनाने की एक कला है और विश्व के पिछड़े हुए देशों के विगत इतिहास के विपरीत, आज के इस औद्योगिक युग का सूत्रपात करने वाले कारकों में से एक प्रमुख कारक है।

4. **तकनीकी प्रगति एवं नव-प्रवर्तन (Technological Advancement and Innovation)**- प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **प्रो. शुम्पीटर** का कहना है कि ***"विकास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक तकनीकी प्रगति एवं नव-प्रवर्तनों को अपनाया जाना है। तकनीकी ज्ञान की प्रगति को ऐसे नये ज्ञान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके कारण या तो वर्तमान वस्तुएं कम लागत पर उत्पन्न की जा सकें अथवा जिनके फलस्वरूप नई वस्तुओं का उत्पादन सम्भव किया जा सके।"*** तकनीकी ज्ञान उत्पादन की विधियों में मौलिक परिवर्तन लाकर आर्थिक विकास के कार्य को गति प्रदान करता है। विकसित देशों की विकास वृद्धि की दर, बुनियादी रूप से उनके द्वारा की गई तकनीकी व नव प्रवर्तनों की खोज पर आधारित रहती है। इसके विपरीत अल्प विकसित देशों में तकनीकी ज्ञान के अभाव में उत्पादन की पुरानी व अवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है जिसके फलस्वरूप इनका आर्थिक विकास आज भी पिछड़ी हुई अवस्था में है।

प्रो. रिचार्ड टी. गिल का कहना है कि ***"आर्थिक विकास अपने लिये महत्वपूर्ण पौष्टिकता वस्तुतः, नये विचारों, तकनीकी आविष्कारों व उत्पादन विधियों के स्रोतों से प्राप्त करता है, जिनके अभाव में, अन्य साधन कितने ही विकसित क्यों न हों, आर्थिक विकास का प्राप्त करना असम्भव ही बना रहता है।"***

ध्यान रहे, तकनीकी प्रगति, नवीन प्रवर्तनों के अपनाए जाने पर ही निर्भर करती है। एक देश में तकनीकी प्रगति के लिये **प्रो. गिल** ने चार तत्वों का होना आवश्यक बताया है – ***पहला***, विज्ञान की प्रगति या वैज्ञानिक अभिरूचि, ***दूसरा***, समाज में शिक्षा का ऊंचा स्तर, ***तीसरा***, नव प्रवर्तनों को व्यावहारिक रूप देना एवं ***चौथा*** उद्यमशीलता।

5. **उद्यमशीलता (Entrepreneurship)** - नये आविष्कार, तकनीकी ज्ञान व नई खोजों का आर्थिक विकास की दृष्टि से तब तक कोई महत्व नहीं जब तक कि उन्हें व्यावहारिक रूप प्रदान न कर दिया जाये- और यह काम समाज के साहसी वर्ग को करना होता है। **प्रो. गिल** का कहना है कि ***"तकनीकी ज्ञान आर्थिक दृष्टि से तभी उपयोगी हो सकता है जब उसे नव प्रवर्तन के रूप में प्रयोग किया जाये और जिसकी पहल समाज के साहसी वर्ग द्वारा की जाती है।"*** वास्तव में,

किसी देश का आर्थिक विकास विशेष रूप से इस बात पर निर्भर करता है कि उस देश में किस प्रकार के साहसी हैं? वे नये आविष्कारों व विकसित तकनीकों का किस सीमा तक प्रयोग करते हैं? और उनके उत्पादन के क्षेत्र में विकास और सुधार करने की कितनी प्रबल इच्छा है? आर्थिक विकास तकनीकी प्रगति व नव प्रवर्तनों पर निर्भर करता है, नव प्रवर्तनों के लिए उद्यमशीलता की आवश्यकता होती है, उद्यमशीलता के लिए जोखिम उठानी पड़ती है और जोखिम सफलता का दूसरा नाम है।

श्री याले ब्राजन के अनुसार, ***"न तो आविष्कार की योग्यता और न केवल आविष्कार ही आर्थिक विकास को संभव बनाते हैं बल्कि यह तो, उन्हें कार्यरूप में परिणित करने की प्रबल इच्छा व जोखिम उठाने की क्षमता पर निर्भर करता है।"***

प्रो. शुम्पीटर ने अपने आर्थिक विकास के सिद्धान्त में नव प्रवर्तनों के रूप में साहसियों को केन्द्रीय स्थान देते हुए इन्हें आर्थिक विकास की संचालन शक्ति माना है। वास्तव में, आर्थिक विकास वैदिक काल से ही उद्यमशीलता के साथ सम्बन्धित रहा है और उद्यमकर्ता को उन व्यक्तियों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो **'नये दृष्टिकोणों'** व **'नये संयोगों'** का सृजन करते हैं।

प्रो. बोल्डिंग का मत है कि आर्थिक प्रगति को विभिन्न समस्याओं में से मुख्य समस्या समाज के एक वर्ग विशेष को **'नव प्रवर्तकों'** का रूप देने की होती है। विकसित देशों की आर्थिक प्रगति का मुख्य कारण, इन देशों में साहसियों का पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना ही रहा है। जबकि इसके विपरीत पिछड़े हुए देशों में **'शर्मीली पूँजी'**, उद्यमशीलता का अभाव व जोखिम उठाने की क्षमता न होने के कारण, इन देशों का आर्थिक विकास संभव नहीं हो सका। आजकल अल्प विकसित देशों में नव प्रवर्तकों की भूमिका सरकार द्वारा अदा की जाती है। इसका कारण यह है कि एक तो निजी उद्यमकर्ताओं का अभाव और दूसरा विकास कार्यों पर, उत्पादन की नई तकनीकों के अंतर्गत विशाल धनराशि को विनियोग करना पड़ता है जो कि व्यक्तिगत प्रयत्नों से संभव नहीं हो पाता।

6. **विदेशी पूँजी** (Foreign capital)- अल्प विकसित देश के आर्थिक विकास का एक अन्य निर्धारक तत्व विदेशी पूँजी है। विदेशी पूँजी के प्रयोग के अभाव में कोई भी अल्प विकसित देश आर्थिक विकास नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि अल्प विकसित देशों में प्रति व्यक्ति आय के कम होने के कारण घरेलू बचत की दर काफी कम होती है। लोगों का जीवन स्तर इतना नीचा होता है कि उनके द्वारा बचत करना संभव नहीं हो पाता। फलत: घरेलू बचत की इस कमी को विदेशी पूँजी के आयात द्वारा पूरा किया जा सकता है।

   विदेशी पूँजी के आयात का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि यह अपने साथ तकनीकी ज्ञान व पूँजीगत उपकरणों को भी लाती है। जिनका पिछड़े हुए देशों में सर्वथा अभाव होता है। इस प्रकार पूँजी व विकसित तकनीकी के उपलब्ध हो जाने पर अल्प विकसित देशों में तकनीकी स्तर को ऊंचा करके प्रति व्यक्ति उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

संक्षेप में, अल्प विकसित देशों में विदेशी पूँजी का प्रयोग विकास परियोजना योजनाओं को चालू करना, कच्ची सामग्री, मशीनें व उपकरणों का आयात करने, उत्पादन स्तर को बनाये रखने, एवं आवश्यक वस्तुओं का आयात करके मुद्रा-स्फीति का सामना करने में सहायक सिद्ध होती है।

3.3.2 अनार्थिक कारक (Non-Economic Factors)

आर्थिक विकास के गैर आर्थिक तत्व इस प्रकार है-

1. **सामाजिक एवं संस्थागत तत्व (Social and Institutional Elements)- मायर** एवं **बाल्डविन** के अनुसार आर्थिक विकास के मनोवैज्ञानिक व सामाजिक आवश्यकताओं का होना उसी प्रकार जरूरी है जिस प्रकार आर्थिक आवश्यकताओं का इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय विनियोग नीति पर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व आर्थिक प्रवृत्तियों का

संयुक्त प्रभाव पड़ता है। किसी देश का आर्थिक विकास मूल रूप से इस बात पर निर्भर करता है कि लोगों में नूतन मूल्यों व संस्थाओं को अपनाने की कितनी प्रबल इच्छा है। वास्तव में गैर आर्थिक तत्वों के रूप में यह सामाजिक, मनौवैज्ञानिक व संस्थागत तत्व, आर्थिक विकास की उत्प्रेरक शक्तियां हैं।

प्रो. रागनर नर्कसे का कहना है कि ***"आर्थिक विकास का मानवीय मूल्यों, सामाजिक प्रवृत्तियों, राजनैतिक दशाओं एवं ऐतिहासिक घटनाओं से एक घनिष्ट सम्बन्ध रहा है।"***

संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार ***"एक उपयुक्त वातावरण की अनुपस्थिति में आर्थिक प्रगति असम्भव है। आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि लोगों में प्रगति की प्रबल इच्छा हो, वे उसके लिये हर सम्भव त्याग करने को तत्पर हों, वे अपने आपको नये विचारों के अनुकूल ढालने के लिए जागरूक हों और उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व वैधानिक संस्थायें इन इच्छाओं को कार्यरूप में परिणित करने में सहायक हों।"***

प्रो. पाल अलबर्ट का कहना है कि आर्थिक विकास के लिये समाज व अर्थव्यवस्था की संरचना, वांछित परिवर्तनों की सम्भावनाओं की दृष्टि से खुली होनी चाहिए।

अल्प विकसित देशों के आर्थिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण, वास्तव में ये सामाजिक व संस्थागत तत्व ही रहे हैं। इन देशों में जाति-प्रथा, छूआ छूत, संयुक्त परिवार प्रणाली, उत्तराधिकार के नियम, भू-धारण की दोषपूर्ण व्यवस्था, भूमि व सम्पत्ति के प्रति मोह, अन्ध विश्वास, रूढ़िवादिता, धार्मिक पाखण्ड, परिवर्तन के प्रति विरक्ति और उसका विरोध, सामाजिक अपव्यय एवं झूठी शान शौकत जैसे तत्वों ने आर्थिक विकास के मार्ग पर सदैव बाधायें उत्पन्न की हैं। इन देशों का आर्थिक विकास तब तक सम्भव नहीं हो सकता, जब तक कि इन सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक संस्थाओं का नये सिरे से नव निर्माण न कर दिया जाये। अत: इस दृष्टि से आवश्यक है कि लोगों की रूढ़िवादी धारणाओं को परिवर्तित किया जाए, उनमें भौतिक दृष्टिकोण पैदा किया जाए और शिक्षा का विस्तार किया जाए ताकि ये लोग अपने आपको नये विचारों के अनुकूल ढाल सकें।

2. **स्थिर एवं कुशल प्रशासन (Stable and Efficient Administration)-** किसी देश का आर्थिक विकास बहुत एक सीमा तक उस देश के स्थिर व कुशल प्रशासन पर भी निर्भर करता है। यदि देश में शान्ति और सुरक्षा पायी जाती है एवं न्याय की उचित व्यवस्था है तो लोगों में काम करने एवं बचत करने की इच्छा पैदा होगी और फलस्वरूप आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलेगा। इसके विपरीत यदि देश में राजनैतिक अस्थिरता है अर्थात् सरकारें बार-बार बदलती रहती हैं एवं आन्तरिक क्षेत्र में अशान्ति का वातावरण व्याप्त है तो इससे विनियोग सम्बन्धी निर्णयों पर बरा प्रभाव पडेगा। पूँजी का विनियोग देश मे कम होगा, जोखिम उठाने के लिये लोग तैयार नहीं होंगे एवं विदेशी पूँजी देश में आने के लिए तैयार नहीं हो पायेगी और फलस्वरूप देश का आर्थिक विकास पिछड़ जायेगा।

इतना ही नहीं, सरकार की स्वयं विकास के प्रति रूचि का होना भी जरूरी है, अन्यथा उसके अभाव में आर्थिक विकास का श्रीगणेश भी नहीं हो सकेगा। सरकार की कुशल प्रशासन व्यवस्था और उसके कर्मचारियों में निपुणता, ईमानदारी एवं उत्तरदायित्व की भावना आर्थिक विकास की पहली शर्त है। प्रशासनिक व्यवस्था के सुचारू व सुदृढ़ होने पर जन सहयोग बढ़ता है विकास कार्यक्रम सफल होते हैं और नीतियों का निर्धारण व उनका निष्पादन सरलता के साथ सम्भव हो जाता है।

प्रो. डब्लू आर्थर लेविस का मत है कि ***"कोई भी देश राजकीय सहयोग व उसका सक्रिय प्रोत्साहन पाये बिना, आज तक आर्थिक विकास नहीं कर सका है। यह कथन अपने में आज भी सत्य है और भविष्य के लिये भी सत्य है और अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिये तो यह विशेष रूप से कटु सत्य माना जाएगा।"***

3. अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां (International Situation)- आर्थिक विकास के लिये अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का अनुकूलन होना भी आवश्यक है। विश्व मंच पर राजनैतिक शान्ति बने रहने पर ही विकास व नव निर्माण कार्य संभव हो सकते हैं। अशान्ति और युद्धों की धधकती ज्वाला में विकासात्मक नहीं, वरन् विध्वंसात्मक प्रवृत्तियां जन्म लेती हैं। राजनैतिक शान्ति के अलावा विश्व के देशों में सद्भावना, सहयोग व वित्तीय सहायता का उपलब्ध होना भी अत्यावश्यक है। अल्प विकसित देशों में पूँजी व पूँजीगत सामान, भारी मशीनें एवं तकनीकी ज्ञान का सर्वथा अभाव होता है। इन सभी आवश्यकताओं की आपूर्ति विकसित राष्ट्रों द्वारा जब तक नहीं की जायेगी, तब तक इन देशों का आर्थिक विकास अवरूद्ध बना रहेगा। विकसित देश अनुदान, ऋण, प्रत्यक्ष विनियोग और तकनीकी सहायता आदि के रूप में इन देशों को आर्थिक सहयोग दे सकते हैं। संक्षेप में राजनीतिक स्थिरता, विकसित देशों की नीति, पड़ोसी देशों का रूख, विदेशी व्यापार की सम्भावनाओं और विदेशी पूँजी का अन्तर्प्रवाह आदि तत्व आर्थिक विकास को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में प्रभावित करते है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि किसी देश का आर्थिक विकास अनेक तत्वों पर निर्भर करता है। वस्तुतः यह कहना कि कौन सा तत्व अधिक महत्वपूर्ण है, अत्यन्त कठिन है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में इन सभी निर्धारक तत्वों का अपना एक विशेष स्थान है इसलिये उनके सापेक्षिक योगदान एवं महत्व के बारे में कुछ भी कहना न तो सम्भव ही है और न ही तर्कपूर्ण।

3.4 आर्थिक विकास की अवस्थाएं (Stages of Economic Development)

आर्थिक विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है। जिस प्रकार मानव के विकास का आदिम इतिहास इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि मनुष्य जन्म के समय शिशु, शिशु से किशोर, किशोर से तरूण और फिर जवानी की दहलीज पार करते हुए वृद्धावस्था की ओर अग्रसर होता है, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक देश को अपने पिछड़ेपन से विकास की चरम सीमा तक पहुंचने के लिए अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है। क्रमिक विकास की यह व्यवस्था, अपने में ही इतनी अधिक सार्वभौमिक है कि वर्तमान समय में विकसित कहे जाने वाले देशों जैसे अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, फ्रांस व जापान आदि को भी सम्पन्नता की मन्जिल पर पहुंचने के लिये अनेक पड़ावों को पार करना पड़ा है। हां! यह सम्भव हो सकता है कि कोई देश अपने सक्रिय प्रयत्नों के फलस्वरूप विकास की प्रत्येक अवस्था में पड़े रहने की अवधि को कम कर लें,परन्तु यह नामुमकिन है कि उसने विकास की प्रत्येक अवस्था की परिधि को छुआ न हो।

प्रो. रिचार्ड टी. गिल का कहना है कि "***अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं की खोज, इंग्लैण्ड की महान औद्योगिक क्रांति के काल से ही प्रारम्भ की जा चुकी है। आर्थिक विकास की अवस्थाओं के इस दृष्टिकोण ने, जोकि सैद्धान्तिक की बजाय वर्णात्मक अधिक है, विकास प्रक्रिया को अनेक अवस्थाओं में वर्गीकृत करने का प्रयास किया है जिसमें से सभी देशों को अपने स्वाभाविक आर्थिक उद्गम व विकास के लिए होकर गुजरना पड़ेगा।***"

3.4.1 आर्थिक विकास की अवस्थाओं के विभिन्न प्रकार (Different Types of Stages of Economic Development)

अवस्थाएं सम्बन्धी मतभेद अनेक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के ऐतिहासिक क्रम को भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में विभाजित करने का प्रयत्न किया है। चूंकि इन सभी अर्थशास्त्रियों द्वारा वर्णित अवस्थाओं के दृष्टिकोण, आधार व काल अलग-अलग रहे हैं। इसलिए उनके विचारों में मतभेद का पाया जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। विकास की अवस्थाओं का मार्ग दर्शन करने वालों में **प्रो. लिस्ट, हिल्डेब्रांड, बकर, एशले, बूचर, शमोलर, कोलिन लॉक, कार्लमार्क्स** एवं **रोस्टोव** आदि प्रमुख हैं। हम इनके विचारों का अध्ययन करेंगे-

A) प्रो. फ्रेडरिक लिस्ट (Friedrich List) की आर्थिक विकास की अवस्थाएं -

प्रसिद्ध जर्मन राष्ट्रवादी अर्थशास्त्री **फ्रेडरिक लिस्ट (Friedrich List)** ने 1844 में आर्थिक व्यवस्था के क्रमिक विकास की निम्न पांच अवस्थाओं का उल्लेख किया था।

1. जंगली अवस्था 2. चरागाह अवस्था 3. कृषि अवस्था
4. उद्योग अवस्था 5. उन्नत अवस्था

प्रो. लिस्ट का मत था कि प्रत्येक देश को उन्नत अवस्था को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए, परन्तु यह तभी संभव हो सकता है जबकि देश ***सर्वप्रथम*** कृषि में उन्नति करे और फिर बाद में उद्योगों के विकास पर बल दिया जाए, ***दूसरा*** प्रारम्भिक अवस्था में राष्ट्रीय उद्योगों को संरक्षण प्रदान किया जाए एवं ***तीसरा*** जब देश उन्नत अवस्था को प्राप्त कर ले तब स्वतंत्र व्यापार नीति को अपनाते हुए विदेशी व्यापार सम्बन्धी सभी प्रतिबन्धों को हटा देना चाहिए।

B) प्रो. हिल्डेब्रांड (Prof. Hildebrand) की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

सन् 1864 में जर्मन अर्थशास्त्री **हिल्डेब्रांड (Prof. Hildebrand)** ने विकास की तीन अवस्थायें बताई थी जो कि इस प्रकार हैं-

1. वस्तु विनिमय अवस्था 2. मुद्रा अवस्था 3.साख अवस्था

C) कोलिन क्लार्क (Colin Clarke) की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

कोलिन क्लार्क (Colin Clarke) द्वारा आर्थिक विकास की निम्न अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। जिसका समर्थन बौर एवं यामी ने भी किया है –

1. कृषि उद्योग अवस्था - इस अवस्था में पिछड़े हुए देशों में कृषि सबसे अधिक महत्वपूर्ण उद्योग व राष्ट्रीय आय का प्रमुख साधन होता है।

2. निर्माणकारी उद्योग अवस्था - अर्थव्यवस्था का जैसे-जैसे विकास होता जाता है कृषि की अपेक्षा निर्माणकारी उद्योगों का महत्व बढ़ने लगता है।

3. सेवा उद्योग अवस्था - अर्थव्यवस्था का और अधिक विकास होने पर सेवा उद्योगों जैसे संचार व परिवहन, बीमा, शिक्षा आदि का भी विकास अधिक होने लगता है।

D) कार्ल मार्क्स (Karl Marx) की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

कार्ल मार्क्स (Karl Marx) ने वर्ग संघर्ष को विकास की अवस्थाओं का आधार माना है। उन्होंने 1948 में अपने **'Communist Manifesto'** में स्पष्टतया लिखा है कि ***"आज के विद्यमान समाजों का इतिहास एक संघर्ष का इतिहास है। आजाद एवं गुलाम, देशभक्त एवं गद्दार, जमींदार एव निसहाय मजदूर, शोषक एवं शोषित सभी एक दूसरे के विरोध में उठ खड़े हुए हैं और भले ही खुलम खुल्ला न सही चोरी छिपे एक दूसरे पर हावी होने के लिए प्रयत्नशील हैं।.....इस लड़ाई का अन्त या तो समाज के क्रांतिकारी पुननिर्माण के रूप में होगा अथवा स्पर्धा करने वाले वर्गों के अन्त के रूप में होगा।"***

कार्ल मार्क्स के अनुसार विकास की प्रमुख चार अवस्थायें हैं-

1. सामन्तवाद 2. पूँजीवाद
3. समाजवाद 4. साम्यवाद

मार्क्स के अनुसार अर्थव्यवस्थाओं के विकास की प्रथम अवस्था श्रमिकों के शोषण से प्रारम्भ होती है और अन्तिम अवस्था शोषण की समाप्ति के साथ ही साथ परिपूर्ण हो जाती है।

E) प्रो. बकर (Prof. Bakar) की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

प्रो. बकर (Prof. Bakar) के अनुसार आर्थिक विकास की तीन अवस्थाएं हैं।

1. गृह अर्थव्यवस्था, 2. शहरी अर्थव्यवस्था
3. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था

F) प्रो. एशले (Prof. Ashley) की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

प्रो. एशले (Prof. Ashley) के अनुसार विकास की विभिन्न अवस्थाएं इस प्रकार हैं -

1. गृह व्यवस्था, 2. गिल्ड व्यवस्था
3.घरेलू व्यवस्था 4. फैक्ट्री व्यवस्था

G) प्रो. रोस्टोव (Prof. Rostov) की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

आर्थिक विकास की अवस्थाओं का वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण ढंग से विश्लेषण करने का श्रेय प्रसिद्ध अमेरिकन अर्थशास्त्री प्रो. रोस्टोव को दिया जाता है। **रोस्टोव** ने अपनी पुस्तक **'The Stages of Economic Growth'** में आर्थिक विकास की अवस्थाओं को निम्न पांच भागों में विभक्त किया है :

1. परम्परागत समाज
2. उत्कर्ष या आत्म स्फूर्ति की पूर्व दशायें
3. आत्म स्फूर्ति की अवस्था
4. परिपक्वता की अवस्था
5. अत्यधिक उपभोग की अवस्था

3.4.2 आर्थिक विकास की अवस्थाओं की आलोचनाएँ (Criticisms of the Stages of Economic Development)

इनमें कोई सन्देह नहीं कि रोस्टोव द्वारा आर्थिक विकास की अवस्थाओं का विश्लेषण अत्यन्त क्रमबद्ध व तर्कपूर्ण ढंग से किया गया है। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों, विशेषकर मायर बाल्डविन साइमन कजनेटस, केर्यनक्रास, गरशेनक्रान, डरूमौण्ड, स्टीटन, प्रो. सैन और हबाकुक ने रोस्टोव के दृष्टिकोण को त्रुटिपूर्ण माना है। प्रो. बेंजमीन हिगीन्ज, रोस्टोव महोदय के समर्थक माने जाते हैं और उन्होनें इस विश्लेषण को सही और औचित्यपूर्ण ठहराया है। रोस्टोव के दृष्टिकोण की निम्न आधार पर आलोचना की गई है -

1. इतिहास को निश्चित अवस्थाओं में बांटना सम्भव नहीं (It is not possible to divide history into definite stages) - प्रो. मायर का कहना है कि इतिहास को निश्चित अवस्थाओं में न तो बांटना संभव है और न ही यह जरूरी है कि सभी देश एक ही प्रकार की अवस्थाओं में से होकर गुजरे। उनके शब्दों में ***"यह कहना कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था सदैव विकास के एक ही मार्ग को अपनाती है और उसका एक जैसा भूत और भविष्य होता है, अवस्थाओं के क्रम को आवश्यकता से अधिक सरलीकरण करना है।"*** **प्रो. हबाकुक** ने ऐतिहासिक दलील देते हुए कहा है कि अमेरिका,कनाडा, न्यूजीलैंड एवं आस्ट्रेलिया परम्परागत समाज की अवस्था में से बिना गुजरे ही पूर्व दशाओं की अवस्था में प्रवेश कर गये थे।

2. अवस्थाओं का क्रम भिन्न हो सकता है (The order of the stages may vary) – गरशेनक्रान के अनुसार ***"प्रत्येक देश आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता अवश्य है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि एक देश रोस्टोव द्वारा वर्णित अवस्थाओं में से ही होकर गुजरे। अवस्थाओं का क्रम अनियमित हो सकता है।"***

3. अवस्थाओं में परस्पर-निर्भरता (interdependence of stages)- कुजनेट्स एवं **केयरनक्रास** का कहना है कि रोस्टोव द्वारा वर्णित आर्थिक विकास की अवस्थाएं एक दूसरे से भिन्न न होकर परस्पर व्यापी है। उदाहरणार्थ एक अवस्था की विशेषताएं दूसरी अवस्था में भी देखने को मिलती है। न्यूजीलैण्ड, डेनमार्क आदि देशों में आत्म स्फूर्ति की अवस्था में भी कृषि का अत्यधिक विकास हुआ है जबकि रोस्टोव ने कृषिगत विकास को परम्परागत समाज की

अवस्था में रखा है।

4. **अवस्था का पता लगाने में कठिनाई (Difficulty in locating the condition) -** कुछ लोगों का कहना है कि कौन सा देश विकास की किस अवस्था में है इसकी जांच करने हेतु पर्याप्त सांख्यिकीय सूचनाओं का उपलब्ध होना संभव नहीं है। दूसरा इस बात का कैसे पता लगाया जाए कि किसी देश में अमुक अवस्था का काल पूरा हो चुका है और एक के बाद दूसरी अवस्था कब प्रारम्भ होगी।

5. **आत्म पोषित विकास भ्रमोत्पादक विचार है (Self-sustained growth is a delusional idea) -** कुजनेट्स के अनुसार आत्म पोषित या आत्म निर्भर विकास का विचार भ्रमोत्पादक है। **प्रथम**, विशेषताओं की दृष्टि से यह आत्म स्फूर्ति की अवस्था के ही समान है क्योंकि दोनों अवस्थाओं के बीच की विभाजन रेखा स्पष्ट नहीं है। **दूसरा**, ***"कोई भी विकास शुद्ध रूप में आत्म निर्भर अथवा आत्म सीमित नहीं हो सकता क्योंकि उसके स्वयं को सीमित करने वाले कुछ प्रभाव सदैव बने रहते हैं। विकास तो एक निरन्तर संघर्ष है जिसे आत्म निर्भर कहना बहुत कठिन है।"***

6. **अत्यधिक उपभोग अवस्था काल क्रम के अनुसार नहीं (High consumption stage not in chronological order) -** आलोचकों का कहना है कि विश्व के कुछ देश जैसे आस्ट्रेलिया, कनाडा आदि परिपक्वता की अवस्था में प्रवेश किये बिना ही अत्यधिक उपभोग की अवस्था प्राप्त कर चुके हैं जो कि रोस्टोव के अवस्था कालक्रम के विरूद्ध है।

3.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. हैरोड डोमर ने आर्थिक के .....सहायक तत्व माने हैं। (चार **या** छः)
2. फ्रेडरिक लिस्ट ने आर्थिक व्यवस्था के क्रमिक विकास की ..... अवस्थाओं का उल्लेख किया है। (चार **या** पांच)
3. रोस्टोव के अनुसार भारत की आत्मस्फूर्ति का काल .....है। (1953 **या** 1952)

निम्नलिखित कथनों में सत्य या असत्य कथनों को चुनिये-

1. हैरोड-डोमर के चार आर्थिक विकास के तत्वों में नये बाजारों का उपलब्ध होना सम्मिलित है।
2. नव प्रवर्तन के सिद्धांत के प्रवर्तक शुम्पीटर हैं।

3.6 सारांश (Summary)

उपयुक्त प्रस्तुत विवेचन के अनुसार आर्थिक एवं आर्थिकेतर तत्व वृद्धि की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करते हैं। वे एक दूसरे पर भी निर्भर करते हैं। आर्थिक तत्व आथिकेतर तत्व द्वारा प्रभावित होते हैं और उनको प्रभावित भी करते हैं। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रिों जैसे वाइनर एवं मिर्डल के अनुसार आर्थिक एवं गैर आर्थिक तत्वों में भेद निरर्थक, भ्रमपूर्ण एवं असंगत है। इसीलिये इसको त्याग देना चाहिए। परन्तु हम इन अर्थशास्त्रियों के विचार से सहमत नहीं है क्योंकि यह सर्वमान्य है कि आर्थिक एवं आर्थिकेतर तत्वों का आधुनिक आर्थिक वृद्धि पर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। आलोचनाओं के बावजूद आर्थिक विकास की इस समस्या का विधिवत ढंग से विश्लेषण करने का श्रेय **प्रो. रोस्टोव** को ही दिया जाता है। **कुजनेटस** का मत है कि भले उनकी स्थितियों में कहीं-कहीं भ्रम और दोहरेपन के बीज स्पष्ट दिखाई देते हैं। एवं इसका दृष्टिकोण आर्थिक विकास की प्रक्रिया को समझने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकता है।

3.7 शब्दावली (Glossary)

- **प्राकृतिक साधन (Natural means):** प्राकृतिक साधनों से हमारा आशय उस प्रकृति प्रदत्त भौतिक साधनों से हैं जिन्हें मनुष्य अपने प्रयत्नों से उत्पन्न नहीं कर सकता जैसे- भूमि, जल, समुद्री साधन, जलवायु, वर्षा आदि।
- **मानवीय संसाधन या श्रम (Human resources or labour):** मानवीय संसाधन से आशय किसी देश की जनसंख्या और उसकी शिक्षा, कुशलता, दूरदर्शिता एवं उत्पादकता से होता है।
- **पूँजी निर्माण (Capital formation):** पूँजी निर्माण होने का अर्थ है प्रति वर्ष पूँजीगत वस्तुओं के स्टॉक में वृद्धि होना।
- **तकनीकी प्रगति (Technological Advancement):** तकनीकी प्रगति एक बहुमुखी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत नई तकनीक, नई मशीनें एवं कुशलता इत्यादि बातें सम्मलित की जाती हैं।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1.चार 2. पांच 3.1952

निम्नलिखित कथनों में सत्य या असत्य कथनोंको चुनिये-

1.सत्य 2.असत्य

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- वी.सी. सिन्हा (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिहं (2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन (2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
- आई. सी. धींगरा (1987), इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया, एस. चन्द्र नई दिल्ली।

3.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- I Viner, "The Economic of Development" in The Economic of Undevelopment, (ed) A.N. Aggarwal and S.P. Singh,. Nurkse, op.cit, p - 1
- United Nations Mearures for the Economic Development of Underdeveloped Countries.
- World Bank Development Report 1999-2000 pp. 232-233 Report 1983.
- H. I. Keenleyside in Dynamics of Development, (ed) G.Hambidge,
- Agarwal,R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
- Taneja,M.L. & Myer R.M.: “Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. आधुनिक आर्थिक वृद्धि क्या है? इसको प्रभावित करने वाले मुख्य तत्वों की विवेचना कीजिए।
2. आर्थिक विकास में गैर आर्थिक तत्व क्या हैं? आर्थिक विकास की प्रक्रिया को वे किस प्रकार सहायता अथवा बाधा पहुंचाते हैं?
3. रोस्टोव की आर्थिक संवृद्धि की अवस्थाओं का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। भारत की वर्तमान विकास की अवस्था का वर्णन कीजिए।

इकाई 4 - विकास की बदलती अवधारणा
(Changing Concept of Development)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)
4.2 उद्देश्य (Objectives)
4.3 विकास की बदलती अवधारणा (Changing Concept of Development)
4.4 मानव विकास (Human Development)
4.4.1 मानव विकास की अवधारणा (Concept of Human Development)
4.4.2 मानव विकास की आवश्यकता (The Need for Human Development)
4.4.3 मानव विकास के संघटक (Components of Human Development)
4.4.4 मानव विकास का मापन (Measurement of Human Development)
4.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
4.6 सारांश (Summary)
4.7 शब्दावली (Glossary)
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
4.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)
4.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

आज के प्रगतिशील युग में 'विकास' प्रत्येश देश के लिए बहुचर्चित विषय बन गया है और प्रत्येक राष्ट्र विकास की इस दौड़ में दूसरों से आगे निकलने के लिए निरन्तर प्रयासरत है। आप जानते हैं कि किसी भी राष्ट्र के विकास में मानवीय गुणों, सामाजिक प्रकृतियाँ, आर्थिक व राजनैतिक परिस्थितियाँ और ऐतिहासिक संयोग महत्वपूर्ण कारक है। जिसमें मानव सबसे महत्वपूर्ण कारक है जोकि अन्य सभी संसाधनों को गतिशील बनाकर उपयोगी बनाना है। जिस देश में जितना उन्नत मानव एवं सतत विकास होता है, उस देश में विकास भी उतनी ही तीव्र गति से होता है। प्रस्तुत इकाई में विकास के संदर्भ में बदलती अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है।

4.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप-

- ✓ विकास की बदलती हुई विभिन्न अवधारणाओं व मानदण्डों को समझ सकेंगे।
- ✓ विकास की प्रतिष्ठित और आधुनिक विचारधारा को समझ सकेंगे।
- ✓ किसी देश के विकास हेतु मानव और सतत विकास की भूमिका को जान सकेंगे।
- ✓ किसी भी देश के लिए मानव विकास सूचकांक का निर्माण कर सकेंगे।

4.3 विकास की बदलती अवधारणा (Changing Concept of Development)

आप जानते हैं कि संकुचित अर्थ में, किसी देश की अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादकता के स्तर को बढ़ाना ही आर्थिक विकास है जबकि विस्तृत अर्थ में, आर्थिक विकास से तात्पर्य किसी की राष्ट्रीय आय में वृद्धि करके, निर्धनता को दूर करना एवं सामान्य लोगों के जीवन स्तर में सुधार करने से है। जैसा कि आपको अवगत ही हैं कि आर्थिक विकास के मापन के विचारों को भी प्रतिष्ठित एवं आधुनिक निम्न दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है-

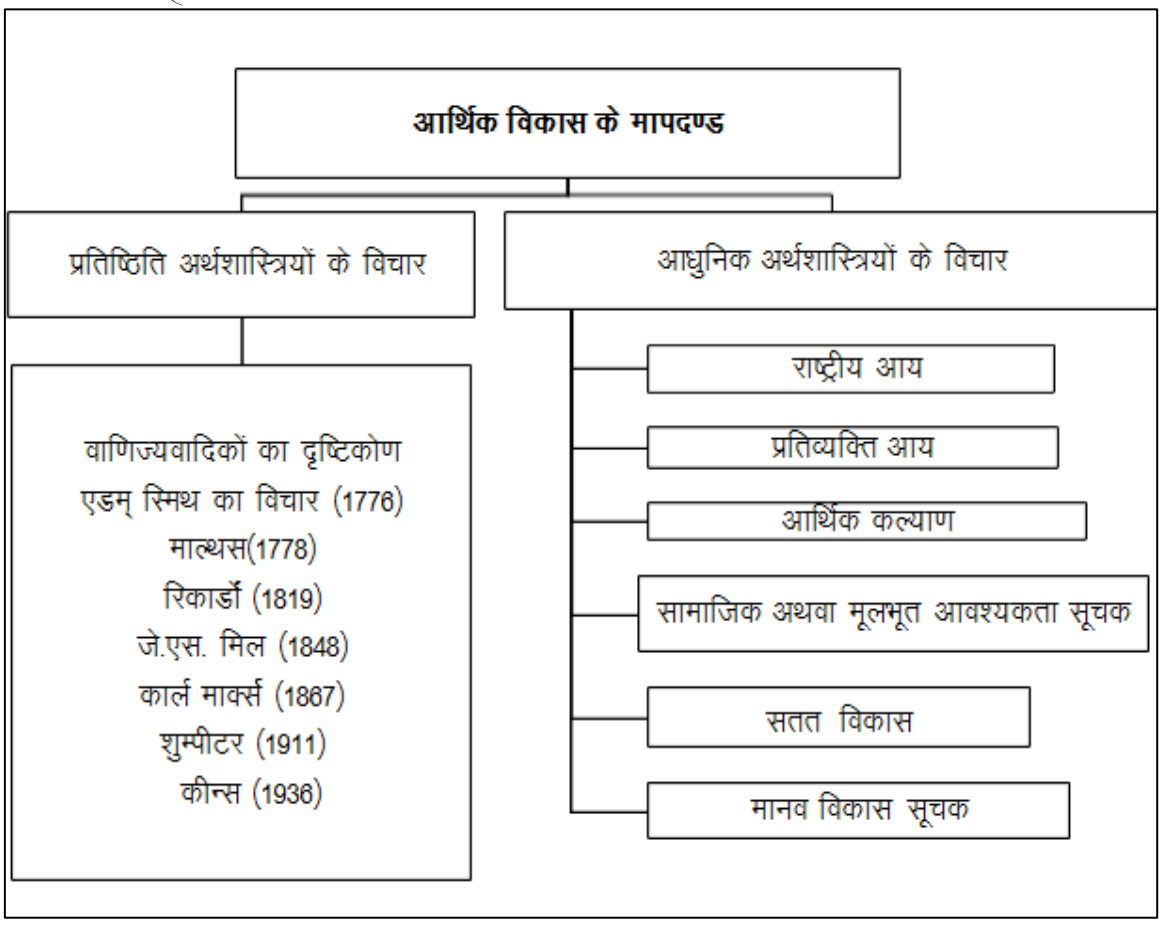

विकास की प्रतिष्ठित विचारधारा (The Classical Ideology of Development)

आर्थिक विकास के मापदण्डों के लिए प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचार भी प्राय: भिन्न थे। जहाँ **वाणिज्यवादी**, किसी भी देश के सोने व चाँदी के कोष को ही आर्थिक विकास का मापक मानते थे। वहीं **एडम स्मिथ** व उनके समकालीन अर्थशास्त्रियों ने किसी देश में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं को ही आर्थिक विकास का मापक माना था क्योंकि **एडम स्मिथ** के अनुसार किसी भी देश की शक्ति का ज्ञान, उस देश की उत्पादन शक्ति, श्रम की दिशा, निवासियों में तकनीकि का ज्ञान एवं विशिष्टिकीरण की मात्रा से होता है। **थामर्स राबर्ट माल्थस** ने धन वृद्धि को ही आर्थिक विकास का मापदण्ड माना। **रिकार्डो** ने अपनी पुस्तक **Principles of Political Economy and Taxation (1817)** में अपनी तर्कशक्ति का प्रयोग करके प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचारों के साथ आय वितरण के पहलू को जोड़कर नया रुप प्रदान किया। जहाँ **जे.एस. मिल,** आर्थिक विकास को उत्पादन साधनों का फलन मानते थे जिसमे श्रम व भूमि, उत्पादन के दो महत्त्वपूर्ण कारक हैं। वहीं **कार्ल मार्क्स** ने समाजवाद को ही आर्थिक विकास का मापदण्ड माना। **शुम्पीटर** ने आर्थिक विकास के प्रमुख साधन के रुप में स्फीतिकारी वित्त एवं नव प्रवर्तनों को महत्त्वपूर्ण माना। **कीन्स** ने आर्थिक विकास में अनेक उपकरणों जैसे- प्रभावपूर्ण माँग, गुणक, उपभोग व बचत प्रवृत्ति व पूँजी की सीमान्त उत्पादकता व ब्याज दर की भूमिका को बताया जिसका प्रयोग आर्थिक विकास के आधुनिक विचारों व सिद्धान्तों में किया गया।

विकास की आधुनिक विचारधारा (Modern Ideology of Development)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की भाँति ही आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने भी किसी एक आयाम को ही आर्थिक विकास का मापदण्ड नहीं माना। **मायर व वाल्डविन, लुईस, यंगसन, कुजनेट, श्रीमती उर्सुला हिक्स, सैमुएलसन, पीगू, विलियमसन, बटरिक** व **प्रो. डी. ब्राइट सिंह** जैसे विकासवादी अर्थशास्त्रियों ने किसी देश की कुल वास्तविक आय में वृद्धि को ही विकास का मापदण्ड माना था। उनके ***"आर्थिक विकास को समय की दीर्घावधि में अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के रुप में मापा जाए।"***

वहीं **प्रो. पॉल ए. बरन** व **एन.एस. बुकैनन** एवं **ई. एलिस** जैसे अर्थशास्त्रियों ने लम्बी अवधि में **प्रति व्यक्ति वास्तविक आय** में वृद्धि को विकास माना। उनके अनुसार, आर्थिक विकास के लिए वास्तविक आय में वृद्धि की दर जनसंख्या में वृद्धि की दर से अधिक होनी चाहिए।

विकास की आर्थिक कल्याण संबंधित विचारधारा (Economic Welfare related Ideology of Development)

इसके उपरान्त **ओकुन व रिचर्ड्सन** ने किसी देश के बढ़ते हुए उपभोग व जीवन स्तर अर्थात् आर्थिक कल्याण को ही विकास का अभिसूचक माना। उनके अनुसार विकास ***"भौतिक समृद्धि में ऐसा अनवरत् दीर्घकालीन सुधार है जोकि वस्तुओं और सेवाओं के बढ़ते हुए प्रवाह में प्रतिबिम्बित समझा जा सकता है।"***

विकास की सामाजिक एवं मूलभूत आवश्यकता संबंधित विचारधारा (Social and Basic Needs related Ideology of Development)

1960 के दशक में, अर्थशास्त्रिगण कल्याण के वैकल्पिक मानदण्ड मालूम करने के कोशिश करते रहे, जिससे लोगों के जीवन-यापन के स्तर में आने वाले परिवर्तनों को प्रकट कर सके। इन व्यापक सूचकांकों का निर्माण करने के लिए भारित ज्यामितीय व अंकगणित रीति का प्रयोग किया गया। 1962 में **एवरेट ई, हैगन** ने 11 सामाजिक व व्यक्तिगत सूचकों का प्रयोग किया। वहीं **डोनाल्ड एच. नीवैरोस्की** ने 14 सूचकों का प्रयोग किया। **इर्मा एडलमैन** और **सिन्थिया टाफ्ट मॉरिस** ने 40 सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक तत्वों पर आधारित सूचकांक 1967 में तैयार किया। पहली बार 1970 में **संयुक्त राष्ट्र सामाजिक विकास अनुसंधान संस्था** ने 16 सामाजिक व आर्थिक सूचकों का अध्ययन किया। **हिक्स** और **स्ट्रीटन** ने सन् 1979 में स्वास्थ्य, शिक्षा, खाद्य, जल आपूर्ति, स्वच्छता व आवास जैसी 06 मूलभूत आवश्यकताओं का एक सूचकांक तैयार किया। इसी वर्ष में **मॉरिस डी. मॉरिस** ने विकास को मापने के लिए **"जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचक"** तैयार किया जोकि प्रत्याशित आयु, शिशु मृत्यु दर व साक्षरता पर आधारित है।

विकास की सतत विकास संबंधित विचारधारा (Sustainable Development related Ideology of Development)

सतत विकास अथवा टिकाऊ विकास (Sustainable Development) विकास की वह अवधारणा है 1987 में प्रस्तुत की गई जिसमें विकास की नीतियां बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मानव की न केवल वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति हो, वरन् अनन्त काल मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित हो सके। इसमें प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा पर विशेष बल दिया जाता है। इस विचार धारा को अगली इकाई में विस्तार से समझाया गया है।

4.4 मानव विकास (Human Development)

सर्वप्रथम मानव विकास सूचकांक **महबूब-उल-हक** के निर्देशन में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 1990 में तैयार किया गया था। इसके उपरान्त् अनेक अर्थशास्त्रियों का ध्यान मानव विकास की ओर आकर्षित हुआ। और तभी से सभी देशों के आर्थिक विकास का मापन मानव विकास सूचकांक के माध्यम से किया जा रहा है। अब यह प्रश्न उठता है कि मानव विकास क्या है?

4.4.1 मानव विकास की अवधारणा (Concept of Human Development)

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की 1997 की मानव विकास रिपोर्ट में मानव विकास की अवधारणा की व्याख्या करते हुए लिखा गया है कि, ***"यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जनसामान्य के विकल्पों का विस्तार किया जाता है और इनके द्वारा उनके कल्याण के उन्नत स्तर को प्राप्त किया जाता है। यही मानव विकास की धारणा का मूल है। ऐसे सिद्धान्त न तो सीमाबद्ध होते हैं और न ही स्थैतिक, परन्तु विकास के स्तर को दृष्टि में रखते हुए जनसामान्य के पास तीन विकल्प हैं- एक लम्बा और स्वस्थ जीवन व्यतीत करना, ज्ञान प्राप्त करना और अच्छा जीवन स्तर प्राप्त करने के लिए आवश्यक संसाधनों तक अपनी पहुँच बढ़ाना। कई और विकल्प भी हैं जिन्हें बहुत से लोग महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं- राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता से सृजनात्मक और उत्पादक बनने के अवसर और स्वाभिमान एवं गारन्टीकृत मानव अधिकारों का लाभ उठाना।"***

प्राय: यह माना जाता है कि किसी भी मानव की आय में वृद्धि होने से उसमें सभी विकल्पों का विस्तार हो जाता है, लेकिन आय के असमान वितरण व शासकों द्वारा कुछ राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के कारण लोगों की आय में विस्तार से लोगों के सामने विकल्पों का विस्तार नहीं होता है।

महबूब-उल-हक कहते हैं कि, ***"यदि समाज यह नहीं समझता कि उनका वास्तविक धन उनके लोग हैं, तो भौतिक धन के निर्माण के बारे में अत्यधिक लगाव मानव जीवन को समृद्ध बनाने के लक्ष्य को धुँधला कर देता है।"*** अत: मानव विकास लोगों के सभी जरुरी विकल्पों में विस्तार के साथ-साथ प्राप्त होने वाले कल्याण के स्तर को ऊँचा करने की प्रक्रिया है।

4.4.2 मानव विकास की आवश्यकता (The Need for Human Development)

अब यह प्रश्न उठता है कि किसी भी देश के आर्थिक विकास लिये मानव विकास क्यों आवश्यक है? **पॉल स्ट्रीटन** ने मानव विकास की आवश्यकताओं पर प्रकाश डालते हुए **छ:** कारणों का वर्णन किया है, जो यह स्पष्ट करते हैं कि मानव विकास आवश्यक क्यों है?

1. उनके अनुसार मानव विकास उद्देश्य है जबकि आर्थिक संवृद्धि मानव विकास का साधन मात्र है, क्योंकि आर्थिक विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया का अन्तिम उद्देश्य स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों की वर्तमान व भावी पीढ़ियों को लक्ष्य के रुप में देखना है। इसके साथ-साथ मानव की स्थितियों में सुधार करके लोगों के सभी विकल्पों में विस्तार करना है।
2. किसी भी देश में ऊँची उत्पादकता को प्राप्त करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन मानव विकास है। आप सभी भलीभाँति जानते हैं कि किसी देश में समपोषित, स्वस्थ, शिक्षित, कुशल व सतर्क श्रम शक्ति सबसे महत्त्वपूर्ण उत्पादक परिसम्पत्ति है। अत: सभी देशों में मानव के

पोषण, स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा में उचित निवेश के द्वारा उत्पादकता का उचित आधर तैयार किया जाता है।

3. मानव विकास, मानव पुनरुपादन को धीमा करके परिवार के आकार को छोटा करने में सहायता पहुंचाता है। जिससे जनसंख्या के नकारात्मक प्रभावों को कम करे सकारात्मक प्रभावों में बदलना सम्भव होता है, क्योंकि शिक्षा के स्तर में सुधार से लोगों में छोटे परिवार के फायदों के प्रति चेतना पैदा होती है और अच्छी स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता के परिणामस्वरुप बाल मृत्यु दर में कमी आती है। इसका प्रभाव यह पड़ता है कि लोग ज्यादा बच्चों की जरुरत महसूस नहीं करते हैं।
4. मानव विकास, भौतिक पर्यावरण की दृष्टि से भी आवश्यक है, क्योंकि मानव विकास के परिणामस्वरुप देश में गरीबों की संख्या में भी कमी आती है। इससे वनों के विनाश, रेगिस्तान के विस्तार और भूसंरक्षण में भी कमी आती है। परम्परागत अर्थशास्त्रियों का मत था कि किसी देश में बढ़ती जनसंख्या व उसके बढ़ते घनत्व का पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, लेकिन लोगों का भूमि पर अधिकार सुरक्षित करके, इस बढ़ती जनसंख्या व ऊँचे जनसंख्या घनत्व से मिट्टी व वनों का संरक्षण किया जा सकता है।
5. मानव विकस से गरीबी में कमी होती है तो एक स्वस्थ समाज के गठन, लोकतंत्र के निर्माण और सामाजिक स्थिरता में सहायता मिलती है।
6. मानव विकास से सामाजिक उपद्रवों में कमी आती है जिससे देश में राजनीतिक स्थिरता बनी रहती है।

अत: आपको अब स्पष्ट हो गया होगा की किसी भी राष्ट्र के सम्पूर्ण विकास हेतु मानव विकास आवश्यक है, क्योंकि मानव विकास प्रतिमान में न केवल किसी देश की अर्थव्यवथा अपितु राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक कारकों को भी महत्त्व दिया जाता है।

4.4.3 मानव विकास के संघटक (Components of Human Development)

आप जानते हैं कि आर्थिक विकास की आधुनिक परिभाषा का सम्बन्ध अच्छे मानवीय जीवन से है तो अब प्रश्न यह उठता है कि एक अच्छे जीवन के संघटक कौन-कौन से हैं?

मानव जीवन के संघठकों के बारे में अलग-अलग अर्थशास्त्रिगण अलग-अलग संघठकों पर बल देते हैं। जहाँ **महबूब-उल-हक** ने मानव विकास प्रतिमान के लिए औचित्य, सामर्थ्यता, उत्पादकता और सशक्तिकरण चार अनिवार्य संघटक बताये थे। वहीं **डेनिस गॉलिट** व अन्य अर्थशास्त्रियों ने जीवन निर्वाह, आत्म-सम्मान व स्वतंत्रता संगठनों की महत्त्वपूर्ण संघठक माना। विभिन्न अर्थशास्त्रियों के द्वारा बताये गये मानव विकास के संघटकों को निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है-

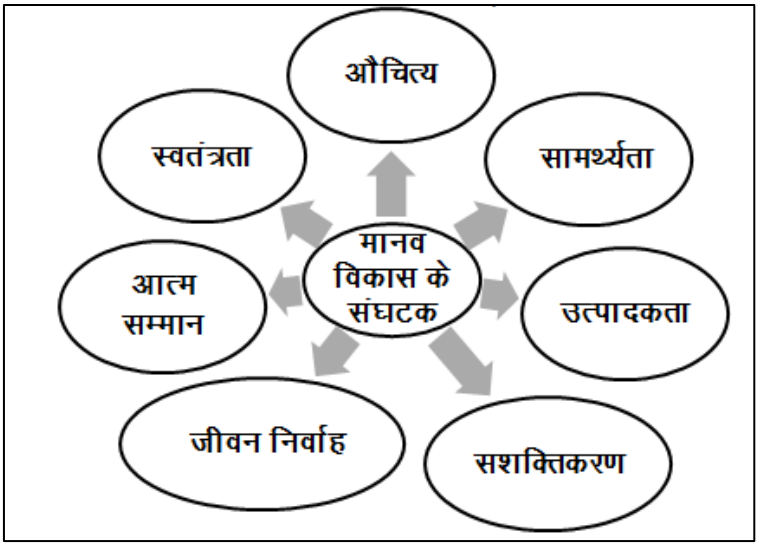

1. **औचित्य (Justification) - महबूब-उल-हक** ने मानव विकास के लिए अनिवार्य तत्वों की व्याख्या करते समय सर्वप्रथम औचित्य तत्व का वर्णन किया है। अब प्रश्न यह उठता है कि आखिरकार औचित्य से तात्पर्य क्या है? उनके अनुसार यदि आर्थिक विकास द्वारा लोगों के विकल्पों का विस्तार होता है तो उनकी सभी अवसरों तक न्यायोचित पहुँच होनी चाहिए। इसे ही औचित्य कहा गया। यदि कोई देश मानव विकास हेतु अपने देश के नागरिको का सभी आवश्यक विकल्पों तक पहुँच को न्यायोचित बनाना चाहता है तो उसे समाज में व्यापत सामर्थ्य के आधारभूत करकों का पुनर्गठन करना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित दिशा में परिवर्तन करने चाहिए।

   पहला, उत्पादक परिसम्पत्तियों के वितरण में परिवर्तन करना चाहिए। यह परिवर्तन विशेष रुप से भूमि सुधारों द्वारा किया जा सकता है।

   दूसरा, आय के वितरण में परिवर्तन करना चाहिए। इसके लिए राजकोषीय नीति को एक महत्त्वपूर्ण उपकरण के रुप में प्रयोग किया जाना चाहिए, जिसके द्वारा आय का अतंरण अमीरों से गरीबों कीओर होगा।

   तीसरा, साख प्रणाली में परिवर्तन करना चाहिए। साख प्रणाली में परिवर्तन इस प्रकार से होना चाहिए, जिससे गरीबों की ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओं को सन्तोषपूर्ण ढंग से पूरी की जा सके।

   चौथा, राजनीतिक अवसरों में इस प्रकार परिवर्तन करना चाहिए, जिसके द्वारा इसमें समानता लायी जा सके। इसके लिए वोट सम्बन्धित अधिकारों में सुधार होना चाहिए व इससे साथ राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए।

   पाचवाँ, मानव विकास में सामाजिक व वैधानिक बाधायें भी महत्त्वपूर्ण बाधा हैं। अत: इन्हें दूर करने के प्रयास किये जाने चाहिए, क्योंकि ये महिलाओं और अल्पसंख्यक वर्गों के लोगों की महत्त्वपूर्ण आर्थिक व राजनीतिक अवसरों तक पहुँच को सीमित करती है।

2. **सामर्थ्यता (Efficiency) -** जैसा कि आप सभी जानते हैं कि सामर्थ्यता की संकल्पना को प्राकृतिक संसाधनों के नवीनीकरण के रुप में देखा व समझा जाता है, जबकि यहसामर्थ्य विकास का केवल एक पहलू मात्र है। जिसमें वर्तमान पीढ़ी को प्राप्त सभी अवसर हमारी भावी पीढ़ी को भी प्राप्त होने चाहिए। भावी पीढ़ी का यह अधिकार ही सामर्थ्यता को मानव विकास का अनिवार्य संघठक बनाता है। **महबूब-उल-हक** ने कहा, ***"मानव अवसरों की सामर्थ्यता ही हमारी दिलचस्पी के केन्द्र में होनी चाहिए।"*** क्योंकि सामर्थ्यता हेतु भौतिक मानवीय, वित्तीय व पर्यावरण सम्बन्धित सभी प्रकार की पूँजी को भविष्य के लिए बनाये रखना जरुरी होता है।

सामर्थ्यता, वितरण सम्बन्धी औचित्य का विषय है। इसके लिए विकास के अवसरों को वर्तमान व भावी, दोनों पीढ़ियों के लिए उचित ढंग से बाँटना आवश्यक हो जाता है। इसके विषय में **महबूब-उल-हक** कहते हैं, ***"सामर्थ्यता का अर्थ गरीबी और अभाव के वर्तमान अवसरों को बनाये रखना नहीं है। यदि वर्तमान विश्व के अधिसंख्यक लोगों के लिए दुखदायी और अस्वीकार्य है तो इसे पहले बदलकर ही बनाए रखना चाहिए। दूसरे शब्दों में, जो बनाये रखने हैं, वे जीवन के सार्थक अवसर हैं, न कि मानवीय अभाव।"*** वितरण के साथ-साथ सामर्थ्यता का अर्थ यह भी है कि देश के भीतर व विभिन्न देशों के बीच जीवन स्तर सम्बन्धी विषमताओं पर पुनर्विचार किया जाये और उन्हें कम करने का प्रयास किया जाये। क्योंकि अन्यायपूर्ण और राजनीतिक व आर्थिक स्थिरता के परिणामस्वरुप विश्व में अस्थिरता फैल जाती है जिसको लम्बे समय तक बनाये नहीं रखा जा सकता है।

3. **उत्पादकता (Productivity) -** मानव विकास का एक आवश्यक संघठक उत्पादकता है, क्योंकि विकास अर्थशास्त्र में मानव प्रयत्नों से उत्पादकता पर पड़े प्रभावों का ध्यान दिया जाता है। किसी भी देश में उत्पादकता को बनाये रखने व उसमें वृद्धि करने के लिए निवेश करना एक पूर्व

निर्धारित शर्त है। लोगों के अधिकतम संभाव्य को उपयोग में लाने के लिए समष्टि आर्थिक पर्यावरण का सहायक होना जरुरी है, क्योंकि आर्थिक संवृद्धि मानव विकास मॉडलों का एक उप वर्ग है जो आवश्यक तो है परन्तु सम्पूर्ण संरचना नहीं है। इस प्रकार आधुनिक विकास मॉडलों का मुख्य आधार मानव पूँजी है। अर्थशास्त्रियगण इसको विकास का साधन मानते हैं। अत: मानव विकास, आर्थिक विकास का केन्द्र बिन्दु और अन्तिम लक्ष्य है।

4. **सशक्तिकरण (Empowerment) -** जब लोग अपनी स्वतंत्र इच्छा से विकल्पों के विषय में निर्णय लें सकेंगे, तब ही इसे मानव विकास का सम्पूर्ण सशक्तिकरण माना जायेगा। साधारणत सशक्तिकरण का अर्थ लोकतंत्र से है, जिसमें लोग अपने नियंत्रणों और नियमनों से स्वतंत्र हों व शक्ति के विकेन्द्रीकरण द्वारा देश में शासनके प्रत्येक स्तर पर वास्तविक शासन सम्भव हो सकेगा। देश में लोगों को सशक्त करने के लिए निम्नलिखित पहलुओं पर ध्यान देना होगा व उनके लिए प्रयास करना होगा।
   क) लोगों को सशक्त करने हेतु उनकी शिक्षा और स्वास्थ्य में निवेश करना चाहिए तभी लोग बाजार के अवसरों का पूर्ण लाभ उठा सकेंगे।
   ख) लोगों को सशक्त करने के लिए ऐसा वातावरण तैयार करना होगा जिससे सभी व्यक्तियों की साख।
   ग) उत्पादक परिसम्पत्तियों जैसी उत्पादक सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकेगी।
   घ) सशक्तिकरण हेतु मानव को लिंग के आधार पर बाँटे बिना ही स्त्री-पुरुष दोनों को सशक्त करना चाहिए ताकि वे समान स्तर पर एक-दूसरे के साथ प्रतियोगिता कर सकेंगे।

5. **जीवन निर्वाह (Survival) -** प्रत्येक मानव को जीवन जीने के लिए कुछ आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होना आवश्यक है जिसमें भोजन, आवास, जल आपूर्ति व शिक्षा, स्वास्थ्य व संरक्षण आदि शामिल हैं। जीवन की गुणवत्ता को सुधारने हेतु आर्थिक विकास आवश्यक शर्त है। इस सम्बन्ध में **माईकल पी. टोडारो** ने लिखा है, ***"प्रति व्यक्ति आय का बढ़ना, गरीबी का उन्मूलन, रोजगार के अवसरों की अधिकता, आय असमानता को घटना इत्यादि विकास की आवश्यक शर्तें हैं, परन्तु पर्याप्त नहीं।"*** अत: स्पष्ट होता है कि जीवन की प्रत्येक आवश्यकताओं को महत्त्व ही देना मानव विकास की आधारशिला है।

6. **आत्म-सम्मान (Self-Esteem)** - सभी लोग आत्म-सम्मान प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं। आत्म-सम्मान का स्वरुप व आकार एक समाज से दूसरे समाज एवं एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में बदलता रहता है। इस आधुनिकीकरण के युग में धन और सम्पत्ति, आत्म-सम्मान का एक विश्वव्यापी मापदण्ड बन गया है। आजकल सभी देशों में भौतिक धन और आर्थिक शक्ति, आत्म-सम्मान के परिचायक बन गये हैं। सभी अल्प-विकसित देश आर्थिक विकास के माध्यम से आत्म-सम्मान प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि आर्थिक विकास ही आत्म-सम्मान का अनिवार्य पथ है। इस सम्बन्ध में **डेनिस गौलिट** कहते हैं, ***"लक्ष्य के रुप में विकास तर्कसंगत है, क्योंकि सम्मान प्राप्ति के लिए यह केवल महत्त्वपूर्ण ही नहीं, अपितु अनिवार्य है।"***

7. **स्वतंत्रता (Freedom) -** मानव विकास के संघठक के रुप में स्वतंत्रता बहुत महत्त्वपूर्ण है। यहाँ स्वतंत्रता का अर्थ राजनीतिक या सैद्धान्तिक रुप में नहीं अपितु आधारभूत व विस्तृत परिपेक्ष में है। स्वतंत्रता का अर्थ भौतिक प्रतिबन्धों, सामाजिक निषेधों, हठधर्मी विश्वासों, अज्ञानता एवं गरीबी से मुक्ति पाना है। इस सन्दर्भ में **आर्थर लूईस** कहते हैं कि, ***"आर्थिक संवृद्धि का लाभ यह नहीं है कि धन, प्रसन्नता बढ़ाता है, अपितु मानवीय प्राथमिकताओं की श्रृंखला को बढ़ाता है।"***स्वतंत्रता से अभिप्राय: समाज एवं व्यक्तियों के विस्तृत प्रकार के अधिकारों को व्यक्त करना एवं विदेशी निर्भरता व प्रतिबन्धों को कम करना है। आर्थिक विकास द्वारा समाज, भौतिक वातावरण पर नियंत्रण एवं शासन कर सकता है एवं अधिक मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं को उपलब्ध करवाकर सदस्यों को अधिक आराम और स्वतंत्रता प्रदान करवा सकता है।

4.4.4 मानव विकास का मापन (Measurement of Human Development)

जैसा कि आप जानते है कि विकास के आर्थिक मापों को आमतौर पर गैर आर्थिक सूचकों से जोड़ा गया है। इस सम्बन्ध में सामाजिक-आर्थिक विकास के विश्लेषण हेतु संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 1990 से लगातार प्रतिवर्ष मानव विकास रिपोर्टो का प्रकाशन किया जा रहा है। जिसका केन्द्र बिन्दु सभी देशों के लिए मानव विकास सूचकांक तैयार करना व इसको परिष्कृत करके श्रेष्ठ बनाना है। अब प्रश्न यह उठता है कि मानव विकास सूचकांक क्या है? एवं किसी देश के लिए इसको कैसे तैयार किया जाता है?

मानव विकास सूचकांक

मानव विकास सूचकांक, मानव विकास का सारांश (Summary) मापक है। यह किसी देश में हुये मानव विकास से सम्बन्धित तीन आधारभूत आयामों की औसत उपलब्धि के रूप में मापा जाता है।

मानव विकास सूचकांक को बनाने की प्रक्रिया

अब आप जानते ही है कि मानव विकास सूचकांक तीन आयामों की औसत उपलब्धि है। तो आइए अब मानव विकास सूचकांक को तैयार करने की प्रक्रिया समझने का प्रयास करें। मानव विकास सूचकांक को बनाने की प्रक्रिया को आप निम्नलिखित कदमों के माध्यम से आसानी से समझ सकेंगे। इन्हे निम्नलिखित प्रकार से दर्शाया जा सकता है।

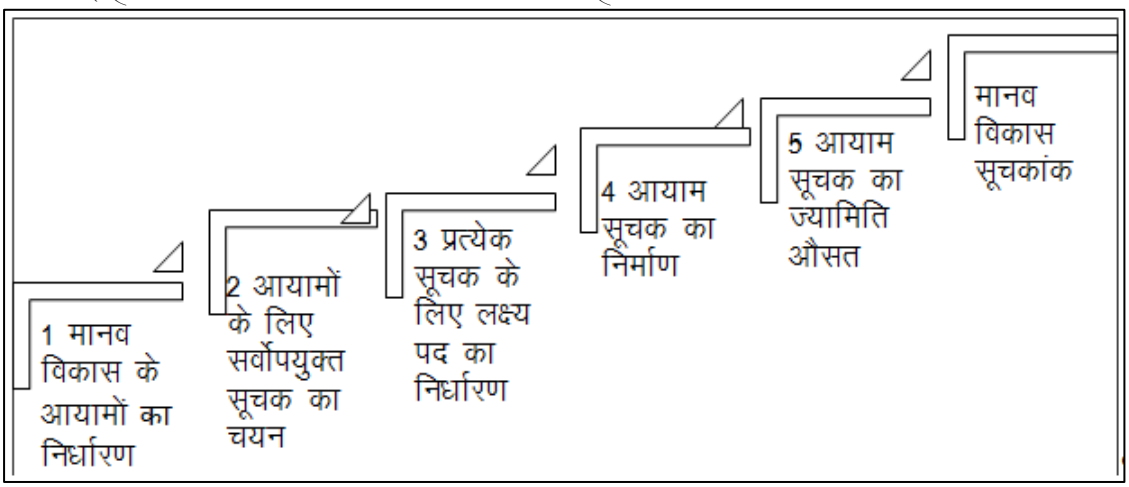

मानव विकास के आयामों का निर्धारण-

जैसा कि आप जानते है कि प्रत्येक मानव के सम्पूर्ण विकास में शिक्षा, स्वास्थ्य व उसकी आय सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। इसीलिए इस दृष्टिकोण को लेकर **महबूब-उल-हक** ने मानव विकास सूचकांक तैयार करने के लिए तीन बुनियादी आयामों का प्रयोग किया वे है- लम्बा और स्वस्थ जीवन, ज्ञान व अच्छा जीवन स्तर।

आयामों के लिए सर्वोपयुक्त सूचक का चयन-

मानव विकास के आयामों के मापन हेतु निर्धारित आयामों के लिए सर्वाधिक उर्पयुक्त सूचक का चुनाव किया जाता है। चयनित आयामों को मापने के लिए **महबूब-उल-हक** ने जिन सूचकों का प्रयोग किया वे निम्नलिखित हैं-

1. एक लम्बा व स्वस्थ जीवन आयाम के मापन हेतु जन्म के समय जीवन प्रत्याशा सूचक का प्रयोग किया जाता है जोकि किसी देश के नागरिकों के स्वास्थ्य का द्योतक व आर्थिक विकास का परिचायक है।
2. ज्ञान आयाम के मापन हेतु स्कूली शिक्षा के औसत वर्ष व स्कूली शिक्षा के प्रत्याशित वर्ष दो सूचकों का प्रयोग किया जाता है।

3. एक अच्छा जीवन स्तर आयाम के मापन के लिए क्रय शक्ति समता के आधार पर यू. एस. डॉलर में प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय सूचक का प्रयोग किया जाता है।

जैसा कि आप जानते है कि विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के मापक के रूप में मानव विकास सूचकांक का निर्माण 1990 से किया जा रहा है और इसको श्रेष्ठ बनाने के लिए, इसके आयामों में अभी तक कोई भी परिवर्तन नही किया गया है, परन्तु आयाम के सूचकों में 2010 से परिवर्तन कर दिया गया है। 2010 में प्रकाशित मानव विकास रिपोर्ट से पूर्व इसके ज्ञान व एक अच्छा जीवन स्तर आयामों के अलग सूचको का प्रयोग किया जाता रहा था। ज्ञान आयाम के लिए बालिग साक्षरता दर और सकल नामांकन अनुपान सूचकका प्रयोग किया जाता था। उपादान विश्लेषण के द्वारा जिन्हे क्रमश: दो तिहाई व एक-तिहाई वजन देकर शिक्षा सूचकांक तैयार किया जाता था। साथ ही, अच्छे जीवन स्तर के लिए क्रय शक्ति समता आय को समायोजित करने के लिए इसे नकद आय में परिवर्तित कर दिया गया। इसे क्रय शक्ति समता के आधार पर यू. एस. डॉलर में प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय कहा जाता था।

अधिकतम मान किसी भी दो देशो या समयावधि के बीच सापेक्षित तुलना को प्रभावित नही करता प्रत्येक सूचक के लिए लक्ष्य पद का निर्धारण इसके उपरान्त प्रत्येक चुनिन्दा सूचकों के लिए न्यूनतम व अधिकतम लक्ष्य पदों का निर्धारण किया जाता है। मानव विकास सूचकांक बनाने हेतु प्रत्येक आयाम में सम्मुचय हेतु ज्यामिति माध्य का प्रयोग किया जाता है। सभी सूचकों हेतु लक्ष्य पदों के अधिकतम मान को प्राप्त करने के लिए, देशों के उपलब्ध काल श्रेणी आंकड़ो के आधार पर अधिकतम वास्तविक अवलोकित मान का प्रयोग किया जाता है। जबकि न्यूनतम मान तुलना को प्रभावित करता है। इसीलिए न्यूनतम मान के निर्धारण हेतु उचित निर्वाह स्तर मूल्य या शून्य का प्रयोग किया जाता है। क्योंकि प्रत्येक आयाम, सूचकों के संगत आयामों में शक्ति का स्थानापन्न है। आनन्द व सेन ने आय के लिए वास्तविक लघुगुणक का प्रयोग किया है।मानव विकास सूचकांक हेतु निर्धारित सूचकों के लिए अधिकतम व न्यूनतम लक्ष्य पदो का निर्धारण किया जाता है।

सारणी 1 में मानव विकास रिपोर्ट 2010 के अनुसार मानव विकास सूचकांक हेतु निर्धारित अधिकतम व न्यूनतम लक्ष्य पदों कों दर्शाया गया है-

सारणी 1 मानव विकास सूचकांक हेतु निर्धारित अधिकतम व न्यूनतम लक्ष्य पद

सूचक	अधिकतम मान	न्यूनतम मान
जन्म के समय जीवन प्रत्याशा	83.2	20
स्कूली शिक्षा के औसत वर्ष	13.2	0
स्कूली शिक्षा के प्रत्याशित वर्ष	20.6	0
क्रय शक्ति समता के आधार पर यू.एस.डॉलर में प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय	1,08,211	163

आयाम सूचक का निर्माण-

अब अधिकतम व न्यूनतम निर्धारित लक्ष्य पदों की सहायता से प्रत्येक आयाम के लिए अलग-अलग आयाम सूचक निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग करके तैयार किये जाते है।

आयाम सूचक

$$= (\text{वास्तविक मान} - \text{न्यूनतम मान}) + (\text{अधिकतम मान} - \text{न्यूनतम मान})$$

उपर्युक्त सूत्र का प्रयोग करने से प्रत्येक आयाम सूचक का मान 0 से 1 के बीच आता है।

आयाम सूचक का ज्यामिति औसत-

आयाम सूचक का सूत्र का प्रयोग करके प्रत्येक आयाम हेतु प्राप्त तीनों आयाम सूचकों का ज्यामिति मान ज्ञात किया जाता है। जिसे हम मानव विकास सूचकांक का मान कहते है।

$$\sqrt[3]{\text{Life Expectancy Index} * \text{Education Index} * \text{Gross National Income}}$$

Life expectancy index=जीवन प्रत्याशा सूचकांक

Education Index= शिक्षा सूचकांक

Gross National Income=सकल राष्ट्रीय आय

इस प्रकार अब आप किसी भी देश का मानव विकास सूचकांक का मान ज्ञात कर सकते हैं व ज्ञात मानो के आधार पर हम विभिन्न देशों के आर्थिक विकास की स्थिति की तुलना व विश्लेषण कर सकते है।

4.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. किसी देश की अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में.....के स्तर को बढ़ाना ही आर्थिक विकास है। (उत्पादकता **या** समान)
2. विकासवादी अर्थशास्त्रियों ने किसी देश की कुल .....आय में वृद्धि को ही आर्थिक विकास का मापदण्ड माना था। (वास्तविक **या** औसत)
3. रिकार्डो की पुस्तक का नाम .....है। (Principles of Political Economy and Taxation **या** General Theory of Employment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. "जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचक" को मॉरिस डी. मॉरिस ने प्रस्तुत किया।
2. मानव विकास सूचकांक तैयार करने में एक लम्बे व स्वस्थ जीवन के मापन हेतु जन्म के समय जीवन प्रत्याशा सूचक का प्रयोग किया जाता है।

4.6 सारांश (Summary)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि विकास का मूल लक्ष्य मानवीय, प्राकृतिक, पूँजीगत एवं तकनीकि संसाधनों का विकास करके उत्पादकता का सृजन करना है एवं आर्थिक संवृद्धि में तीव्र गति, असमानता में कमी और गरीबी की समाप्ति होनी चाहिए। विकास के विभिन्न मापदण्ड हैं, जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण व प्रचलित मानदण्ड मानव विकास सूचकांक है। आज के युग में मानव विकास सूचकांक विकास का सबसे विश्वसनीय मापक माना जाना है। यह उन सभी चरों को आधार बनाता है जो सामाजिक क्षेत्र के विकास को प्रभावित करते हैं। यह दर्शाता है कि विकास हो रहा है तो समाज के निचले वर्गों के लोगों के जीवन स्तर में कितना सुधार हो रहा है और अब आप मानव विकास सूचकांक बनाने की प्रक्रिया से भी अवगत हो चुके हैं और किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास को मापने के लिए निर्मित मानव विकास सूचकांक का स्वयं विश्लेषण कर सकते हैं।

4.7 शब्दावली (Glossary)

- **वास्तविक आय (Real Income):** मौद्रिक आय की क्रय शक्ति को ही वास्तविक आय कहते हैं।

- **प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income):** कियी देश की राष्ट्रीय आय को वहाँ की जनसंख्या से विभाजित करके प्रति व्यक्ति आय प्राप्त की जाती है।
- **जीवन स्तर (Standard of Living):** व्यक्ति, परिवार या व्यक्तियों के समूह की वह सीमा जिसमें वह अपनी सभी प्रकार की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा कर पाते हैं, उसे ही जीवर स्तर कहा जाता है।
- **जीवन सूचकांक की भौतिक गुणवत्ता (Physical Quality of Life Index):** जन्म पर जीवन प्रत्याशा, साक्षरता दर, और बाल मृत्यु दर जैसे तीन सामाजिक सूचकों का एक मिश्रित सूचकांक ही जीवन सूचकांक की भौतिक गुणवत्ता है।
- **सामाजिक सूचक (Social Indecators) :** आर्थिक विकास के गैर आर्थिक सूचक ही सामाजिक सूचक है। जैसे जन्म दर जीवन प्रत्याशा, साक्षरता की दर, बालमृत्यु दर, प्रति 100 जनसंख्या पर उपलब्ध डॉक्टर आदि।
- **उत्पादन विश्लेषण (Output Aalysis):** विश्लेषण की वह विधि जिसमें विभिन्न चरों को उनको उनके महत्त्वके अनुसार भार दिया जाता है।
- **आर्थिक कल्याण (Economic Welfare) :** आर्थिक कल्याण समाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे प्रत्यक्ष रुप से मुद्रा में नहीं मापा जा सकता है।
- **स्कूली शिक्षा के औसत वर्ष (Average Years of Schooling)** : शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर अधिकारिक अवधि का प्रयोग करते हुए शिक्षा प्राप्ति स्तरों से परिवर्तित करने पर 20 वर्ष अथवा उससे अधिक आयु वाले व्यक्तियों द्वारा प्राप्त शिक्षा के वर्षों की औसत संख्या।
- **स्कूली शिक्षा के प्रत्याशित वर्ष (Expected Years of Schooling)** : यदि (बच्चों) के जीवन-काल में, आयु विशिष्ट नामांकन दरों का विद्यमान ढाँचा स्थिर बना रहता है, तो बच्चों द्वारा स्कूल में प्रवेश के समय स्कूल में बने रहने के लिए प्रत्याशित वर्षों की संख्या।
- **प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (Per Capita Gross National Income) :** एक अर्थव्यवस्था की सामूहिक आय, जो इसके उत्पादन एवं उत्पत्ति के साधनों के स्वामित्व द्वारा उत्पन्न की जाती है। इसमें से शेष विश्व के उत्पत्ति साधनों की आय को घटाया जाता है एवं इसको क्रय शक्ति समता दरों का प्रयोग करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय डॉलर में परिवर्तित किया जाता है। तत्पश्चात प्राप्त आय को मध्य वर्ष की जनसंख्या से विभाजित किया जाता है।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. उत्पादकता 2. वास्तविक 3. Principles of Political Economy and Taxation

निम्नलिखित कथनों में से सत्य /असत्य कथन चुनिये-

1. सत्य 2. सत्य

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- Meier, G.M. (1991), Leading issues in Economic Development, Oxford University Press, New Delhi (4th edition)
- Todaro, M.P. and Smith, S.C. (2003), Economic Development, Pearson Edution, Asia (8th edition).
- Agarwal, R.C. (2002), Economics of Development and Planning, Lakshmi Narain Agarwal, Agra.

- Puri, V.K. and Misra, S.K. (2016), Economics of Development and Planning, Himalaya Publishing House, Mumbai (16th edition)
- UNDP, Human Development Reports, Various issues.
- Ministry of Finance, Government of Indian, Economic Survey, 2015-2016.
- Dhingra, I.C. (1994), The Indian Economy, Sultan Chand and Sons, New Delhi.
- Thirlwall, A.P. (2011), Economic of Development Palgrave Machmillan, London, 9th
- Edition

4.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- तनेजा, एम.एल. एवं मॉयर, आर.एम. (2012), विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन, विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, जालंधर।
- झिंगन, एम.एल. (2009), विकास अर्थशास्त्र एवं आयोजन, वृदा पब्लिकेशन प्रा.लि., नई दिल्ली,(चतुर्थदश संस्करण)।
- सिंह, एस.पी. (1994), आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस. चंद एण्ड कं. लि., नई दिल्ली, (4वाँ संस्करण)।
- दत्त, गौरव एवं महाजन, अश्विनी (2016), भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चंद एण्ड कं. प्रा.लि., नई दिल्ली (55वाँ संस्करण)।
- सिन्हा, वी.सी. (2010), विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. विकास के विभिन्न मापों की विवेचना कीजिये?
2. किसी देश के मानव विकास मे कौान-कौान से संघटक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं विस्तार से चर्चा कीजिये?
3. मानव विकास सूचकांक किसे कहते है? इसकी रचना विधि को समझाये?

इकाई-5 मानव संसाधन विकास
(Human Resource Development)

5.1 प्रस्तावना (Introduction)
5.2 उद्देश्य (Objectives)
5.3 मानवीय संसाधन की अवधारणा (Concept of Human Resources)
5.4 मानव संसाधन निर्माण के क्षेत्र (Areas of Human Resource Formation)
5.5 मानव संसाधन निर्माण एवं शिक्षा की कसौटियां (Human Resource Formation and Criteria of Education)
5.5 मानव संसाधन निर्माण एवं शिक्षा की कसौटियाँ (Formation of Human Resources and Criteria of Education))
5.5.1 प्रतिफल की दर की कसौटी (Criterion for Rate of Return)
5.5.2 सकल राष्ट्रीय आय की शिक्षा के योगदान की कसौटी (Criterion of contribution of education to Gross National Income)
5.5.3 अवशेष साधन कसौटी (Residual Means Criterion)
5.5.4 सम्मिश्र सूचकांक कसौटी (Composite Index Criterion)
5.6 अर्द्धविकसित देशों में मानव संसाधन विकास के निम्न स्तर के कारण (Reasons for Low Level of the Formation of Human Resource Development in Underdeveloped Countries)
5.7 अर्द्धविकसित देशों में मानव संसाधन के विकास हेतु उपाय (Measures for development of Human Resources in Underdeveloped Countries)
5.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
5.9 सारांश (Summary)
5.10 शब्दावली (Glossary)
5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)
5.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
5.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)
5.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी देश के आर्थिक विकास में मानव संसाधनो की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यद्यपि आर्थिक विकास में प्राकृतिक संसाधनो तथा पूंजी की मात्रा की विशेष महत्वपूर्ण भूमिका होती है फिर भी ये आर्थिक विकास के निजीव साधन है। वास्तव में मानव ही वह शक्ति है जा इन ससांधनो को अपनी कार्यकुशलता तथा बौद्रिक क्षमता द्वारा वांक्षित दिशा में गतिशील कर इनका कुशलतक उपयोग करती है तथा विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि आर्थिक विकास के लिए मानव संसाधन प्राकृतिक संसाधनों की अपेक्षा महत्वपूर्ण है।

5.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- ✓ मानवीय संसाधन की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- ✓ मानवीय संसाधन के विकास के आवश्यक तत्वों के विषय में जान पाएंगे ।
- ✓ मानवीय पूंजी निर्माण का आर्थिक विकास में महत्त्व एवं प्रभाव से अवगत हो सकेंगे
- ✓ राष्ट्रीय मानव विकास सूचकांक का परिकलन कर सकेंगे ।
- ✓ आर्थिक विकास में मानव संसाधन अथवा जनसंख्या के योगदान को समझ सकेंगे।

5.3 मानवीय संसाधन की अवधारणा (Concept of Human Resources)

मानवीय संसाधन से आशय किसी देश की जनसंख्या और उसकी शिक्षा, कुशलता, दूरदर्शिता तथा उत्पादकता से होता है। किसी देश की मानवीय शक्ति का अनुमान हम केवल वहां की जनसंख्या के आधार पर ही नहीं लगा सकते, इसके लिए जनसंख्या के गुणों पर भी विचार करना होगा। ***हार्बिसन और मायर्स*** के अनुसार, ***"मानवीय साधन का विकास ज्ञान, कुशलता तथा समाज के व्यक्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि होने वाली एक प्रक्रिया है। आर्थिक अर्थों में यह कहा जा सकता है कि यह मानवीय पूंजी का ऐसा संचय है जिसको अर्थव्यवस्था के विकास में प्रभावशाली विनियोग के रूप में लाया जा सकता है।"***

अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition)

मानवीय पूंजी निर्माण अथवा मानव विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत मानव शक्ति के विकास हेत भारी मात्रा में विनियोग किया जाता है ताकि देश की जन शक्ति प्राविधिक ज्ञान, योग्यता एवं कुशलता की दृष्टि से विशिष्टता प्राप्त कर सके।

प्रो. हार्बिन्सन के अनुसार ***"मानवीय पूंजी निर्माण से अभिप्राय ऐसे व्यक्तियों को उपलब्ध कराना और उनकी संख्या मे वृद्धि करना जो कुशल, शिक्षित व अनुभवपूर्ण हों, जिनकी देश की आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिए नितांत आवश्यकता होती है। मानव पूंजी निर्माण इस प्रकार मानव में नियोजन और उसके सृजनात्मक उत्पादन साधनों के रूप मे संबद्ध है।"***

मानव पूंजी शब्द का प्रयोग संकुचित और विस्तृत दोनों ही अर्थों में किया जाता है। संकुचित अर्थ में मानव पूंजी में विनियोजन का अर्थ शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर व्यय करना है, जबकि व्यापक अर्थ मे स्वास्थ्य, शिक्षा तथा सभी सामाजिक सेवाओं पर व्यय करने से लगाया जाता है।

सरल शब्दों में, ***"मानव पूंजी में किया गया ऐसा कोई भी विनियोग जो जन शक्ति की शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य व जीवन स्तर में वृद्धि करता हो, मानवीय पूंजी निर्माण का एक सक्रिय विनियोग माना जायेगा।"***

मानवीय संसाधन के विकास के आवश्यक तत्त्व (Essential Elements of Human Resource Development)

प्रो. शुल्ज ने मानवीय संसाधनों के विकास के लिए निम्नलिखित चार तरीकों का उल्लेख किया है-

1. नियोजित स्वास्थ्य सुविधाएं जिसमें लोगों की जीवन प्रत्याशा, शक्ति और जीवन शक्ति को प्रभावित करने वाले सभी व्यय शामिल हों।

2. कार्यरत प्रशिक्षण, जिसमें फर्मों द्वारा संगठित पुराने ढंग की प्रशिक्षु शामिल हो।
3. प्रारंभिक, माध्यमिक एवं उच्चतर स्तरों पर औपचारिक रूप से संगठित शिक्षा।
4. वयस्कों के लिए अध्ययन प्रोग्राम जिन्हें, फार्म संगठित न करें, विशेषरूप से कृषि संबंधी विस्तार प्रोग्राम शामिल हो।

5.4 मानव संसाधन निर्माण के क्षेत्र (Areas of Human Resource Formation)

प्राय: मानवीय संसाधनों में विनियोग का अर्थ शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य, उपयुक्त भोजन और उचित आवास की व्यवस्था आदि पर व्यय करने से लगाया जाता है। परंतु **प्रो. टी. डब्ल्यू. शूल्ज** का मत है कि सैद्धांतिक दृष्टि से कौशल निर्माण हेतु अथवा मानवीय क्षमताओं में सुधार हेतु मुख्य रूप से निम्न मदों पर व्यय या विनियोग करना अधिक आवश्यक समझा जाता है-

1. **शिक्षा एवं प्रशिक्षण सुविधाएं (Education and Training Facilities)** – *प्रो. रिचार्ड टी. गिल* के मतानुसार. ***"शिक्षा पर किया गया विनियोग आर्थिक विकास की दृष्टि से सर्वाधिक सार्थक विनियोग माना जायेगा।"*** इसी प्रकार के विचार **प्रो. जन कैनेथ गैलब्रेथ** द्वारा भी रखे गये हैं। उनकी दृष्टि में शिक्षा उपभोग एवं विनियोग दोनों ही हैं। भौतिक संपत्तियों के निर्माण में किये गये विनियोजन की भांति शिक्षा व प्रशिक्षण भी एक प्रकार का विनियोग है।

   अमरीका के अर्थशास्त्रियों का विचार है कि उनके देश में शिक्षा पर किये जाने वाले विनियोग पर वार्षिक प्रतिफल की दर लगभग 10 प्रतिशत है। **जॉन कैनेथ गैलब्रेथ** के अनुसार, ***"संयुक्त राज्य अमरीका में अन्य लोगों के साथ-साथ थियोडोर शुल्ट्ज द्वारा किये गये अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि शिक्षा पर किये गये व्ययों से बहुत वृद्धि हो सकती है। जिस प्रकार की गणना से कार्लाइल को सबसे अधिक घृणा थी, उसी के द्वारा उन्होंने यह दिखा दिया है कि मानवीय प्राणियों के बौद्धिक सुधार में लगाये गये एक डालर या एक रूपये से प्रायः राष्ट्रीय आय मे उसकी अपेक्षा अधिक वृद्धि होती है, जितनी एक डालर या रूपये को रेलों, बांधों, मशीन के पुर्जी या अन्य स्पष्ट दिखाई पड़ने वाली पूंजीगत वस्तुओं में लगाने से होती है।"*** जब शिक्षा को इस रूप में देखा जाता है, तब वह एक प्रकार का अत्यधिक उत्पादनशील विनियोग बन जाती है। शिक्षा पर किस सीमा तक व्यय किया जाना चाहिए।

   इस संबंध में **स्टोनियर** एवं **हेग** का विचार है, ***"राष्ट्रीय दृष्टिकोण से शिक्षा पर किया जाने वाला व्यय, चाहे वह स्कूल पर किया जाये या कॉलेज पर या विश्वविद्यालय पर किया जाये, उस समय तक बढ़ाया जाना चाहिए जब तक कि उस पर प्राप्त किया गया प्रतिफल अर्थव्यवस्था में अन्यत्र लोगों से प्राप्त होने वाले प्रतिफल के बराबर न हो जाये।"*** शिक्षा पर विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण से विचार करने पर हम निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि शैक्षणिक कार्यक्रम उसी आधार पर बनने चाहिए, जिस आधार पर औद्योगिक योजनाएं बनायी जाती हैं। शिक्षा में किये जाने वाले विनियोग के संबंध में लागत एवं लाभ का एक युक्तिसंगत हिसाब लगाया जाना चाहिए। यह एक निश्चित उत्पादक विनियोग है। जर्मनी और जापान जैसे देशों का, जो द्वितीय महायुद्ध में युद्ध के कारण बर्बाद हो गये थे, 5 या 10 वर्षों की अवधि में लगभग पुनर्निर्माण हुआ है। वहां पर भौतिक दृष्टि से पुनर्निमाण की प्रक्रिया आश्चर्यजनक गति से बढ़ी है। लेकिन यदि जर्मन और जापानी लोगों का संचित ज्ञान तथा चातुर्य किसी तरह से नष्ट कर दिया जाता, तो पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में नि:संदेह कई सदियां लग जातीं।

   भारत के संदर्भ में **डॉ. राव** ने लिखा है, ***"आज हमारे देश पर चरित्र संकट मंडरा रहा है और इसका मुकाबला हम केवल इस तरह की शिक्षा देकर कर सकते हैं, जो मानवता और चरित्र निर्माण की दिशा में प्रवृत्त हो। निःसंदेह अर्थव्यवस्था की अवस्थाएं पूरी करना शिक्षा का कर्तव्य है हमारे विश्वविद्यालयों में उन कौशलों और मनोवृत्तियों तथा अनुसंधान कार्यों को प्रश्रय दिया जाना चाहिए, जिनकी हमारी सुनियोजित अर्थव्यवस्था की आवश्यकता पूरी करने तथा आर्थिक वृद्धि की दर तीव्रतर करने के लिए आवश्यकता है।"*** अत: आज के लिए योजनाकारों, शिक्षाविदों, अध्यापकों,

माता-पिता और युवकों सभी को शिक्षा के नवीनतम दृष्टिकोण के प्रति सजग होने की आवश्यकता है। तभी सामाजिक और आर्थिक विकास सचारू ओर समन्वित रूप से हो सकेगा। इस प्रकार शिक्षा के महत्त्व को विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

2. **स्वास्थ्य, पोषण एवं आवास व्यवस्था (Health, Nutrition and Housing) -** मानव पूंजी निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार, पोष्टिक आहार की उपलब्धता तथा उचित आवास व्यवस्था हेतु उचित विनियोग किया जाना चाहिए। अतः शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य सेवाओं, पोषण तथा आवास व्यवस्था पर व्यय मानवीय पूंजी निर्माण के क्षेत्रों में आते हैं। व्यक्तियों को स्वास्थ्य सुविधाओं, संतुलित भोजन व उचित आवास प्राप्त होने से उनकी प्रत्याशित आयु और उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। औसत आयु बढ़ने से अर्थव्यवस्था पर बहुत लाभदायक प्रभाव पड़ता है जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट होता है-

   क) औसत आयु बढ़ने से एक व्यक्ति का कार्यकाल बढ़ जाता है, जिसमें राष्ट्रीय उत्पादन आयु में वह अधिक वृद्धि कर सकता है। उदाहरण के लिए, भारतवर्ष में प्रत्याशित आयु 58 वर्ष है और अमरीका में 78 वर्ष है।

   ख) अल्प औसत आयु के कारण नागरिकों के पालन-पोषण, शिक्षा तथा प्रशिक्षण आदि पर किये गये व्यय का पूरा प्रतिफल नहीं मिल पाता। अधिकांश नागरिक 60 वर्ष से पूर्व ही मर जाते हैं। अत: मनुष्यों पर लगाये गये धन का पूर्ण लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि जीवनकाल में वृद्धि हो।

   ग) राष्ट्रीय आय का बहुत बड़ा भाग ऐसे शिशुओं पर व्यय होता है, जो उत्पादक आयु में पहुंचने से पूर्व ही मौत के शिकार बन जाते है। अतः अल्प औसत आयु से बच्चों के पालन-पोषण के लिए किये गये प्रयत्न और विनियोजन की व्यर्थता सूचित करती है। **प्रो. अल्फ्रेड बोने** के अनुसार, ***"आर्थिक दृष्टि से अर्द्धविकसित देशों में इन असंख्य युवा वर्ग के भरण-पोषण और शैक्षणिक विकास में भौतिक-अभौतिक दोनों तरह के विनियोग की हानि होती है, जो अपने जीवन की परिपक्व अवस्था तक नहीं पहुंच पाती है। भले ही वहां पश्चिमी देशों की तुलना में प्रति व्यक्ति, शिक्षा, कपड़े तथा खाद्य पदार्थों में विनियोग कम हो, परंतु फिर भी कुल व्यय की हानि अत्यधिक है। एक जीविकोपार्जक पश्चिमी देशों में सरलता से अपने भरण-पोषण, प्रशिक्षण आदि की लागत समाज को चुका देता है, क्योंकि उसे अपने जीवन के उत्पादक वर्षों तक पहुंचने के अवसर रहते हैं और इसलिए वह अपना योगदान 40 या अधिक वर्षों तक देता है।"***

   घ) अल्प औसत आयु के कारण देश में अनुभवी लोगों की कमी रहती है। उदाहरण के लिए, भारतवर्ष में औसत जीवन अवधि कम होने के कारण कार्यशील अनुभव सिद्ध बुजुर्गों 55 से ऊपर का अनुपात 2001 में केवल 10 प्रतिशत था, जबकि अमरीका में यही अनुपात 18.0 प्रतिशत है।

5.5 मानव संसाधन निर्माण एवं शिक्षा की कसौटियाँ (Formation of Human Resources and Criteria of Education)

मानव संसाधन के निर्माण हेतु विशिष्ट रूप से शिक्षा में किए गए निवेश की उत्पादकता का आगणन (estimate) कर पाना एक बहुत पेचीदा समस्या है। इसके लिए कुछ अर्थशास्त्रियों ने निम्नलिखित मापदंड अथवा कसौटियां प्रस्तुत की है-

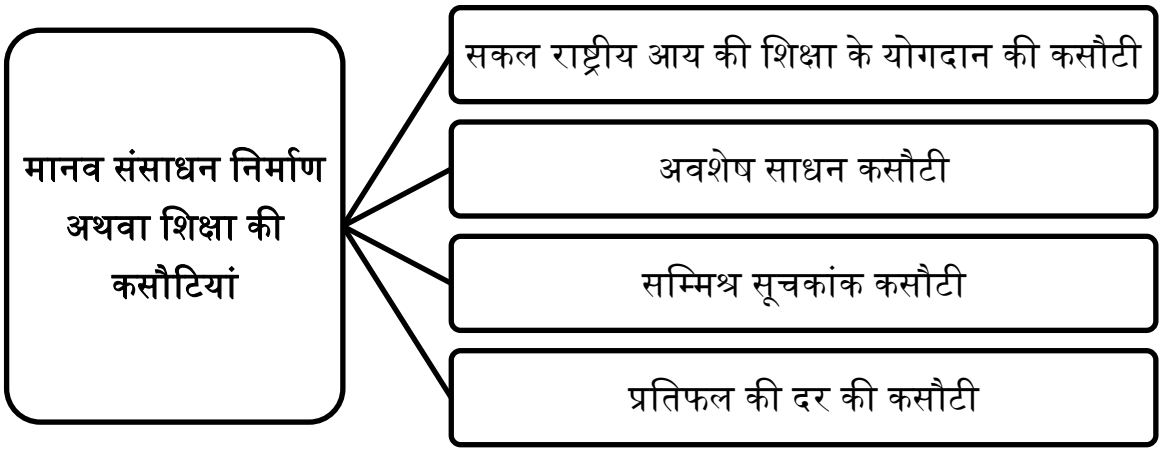

5.5.1 प्रतिफल की दर की कसौटी (Criteria for Rate of Return)

विनियोग के रूप में शिक्षा के दो अंश है- **प्रथम**, भावी उपभोग अंश एवं **द्वितीय**, भावी अर्जन अंश। कुशलता तथा ज्ञान में विनियोग भावी आयों या अर्जनों को बढ़ाता है जबकि शिक्षा से प्राप्त संतुष्टि उपभोग अंश है। चूंकि उपभोग अंश के रूप में शिक्षा राष्ट्रीय आय के योग में सम्मिलित नहीं होती इसलिए शिक्षा में विनियोजन के प्रतिफल का आगणन करते समय केवल इसके भावी अर्जन अंश पर ही ध्यान देना चाहिए। इसके लिए एक विधि यह है कि एक जैसे पेशों में लगे ऊंची शिक्षा प्राप्त लोगों की औसत जीवन कालिक कमाई की तुलना कम शिक्षा प्राप्त लोगों की औसत जीवन कालिक कमाई से की जाती है। उदाहरण के लिए, **बैक्कर** ने हिसाब लगाया था कि एक गोरे शहरी पुरूष के लिए संयुक्त राज्य अमरीका में कॉलिज शिक्षा पर विनियोग के प्रतिफल की दर सन् 1940 में 12.5 प्रतिशत और 1950 में 10 प्रतिशत थी। परंतु कर काट लेने के बाद सन् 1940 और 1950 में वह 9 प्रतिशत थी। इस आगणन में विद्यार्थी पर पड़ने वाली प्रत्यक्ष लागत, इसमें अध्ययन अवधि के दौरान हुई आय और कॉलेज की लागत का हिस्सा शामिल था।

सीमाएं (Limits)- इस मापदंड की निम्नलिखित सीमाएं व कठिनाइयां हैं-

1. **बाह्य मितव्ययिताएं (External Economies)-** इस विधि के अंतर्गत केवल प्रत्यक्ष भौतिक मौद्रिक लाभों को ही मापा जाता है जबकि शिक्षा की बाह्य मितव्ययिताओं जैसे- शिक्षा के स्तर में सुधार के फलस्वरूप देश को प्राप्त होने वाला प्रत्यक्ष एवं परोक्ष लाभ की गणना नहीं हो पाती है।
2. **व्यक्तिगत गुण (Personal Qualities)-** मनुष्य की अर्जन शक्ति पर केवल उसकी शिक्षा की डिग्रियों का ही नहीं बल्कि उसके कार्य प्रशिक्षण योग्यता, अनुभव, पारिवारिक संअंधों का भी प्रभाव पड़ता है।
3. **सामूहिक प्रयत्न (Collective Efforts)-** यह मापदंड विधि वर्गों के सामूहिक प्रयत्नों का सही आगणन नहीं कर पाता है।
4. **अर्थव्यवस्था उत्पादन क्षमता (Economy of Production Capacity)-** कौशल विकास के लिए किए गए निवेश से ना केवल व्यक्तियों की आय बढ़ती है, बल्कि कार्य प्रणाली की समग्र उत्पादकता भी बढ़ती है, जिसे इस मानदंड में ध्यान में नहीं रखा गया है।
6. **शिक्षा का स्वरूप (Nature of Education)-** मापदंड में इस बात का स्पष्ट नहीं किया गया है कि आर्थिक विकास के लिए 'कितनी और किस प्रकार शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है।

5.5.2 सकल राष्ट्रीय आय की शिक्षा के योगदान की कसौटी (Criteria of Contribution of Education to Gross National Income)

इस कसौटी के अनुसार शिक्षा में विनियोजन करने पर निश्चित अवधि में सकल राष्ट्रीय आय में जितनी वृद्धि होती है उसका आगणन कर लिया जाता है। प्रो. सकार पोलस : शिक्षा की योग्यता को ज्ञान करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं-

$$\text{(अ) प्रतिफल की सामाजिक दर} = \frac{\text{अपक्षय (स्थिर वार्षिक अर्जन भिन्नता)}}{\text{दो वर्ष अवसर लागत + रेकरेंट लागत + वार्षिक पूंजी लागत}}$$

$$= 21 \text{ प्रतिशत}$$

$$\text{(ब) प्रतिफल की व्यक्तिगत दर:} = \frac{\text{अक्षय (स्थिर वार्षिक अर्जन भिन्नता−कर भिन्नता)}}{\text{दो वर्ष (अवसर लागत + सीधी लागत)}}$$

$$= 50 \text{ प्रतिशत}$$

प्रो. शुल्ज ने सन् 1900 से 1956 तक की अवधि में अमेरिका की राष्ट्रीय आय में वृद्धि में शिक्षा के योगदान का विश्लेषण किया और निष्कर्ष पर पहुंचा कि "शिक्षा को आवंटिक संसाधन डालरों में उपभोक्त आय की सापेक्षता में और डालरों में भौति पूंजी के सकल निर्माण की सापेक्षता में 3.5 गुणा बढ़े। दूसरे शब्दों में भौतिक पूंजी में निवेश की अपेक्षा शिक्षा में निवेश ने 3.5 गुणा अधिक योगदान दिया।

भारत में इस मापदंड का प्रयोग **प्रो.पंचमुखी** द्वारा शिक्षा में लागत लाभ विश्लेषण की दृष्टि से किया जा चुका है।

गुण (Merits) -

पहला, शिक्षा पर प्रतिफलों के अनुमानों की अपेक्षा इस मापदंड के अनुमान अधिक वास्तविक हैं, क्योंकि ये अर्थव्यवस्था पर शिक्षागत् निवेश पर पड़ने वाले प्रभावों का भी मापन करते हैं।

दूसरा, यह अनुमान शिक्षा की अवसर लागत पर आधारित है, अर्थात् इसमें विद्याध्ययन के दौरान, यानी विद्यार्थी जीवन में परितयक्त आय और शिक्षा पर किए गये व्यय दोनों का हिसाब लगाया जा सकता है।

अवगुण (Demerits) -

इस कसौटी की सबसे बड़ी समस्या परित्यक्त आय की गणना करने से संबंधित है। परित्यक्त आय की गणना लगाना कठिन है। क्योंकि:

(अ) अर्द्धविकसित देशों मे गंभीर बेरोज़गारी पाई जाती है। ऐसी परिस्थिति में परित्यक्त कमाई का आकलन मनमाना या स्वैच्छिक होगा। क्योंकि श्रम की बढ़ रही पूर्ति वास्तविक आय को घटा देती है।

(ब) अर्द्धविकसित देशों में अधिकांश युवकों को स्कूल की शिक्षा नहीं मिलती। पर वे परिवार के व्यवसायों में धन अर्जित करते हैं। ऐसे युवकों की परित्यक्त आय को हिसाब लगाना कठिन है। इस कसौटी में स्कली शिक्षा की सामाजिक लागतों को ध्यान में नहीं रखा गया है।

उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण ही **बेलोग** ने कहा है, ***"शिक्षा की लाभदायकता के संबंध में किये गये आंकलन तकनीकी व आर्थिक रूप से न केवल त्रुटिपूर्ण हैं, बल्कि राजनैतिक तौर से अनैतिक भी हैं।"***

5.5.3 अवशेष साधन कसौटी (Residual Means Criteria)

कुजनेट्स, कंद्रिक, ग्रिलिचिज, जार्गेन्सन, सोजो तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने यह मापने का प्रयास किया है कि समय की एक अवधि के दौरान सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) में वृद्धि का (अ)

कितना अनुपात पूंजी तथा श्रम की माप योग्य आगतों के योगदान द्वारा हो सकता है। तथा (ब) GNP में वृद्धि का कितना अनुपात अन्य साधनों (जिनकी अवशेष में रखा जाता है) के योगदान द्वारा हो सकता है। अवशेष साधन प्रमुख रूप से हैं- शिक्षा, अनुसंधान, प्रशिक्षण, पैमाने की बचतें तथा मानों उत्पादकता को प्रभावित करने वाले अन्य घटक।

प्रो. डेनिसन ने सन् 1929-57 के बीच अमेरिका में इस संबंध में अनुमान लगाया जिसके अनुसार कुल वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि में शिक्षा का योगदान 23 प्रतिशत था। शिक्षा के अतिरिक्त जहां तक अन्य अवशेष साधन के योगदान की बात थी, डेनिस ने इसे राष्ट्रीय आय के कुल वृद्धि के 31 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी माना इसमें 20 प्रतिशत ज्ञान के उन्नत प्रभाव के कारण और 11 प्रतिशत बाजारों की वृद्धि दर के परिणामस्वरूप पैमाने की बचतों के कारण था। इसके विपरीत सोलो सन् 1909-45 की अवधि के दौरान अपने संयुक्त अपने संयुक्त राज्य अमेरिका के अध्ययन में 90 प्रतिशत प्रति व्यक्ति उत्पादन की औसत वृद्धि दर को अवशेष साधन का योगदान मानता है जो तकनीकी परिवर्तन के सामान्य शीर्षक में आता है।

अवगुण (Demerits)-

अवशेष साधन कटौती में निम्नलिखित कमियां हैं-

1. अवशेष साधन एक बहुत विस्तृत शब्द है जिसमें शिक्षा, अनुसंधान, प्रशिक्षण, पैमाने की बचतें आदि को सम्मिलित किया गया है। फलत: यह कसौटी अत्यंत जटिल है।
2. यह कसौटी व्यावहारिक तथा अव्यावहारिक शिक्षा तथा शिक्षा की गुणवत्ता या विषय वस्तु में कोई भेद नहीं करती है।
3. यह कसौटी पैमाने की स्थिर प्रतिफल नियम पर आधारित है। जबकि एक विकासशील देश में बढ़ते प्रतिफल पाये जाते हैं।
4. अवशेष कसौटी में पूंजी का आर्थिक विकास में योगदान कम आंका गया है। क्योंकि यदि ज्ञान की उन्नति में लगाये गये साधनों को विनियोग के अंतर्गत गिन लिया जाये और इस प्रकार के विनियोग को पूंजी स्टॉक की परिभाषा के अंतर्गत सम्मिलित कर दिया जाये, तो आर्थिक विकास वृद्धि दर का अधिक भाग पूंजी स्टॉक की वृद्धि का योगदान माना जायेगा और ज्ञान, कौशल, प्रशिक्षण आदि में वृद्धि के अवशेष वर्ग में कम योगदान रह जायेगा।
5. सन् 1945-65 के लिए अमेरिका का अर्थव्यवस्था के अध्ययन में जार्गेन्सन तथा ग्रिलिचिज ने पाया कि पूंजी, श्रम, कीमतों आदि के लिए समूहन की अशुद्धियों को ठीक कर देने के बाद वास्तव में कोई 'अवशेष' रहता ही नहीं, जिसकी व्याख्या आपेक्षित हो। इस अशुद्धियों के लिए समायोजन कर लेने के बाद अवशेष का योगदान घटकर 0.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष रह जाता है।

5.5.4 सम्मिश्र सूचकांक कसौटी (Composite Index Criteria)

हार्बिसन और मायर्स (Harbison and Myers) ने कुछ मानों स्त्रोतों के सूचकों के आधार पर सम्मिश्र सूचकांक कसौटी विकसित किया है। सम्मिश्र सूचकांक को 75 देशों को श्रेणीबद्ध करके तथा उनको मानों शोध विकास करके मानों शोध विकास के चार स्तरों का समूह बना कर प्रयुक्त किया जाता है। ये चार समूह हैं- अर्द्धविकसित, आंशिक विकसित, अल्प उन्नत, तथा उन्नत। इसके उपरांत उन्होंने इस सूचकों तथा आर्थिक विकास के सूचकों के संबंधों का अध्ययन करने का प्रयास किया है। हार्बिसन तथा मायरज ने मानव शोध विकासों की निम्नलिखित प्रकार से वर्णित किया है-

1. प्रति 10,000 जनसंख्या पर प्रथम तथा द्वितीय स्तर के शिक्षकों की संख्या ।
2. प्रति 10,000 जनसंख्या पर चिकित्सकों तथा दंत चिकित्सकों की संख्या।
3. प्रति 10,000 जनसंख्या पर इंजीनियरों तथा वैज्ञानिकों की संख्या।

4. समायोजित प्रथम तथा द्वितीय स्तरों के संयुक्त पाठशाला में दाखिल विद्यार्थियों का अनुपात।
5. 5 वर्ष से 14 वर्ष आयु वर्ग की अनुमानित जनसंख्या की प्रतिशतता पर प्रथम (प्राथमिक) शिक्षा स्तर पर दाखिल विद्यार्थियों की संख्या ।
6. 20 से 24 वर्ष आयु वर्ग की अनुमानित जनसंख्या की प्रतिशतता पर तृतीय (उच्चतर) शिक्षा स्तर पर दाखिल विद्यार्थियों की संख्या।
7. 15 से 19 वर्ष आयु वर्ग की अनुमानित जनसंख्या की प्रतिशतता पर द्वितीय (माध्यमिक) स्तर पर दाखिल विद्यार्थियों की वह संख्या जिसे पाठशाला काल पर समायोजित किया गया है।
8. एक वर्तमान वर्ष में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा संकायों में दाख़िल विद्यार्थियों की प्रतिशतता।
9. उसी वर्ष मानविकी, ललित कला एवं विधि संकायों में दाखिल विद्यार्थियों की प्रतिशतता।

सांख्यिकी विश्लेषण के लिए वे आर्थिक विकास के इन सूचकों को लेते हैं- (अ) यू. एस. डॉलर में सकल राष्ट्रीय उत्पादन प्रति व्यक्ति तथा (ब) कषि कार्यों में संलग्न सक्रिय जनसंख्या के प्रतिशतता। इसके अतिरिक्त उन्होंने दो और सूचकों को काम में लिया है-

(क) राष्ट्रीय आय की प्रतिशतता का शिक्षा पर लोक व्यय

(ख) 5 से 14 वर्ष आयु वर्ग तक कुल जनसंख्या की प्रतिशतता।

हार्बिसन और मायर्स का अध्ययन शिक्षा के सभी स्तरों पर नामांकित अनुपात और GNP के बीच एक निकट संबंध को दर्शाता है। सर्वाधिक सहसंबंध गुणांक है। यू. एस. डॉलर में GNP प्रति व्यक्ति तथा मानव स्त्रोत विकास के सम्मिश्र सूचकांक जो कि प्रथम द्वितीय स्तर नामांकित संख्या का अनुपात है, के बीच पाया गया है।

गुण (Merits) -

इस कसौटी के प्रमुख गुण हैं-

(अ) यह अर्द्धविकसित देशों मे आर्थिक विकास से संबंधित शिक्षा नीति के निर्धारण के लिए सम्मिश्र सूचकांक विभिन्न स्तरों की शिक्षा के योगदान को मापने की एक लाभप्रद कसौटी है।

(ब) यह आर्थिक विकास सूचकों और मानव शोध विकास सूचकों की मात्रा संबद्धता को व्यक्त करता हैं।

अवगुण (Demerits) -

इस कसौटी के प्रमुख अवगुण हैं-

(अ) इस कसौटी का मुख्य दोष यह है, कि ये केवल परिमाणात्मक संबंधों को व्यक्त करती है और गुणात्मक संबंधों की उपेक्षा करती है।

(ब) इसके अतिरिक्त सम्मिश्र सूचकांक अन्य घटकों के प्रभवों को व्यक्त करने में भी असमर्थ है जैसे कि विपुल प्राकृतिक स्त्रोत या जनसंख्या स्तर जोकि उच्चतर GNP प्रति व्यक्ति की ओर ले जाता है आदि को प्रकट नहीं करते।

5.6 अर्द्धविकसित देशों में मानव संसाधन विकास के निम्न स्तर के कारण (Reasons for Low Level of the Formation of Human Resource Development in Underdeveloped Countries)

भारत जैसे अर्द्धविकसित देशों में मानव संसाधन का स्तर निम्न होता है। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित है-

1. **विदेशी विनियम कोषों की कमी (Shortage of foreign exchange funds)** - अर्द्धविकसित देशों में विदेशी विनियम कोषों की कमी होती है। फलस्वरूप ये देश विदेशी आयात करने में

असमर्थ होते हैं और बिना विदेशी तकनीक के ज्ञान के उनका स्तर ऊपर नहीं उठ पाता है।

2. **मानव पंजी निर्माण एक सतत लंबी प्रक्रिया (Human Capital Formation is A Continuous Long Process) -** मानव पूंजी निर्माण एक सतत लंबी प्रक्रिया है ती इसके सुखद परिणाम भी दीर्घकाल में प्राप्त होते हैं। अर्द्धविकसित देशों के पास संसाधनों का अभाव होता है। अतः वे भौतिक विकास जो कि शीघ्रगामी तथा परिस्थितिजन्य भी होते हैं, में अधिक ध्याय देते हैं फलतः मानव पूंजी निर्माण का स्तर निम्न बना रहता है।
3. **रूढ़िवादिता (Stereotypes) -** अर्द्धविकसित देशों में व्याप्त रूढ़िवादी विचार तकनीकी ज्ञान को अपनाने व उसे लागू करने में बाधक सिद्ध होते हैं। परिणमतः मानव पूंजी निर्माण का स्तर निम्न बना रहता है।
4. **इच्छा शक्ति का अभाव (Lack of Will Power) -** अर्द्धविकसित देशों में व्याप्त रूढ़िवादी विचार तकनीकी ज्ञान को अपनाने व उसे लागू करने मे बाधक सिद्ध होते हैं। परिणमतः मानव पूंजी निर्माण का स्तर निम्न बना रहता है।
5. **कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था (Agrarian Economy) -** अर्द्धविकसित देशों की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान होती है तथा कृषि में नव-प्रवर्तन तथा तकनीकी के प्रयोग की संभावनाएं अपेक्षाकृत सीमित होती है।
6. **मानवीय साधनों के आयोजन के अभाव (Lack of Organization of Human Resources) -** मानवीय साधनों के उचित आयोजन के अभाव देश में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। मानवीय साधनों की मांग तथा पूर्ति के मध्य कोई विशेष संतुलन स्थापित नहीं किया जा सकता है। इसके फलस्वरूप एक ओर तो श्रम शक्ति नष्ट हो रही है तथा दूसरी ओर श्रम का उत्पादन में योगदान कम होता हा रहा है।
7. **क्षेत्रीय विषमताएं (Regional disparities) -** जीवन प्रमाण में सुधार के लिए जिन सेवाओं को उपलब्ध करवाया गया है वे देश के विभिन्न क्षेत्रों में असंतुलित रूप से वितरित हैं। ये विषमताएं ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में विशेष रूप से देखने का मिलती हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की विभिन्न सेवाएं शहरी क्षेत्रों में ही उपलब्ध हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इनकी घोर कमी है।
8. **निम्न उत्पादकता (Low Productivity) -** जीवन प्रमाण में सुधार के लिए जो विनियोग किया जाता है इसके बदले में तत्काल ही आय प्राप्त नहीं होती, बल्कि इस प्रकार के लाभों को प्रत्यक्ष रूप से नहीं मापा जा सकता है। अतः इस तरह के विनियोग को अनुत्पादक विनियोग समझा जाता है और निजी उपक्रमी इस क्षेत्र मे विनियोग करने के लिए प्रेरित नहीं होता।
9. **निजी क्षेत्र की उदासीनता (Private Sector Apathy) -** मानवीय साधनों में निवेश का फल काफी समय बाद प्राप्त होता है। इसीलिए निजी क्षेत्र इसके विकास मे कोई रूचि नहीं लेता। इसका सारा भार सरकार को ही संभालना पड़ता है। सरकार के साधन सीमित होते हैं। अतएव मानवीय साधनों के विकास पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता है
10. **जनसंख्या में वृद्धि (Population Growth) -** भारत में जनसंख्या की वृद्धि बड़ी तीव्र गति से हो रही है तथा जनसंख्या पहले से ही बीत अधिक है। इतनी अधिक जनसंख्या के विकास के लिए बहुत अधिक साधनों की आवश्यकता होती है। भारत जैसे निर्धन देश के लिए इतने साधनों की व्यवस्था करना संभव नहीं है।

5.7 अर्द्धविकसित देशों में मानव संसाधन के विकास हेतु उपाय (Measures for development of Human Resources in Underdeveloped Countries)

अर्द्धविकसित देशों में मानव पूंजी निर्माण के लिए विशेष ध्यान नहीं दिया गया है जिसके कारण यहां मानवीय संसाधन अधिक होते हुए भी मानव पूंजी अच्छी किस्म की नहीं है। मानव पूंजी निर्माण के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते है-

1. **शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन (Changes in The Education System)-** शिक्षा प्रणाली में मूलभूत सुधार व परिवर्तन करके ही हम अर्द्धविकसित देशों में मानव पूंजी निर्माण को प्रोत्साहित कर सकते है। एक ओर तो हमें अर्द्धविकसित देशों में साक्षरता कार्यक्रम सक्रिय करके निरक्षरता को दूर करना चाहिए और उच्च शिक्षा केवल उन्हीं व्यक्तियों को दी जानी चाहिए जो इसके योग्य हों। कारण यह है कॉलेजों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों मे स्नातक तथा स्नातकोत्तर शिक्षा प्रदान करने से मानव पूंजी निर्माण नहीं होता। बल्कि वे शिक्षित बेरोजगारी को बढ़ते हैं जिससे युवकों में काफी असंतोष होता है।
2. **तकनीकी शिक्षा पर जोर (Emphasis on Technical Education)-** तकनीकी प्रगति तथा प्रशिक्षण की सुविधा आर्थिक विकास का महत्त्वपूर्ण निर्धारण है क्योंकि तकनीकी प्रगति तथा प्रशिक्षण की सुविधा स्वयं उच्च शिक्षा तथा प्रशिक्षित जन शक्ति की उपलब्धता पर निर्भर होता है। अतः अर्द्धविकसित देशों मे तकनीकी शिक्षा पर जोर दिया जाना चाहिए। अर्द्धविकसित देशों में विभिन्न व्यवसायों में शिक्षित व्यक्तियों के रूप में मानव पूंजी की आवश्यकता इसलिए अधिक होती है क्योंकि वे व्यक्ति जटिल तरीके तथा उपकरण हैं। उदाहरणार्थ, उद्यमियों, व्यापार प्रबंधकों, प्रशासकों, वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, डॉक्टर आदि की जरूरत पड़ती है। वस्तुतः उर्द्धविकसित देशों में तकनीकी शिक्षा को अनिवार्य कर देना चाहिए।
3. **अनिवार्य शिक्षा (Compulsory Education)-** अर्द्धविकसित देशों में अधिकांश जनसंख्या निरक्षर होती है इसलिए जहां तक संभव हो इन देशों में सभी व्यक्तियों के लिए स्कूल तक शिक्षा अनिवार्य कर देना चाहिए। अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका व एशिया के अधिकांश देशों में प्राथमिक शिक्षा को बहुत अधिक प्राथमिकता दी गयी है तथा प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क व अनिवार्य है। परंतु माध्यमिक शिक्षा को कम प्राथमिकता दी जाती है जो उपयुक्त नहीं है। अनुभव यह बताता है कि माध्यमिक शिक्षा प्राप्त लोग ही वह क्रांतिक कुशलता प्रदान करते हैं, जो विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। माध्यमिक शिक्षा के महत्त्व पर बल देते हुए प्रोफेसर लुईस माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था के अधिकारी तथा अनायुक्त अधिकारी मानता है।
4. **प्रौढ़ शिक्षा (Adult education)-** अर्द्धविकसित देशों में आर्थिक विकास की योजनाओं का सफल क्रियान्वयन में एक बहत बडी रूकावट प्रौढों का अशिक्षित होना है। इसलिए अशिक्षिता के कारण वे नयी योजनाओं का महत्त्व नहीं समझ पाते है फलतः उनके क्रियान्वयन में गतिरोध उत्पन्न करते हैं। ऐसे देशों में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों का सर्वथा अभाव है, अतः आवश्यकता इस बात की है कि प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया जाये क्योंकि प्रौढ़ शिक्षा कृषकों का दृष्टिकोण बदलने में सहायक है, उनकी निर्णयकारी कुशलता बढ़ाती है और यह आधुनिक कृषि प्रथाओं के संबंध में उन्हें आवश्यक जानकारी कराती है। अधिक परिणामों के लिए प्रौढ़ शिक्षा का समस्त प्रोग्राम कृषि अनुसंधान केंद्रों तथा प्रयोगशालाओं से जोड़ देना चाहिए।
5. **प्रशिक्षण का विकास (Development of Training)-** शिक्षा के साथ साथ प्रशिक्षण भी मानव पूंजी के निर्माण के लिए आवश्यक है क्योंकि प्रशिक्षण द्वारा व्यक्ति की योग्यता, कुशलता एवं निपुणता में ही वृद्धि नहीं होती बल्कि उनमें आत्मनिर्भरता, आदर और आत्मगौरव बढ़ा कर उन्हें जीवन के सबध में एक व्यापक दृष्टिकोण भी प्रदान करता है। यही कारण है कि आजकल प्रशिक्षण

एवं विकास कार्यक्रम पर किया गया व्यय एक निवेश समझा जाता है तथा लगभग सभी विकसित संस्थाओं में श्रमिकों तथा प्रबंधकों के लिए नाना प्रकार के कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। जैसे अप्रेन्टिसशिप तथा रिफ्रेशर कोर्स, पुन: प्रशिक्षण, सेल्समैन ट्रेनिंग प्रोग्राम, मैनेजमेट प्रोग्राम, इत्यादि।

6. **स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार (Expansion of Health Service)-** अर्द्धविकसित देशों में मानव पूंजी निर्माण के लिए आवश्यक है कि स्वास्थ्य सेवाओं पर अधिक विनियोग किया जाये क्योंकि मानव की सर्वांगीण उन्नति तथा विकास का आधार स्वास्थ्य ही है। स्वास्थ्य जनता की कार्यक्षमता और शक्ति के मापदंड के साथ ही साथ इस बात का भी संकेतक है कि व्यक्ति कितने समय तक निर्माण कार्य में संलग्न राष्ट्रीय उन्नति में प्रवृत्त रह सकता है। रूग्ण व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। **"बीमारियां किसी समुदाय के हृष्ट-पुष्ट और शक्तिवान लोगों को मार कर और काम करने वालों की संख्या में न काम करने वालों को अधिक बढ़ा कर विनाश कर सकती हैं। दूसरे, यदि बीमारों के प्राण नहीं लेतीं, तो उन्हें आशक्त कर देती हैं और इस प्रकार श्रमिकों की संख्या ही में कमी नहीं, वरन श्रम की शक्ति में भी कमी कर देती हैं।"**

5.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. सकल राष्ट्रीय आय में शिक्षा का योगदान उस राष्ट्रीय आय में वृद्धि पर केंद्रित है जो ..... में शिक्षा के कारण होती है। (निवेश **या** व्यय)
2. शिक्षा के प्रतिफल का आकलन करने में मुख्य चुनौती .....आय की गणना में कठिनाई है। (परित्यक्त **या** निवेश)
3. अर्द्धविकसित देशों में, प्राथमिक अर्थव्यवस्था अक्सर..... पर आधारित होती है, जो तकनीकी नवाचारों को सीमित करती है। (कृषि **या** उद्योग)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. अवशेष साधन कसौटी विभिन्न प्रकार की शिक्षा और उनकी गुणवत्ता के बीच अंतर को स्पष्ट करती है।
2. अर्द्धविकसित देशों में विदेशी विनियम कोषों की कमी मानव पूंजी विकास में बाधक होती है।

5.9 सारांश (Summary)

मानवीय पूंजी निर्माण शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य, पोषण, और आवास व्यवस्था पर किए गए व्यय को संदर्भित करता है। प्रो. शुल्ज ने इसके चार मुख्य तत्वों की पहचान की है: स्वास्थ्य सुविधाएं, कार्यस्थल पर प्रशिक्षण, औपचारिक शिक्षा, और वयस्कों के लिए अध्ययन प्रोग्राम।

इस अध्याय में शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, और आवास व्यवस्था के महत्व को भी रेखांकित किया गया है।

शिक्षा पर किया गया विनियोग आर्थिक विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, और इसका प्रतिफल अन्य पूंजीगत वस्तुओं में किए गए निवेश की तुलना में अधिक हो सकता है। स्वास्थ्य और पोषण पर व्यय भी लोगों की जीवन प्रत्याशा और कार्यकुशलता में सुधार करता है, जिससे राष्ट्रीय आय पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

अर्द्धविकसित देशों में मानव संसाधनों के निम्न स्तर के कारण विभिन्न समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जैसे विदेशी विनियम कोषों की कमी, रूढ़िवादी सोच, और कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था। मानव पूंजी निर्माण को बढ़ावा देने के लिए, शिक्षा प्रणाली में सुधार, तकनीकी शिक्षा पर जोर, और अनिवार्य शिक्षा की नीति अपनाने की सिफारिश की गई है।

इस प्रकार, मानव संसाधनों और पूंजी निर्माण के महत्व को समझते हुए, इन्हें प्रभावी ढंग से विकसित करना आवश्यक है ताकि देश की आर्थिक और सामाजिक प्रगति सुनिश्चित की जा सके।

5.10 शब्दावली (Glossary)

- **मानव विकास (Human Development) :** मानवीय पूंजी निर्माण अथवा मानव विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत मानव शक्ति के विकास हेतु भारी मात्रा में विनियोग किया जाता है ताकि देश की जन शक्ति, प्राविधिक ज्ञान, योग्यता एवं कुशलता की दृष्टि से विशिष्टता प्राप्त कर सके।
- **स्थिर जनसंख्या (Stable Population) :** काल्पनिक जनसंख्या के उस स्थायी स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें पूर्वकल्पित आयु-विशिष्ट जन्म दरें एवं मृत्यु दरें अपरिवर्तित एवं यथावत बनी रहती है।
- **पूर्वानुमान (Prediction) :** संख्यात्मक तथ्यों के भूतकालीन व्यवहार के आधार पर भविष्य के लिए काल श्रेणी को विस्तृत अथवा विक्षेपित करने की प्रक्रिया सांख्यिकी में पूर्वानुमान कहलाती है।
- **भविष्यवाणी (Forecast)** : यह बहुत कुछ ग्रह दशा, भाग्यवादिता अथवा किसी रहस्यपूर्ण शक्ति की पर आश्रित कथन है, जिनकी मनोवैज्ञानिक तो हो सकती है, पर इनका कोई सांख्यिकी आधार नहीं है।
- **वैवाहिक जन्म दर (Marital Birth Rate) :** वैवाहिक जन्म दर किसी जनसंख्या में एक वर्ष की अवधि में वैधानिक रूप से जन्म लेने वाली संतानों का उस जनसंख्या की प्रजनन काल आयु से संबंधित संपूर्ण विवाहित स्त्रियों के साथ स्थापित प्रति हजार अनुपात है।
- **संशोधित जन्म दर (Revised Birth Rate) :** जब हम अशोधित जन्म दर की गणना करने लगते है तो कुछ ऐसे जन्मों को उसमें सम्मिलित नहीं कर पाते हैं जिनकी सूचना का पंजीकरण नही होता है। प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों मे लोंग जन्में बच्चों का पंजीयन नहीं कराते हैं। अतः प्रजनन सम्बन्धी आंकड़ों का सही - सही ज्ञान नही हो पाता है। ऐसी दशा में सही जन्म दर की संख्या में जोड़ दिया जाता है। यह अनुमानित संख्या सम्पूर्ण पंजीकृत संख्या का एक छोटा हिस्सा हो सकती है।

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. निवेश 2. परित्यक्त 3.कृषि

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1.असत्य 2. सत्य

5.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- Adelman, I. (1961) *Theories of Economic Growth and Development*, Stanford University Press, Stanford
- Galbraith, J.K (1969) *Economic Development*, Oxford University Press, London
- Hollis Chenery and T.N. Srinivasan (2007) *Handbook of Development Economics*, Vols. 1 & 2, Elsevier North Holland, UK
- Kindleberger, C. P. (1977) *Economic Development*, (3rd Edition), McGraw Hill, New York.

- Kuznets, Simon (1969) ***Economic Growth & Structure***, Oxford & IBH Publishing Co., New Delhi
- Meier, G. M. (1995) ***Leading Issues in Economic Development***, (6th Edition), Oxford University Press, New Delhi
- Mishra and Puri (2006) ***Economic of Growth and Development***, Himalaya Publishing House, New Delhi
- Meier, G. M. and D. Seers (Eds.) (1987) ***Pioneers in Development***, Oxford University Press, New York.
- Philip Arestis (1996) ***Employment, Economic Growth and the Tyranny of the Market***, Edward Elgar Publishing Ltd, UK
- Taneja, M. L. and R. M. Myer (2013) ***Economics of Development and Planning***, Vishal Publishing Co., Jalandhar
- Thirlwall, A P. (2003) ***Growth and Development***, Palgrave Macmillan Press Ltd., New York
- Todaro, Michael P. and Stephen C. Smith (2014) ***Economic Development***, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd., New Delhi
- Vaidyanathan, A. (2005) ***India's Economic Reforms and Development***, Academic Foundation, New Delhi

5.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- अग्रवाल, एस. एन. (1972), ***भारत की जनसंख्या समस्या***, टाटा मैक्ग्रा हिल कम्पनी, मुम्बई।
- दत्त, रूद्र एवं के. पी. एम. सुन्दरम (2010), ***भारतीय अर्थव्यवस्था***, एस. चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली।
- सिन्हा, बी. सी. एंव पुष्पा सिन्हा (2011), ***जनांकिकी के सिद्धान्त***, मयूर पेपर बैक्स, नई दिल्ली।
- चौबे, पी. के. (2000), ***भारत में जनसंख्या नीति***, कनिष्ट प्रकाशन, नई दिल्ली।
- मिश्र, प्रकाश (2012), ***जनांकिकी***, साहित्य भवन पब्लिकेशन, दिल्ली।

5.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. आर्थिक विकास में मानवीय संसाधनों की भूमिका का विवेचन कीजिए।
2. आर्थिक उन्नति में मानव साधनों के विकास के महत्व की गणना कीजिए। क्या विकासशील देशों में इसको पूंजीवाद से अधिक महत्व देना चाहिए?
3. अर्द्धविकसित देशों में मानव संसाधन निर्माण का स्तर निम्न होने के कारणों की विस्तार से चर्चा कीजिए।

इकाई 6 विकास का मार्ग: बाजार बनाम राज्य
(The Path of Development: Market versus The State)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)
6.2 उद्देश्य (Objectives)
6.3 बाज़ार एवं राज्य का परिचय (Introduction of the Market and State)
6.3.1 बाज़ार का अर्थ एवं इस प्रणाली के कार्य (Meaning of Market and Functions of this System)
6.3.2 राज्य का अर्थ (Meaning of State)
6.4 बाजार: वृद्धि का प्रतिनिधि (Market : An Agent of Growth)
6.5 राज्य: विकास का प्रतिनिधि (State: an Agent of Development)
6.6 बाजार अनुकूल राज्य की आवश्यकता (Need for Market Friendly State)
6.7 विकास के लिए बाजार और राज्य के बीच समझौता (Compromise between Market and State for Development)
6.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
6.9 सांराश (Summary)
6.10 शब्दावली (Glossary)
6.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
6.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Text)
6.14 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई में आप बाज़ार एवं राज्य के बारे में विस्तार से पढेंगे। किसी देश के विकास में बाजार एवं राज्य की भूमिका के महत्त्व को जानेगे साथ ही इसकी सीमाओं के बारे में भी आप पढेंगे और बाज़ार अर्थव्यवस्था किस प्रकार से कार्य करती हैं इसकी कार्य प्रणाली से अवगत हो सकेंगे। राज्य अर्थव्यवस्था जिसका अर्थ इकाई में किसी स्थान से नहीं बल्कि सरकार से हैं, जोकि बिना किसी स्वार्थ के कार्य करती हैं, इसके बारे में भी आप इकाई विस्तार से पढेंगे। किसी भी देश के विकास के लिए राज्य और बाज़ार आवश्यक हैं इन दोनों के समायोजन से ही किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को विकास और प्रगति की सही राह मिल सकती है।

6.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- ✓ बाज़ार अर्थव्यवस्था को समझ सकेंगे।
- ✓ बाज़ार अर्थव्यवस्था के महत्व एवं सीमाओं के बारे में जानेंगे।
- ✓ राज्य अर्थव्यवस्था को समझ सकेंगे।
- ✓ राज्य अर्थव्यवस्था की कार्य प्रणाली से अवगत हो सकेंगे।
- ✓ देश के विकास के लिए बाज़ार एवं राज्य अर्थव्यवस्था के बीच के समझौते को समझ सकेंगे।

6.3 बाज़ार एवं राज्य का परिचय (Introduction of the Market and State)

6.3.1 बाज़ार का अर्थ एवं इस प्रणाली के कार्य (Meaning of Market and Functions of this System)

आम भाषा में बाज़ार वह स्थान है जहाँ कीमतें तय होती हैं, लोग लेन-देन कर सकते हैं एवं वस्तुओं और सेवाओं का वितरण कर सकते हैं। लोग सामान खरीदने और बेचने के लिए एक दूसरे से प्रामाणिक स्थान पर मिल भी सकते हैं और नहीं भी। खरीदार और विक्रेता के बीच बातचीत कई तरह की स्थितियों और स्थानों पर हो सकती है, जैसे कि गांव या शहर के बाजार में या इसके अलावा आज-कल खरीदार और विक्रेता टेलीफोन के माध्यम से भी वस्तुओं के आदान-प्रदान का प्रबंधन एवं संवाद करते हैं। ऐसी व्यवस्थाएँ जो लोगों को स्वतंत्र रूप से सामान खरीदने और बेचने की अनुमति देती हैं, बाज़ार के मुख्य पहलू हैं।

बाजार अर्थव्यवस्था अहस्तक्षेप में विश्वास रखती है, जिसमें सरकार कोई भी रोक-टोक नहीं लगाती इसमें लेन-देन की प्रक्रिया स्वत: चलती रहती हैं। बाज़ार में विभिन्न तरह के उत्पादक एवं उपभोक्ता पाए जाते हैं, उत्पादक बाजार में केवल एक ही उद्देश्य से काम करते हैं और वह है लाभ कमाना। इसी तरह उपभोक्ता भी बाज़ार में खरीदारी करते हुए अपनी संतुष्टि को बढ़ाने पर ध्यान देता हैं।

बाज़ार अर्थव्यवस्था के अंतर्गत कीमत, बाज़ार की माँग एवं पूर्ति की ताकत के माध्यम से तय होती हैं। अगर कीमत ऊपर या नीचें हो भी जाए तो भी वह इन बाज़ार की ताकत की मदद से स्वत: ही संतुलित हो जाती हैं, इसमें सरकार बिलकुल भी हस्तक्षेप नहीं करती हैं।

बाजार प्रणाली के कार्य (Functions of the Market System)

जैसा की आप समझ ही गए हैं बाजार प्रणाली स्वतंत्र कार्य करती हैं बिना किसी सरकारी हस्तक्षेप के इसलिए यह मुक्त बाजार प्रणाली भी कहलाती हैं। यहाँ कीमत और मात्रा पर निर्णय केवल माँग और आपूर्ति के आधार पर किए जाते हैं इसलिए इसे '**मूल्य तंत्र**' (Price Mechanism) भी कहते हैं। यह समझने से पहले की बाज़ार किस तरह कार्य करता हैं आपका यह जानना आवश्यक हैं कि बाज़ार में तीन प्रतिनिधि होते हैं जिनकी गतिविधियों को बाज़ार जोड़ता है, ***पहला*** उपभोक्ता (Consumer),

दूसरा उत्पादक (Producer) और ***तीसरा*** उत्पादन के कारकों के मालिक (Owner of the Factor of Production)। बाजार प्रणाली वैसे तो स्थिर रहती है परन्तु जब बाजार में असंतुलन की स्थिति होती है तो बाजार तंत्र के कार्य सक्रिय हो जाते हैं। बाज़ार में असंतुलन तब आता हैं जब या तो माँग, पूर्ति से ज्यादा हो या फिर पूर्ति, माँग से ज्यादा। असंतुलन की स्थिति में ही बाज़ार कार्य करता हैं बाज़ार तंत्र के तीन कार्य हैं: संकेत, प्रोत्साहन एवं राशनिंग कार्य।

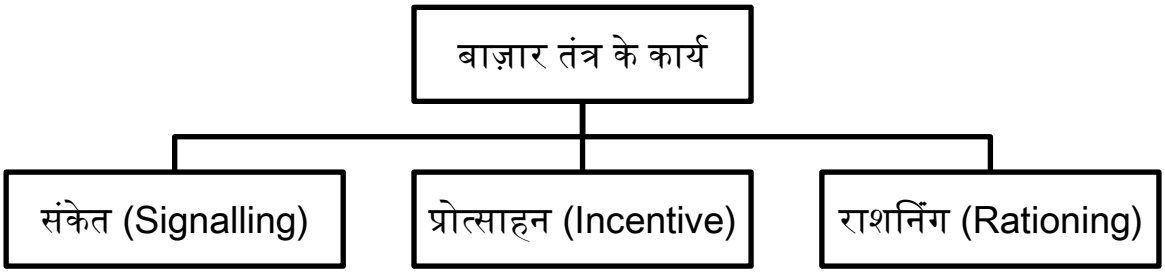

1. **संकेत कार्य (Signalling Function)** कीमत से संबंधित है। संकेत कार्य तब होता है जब कीमत में परिवर्तन आता हैं जब कीमतें अधिक होती हैं तो यह उत्पादकों को अधिक उत्पादन करने का संकेत देता है और नए उत्पादकों को बाज़ार में प्रवेश करने की आवश्यकता का भी संकेत देता है। दूसरी ओर यदि कीमतें गिरती हैं तो यह उपभोक्ताओं को अधिक खरीदने का भी संकेत देता है।
2. **प्रोत्साहन कार्य (Incentive Function)** उत्पादकों पर लागू होता है। प्रोत्साहन कार्य तब होता है जब कीमतों में परिवर्तन फर्मों को अधिक सामान या सेवाएं प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित करता है। जैसे ठंड के मौसम में गर्म कपड़ों की माँग जैसे जैकेट की माँग बढ़ जाती है और उत्पादक जैकेट बनाते हैं। उत्पादक सर्दियों के जैकेट बनाने और बेचने के लिए प्रोत्साहन है क्योंकि इस बात की अधिक गारंटी है कि लोग उन्हें खरीदने के लिए इच्छुक और सक्षम हैं।
3. **राशनिंग कार्य (Rationing Function)** उपभोक्ताओं पर लागू होता है। राशनिंग कार्य तब होता है जब कीमत में बदलाव उपभोक्ता की माँग को सीमित करता है। उदाहरण के लिए मान लीजिए ईंधन की कमी हो गई है और जिसके कारण, ईंधन की कीमत बढ़ जाती है एवं माँग कम हो जाती है। इससे उपभोक्ता की माँग सीमित हो जाती है। स्कूल या काम पर जाने के लिए लोग गाड़ी चलाने के बजाय, सार्वजनिक परिवहन का विकल्प चुनते हैं।

बाज़ार प्रणाली में बिना किसी जानकारी के स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं एवं उत्पादक, उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के अनुसार ही वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पाद करते हैं। उपभोक्ताओं को जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती हैं उन्हें वह वस्तु एवं सेवाएं मिल जाती हैं, उपभोक्ताओं को इस बात की चिंता नहीं होती की जो वस्तु वह खरीदना चाहते हैं वह उन्हें मिलेगी या नहीं और साथ ही उत्पादक को भी इस बात की चिंता नहीं होती हैं की वह जिस वस्तु का उत्पाद कर रहे हैं वह बाज़ार में बिकेगी या नहीं।

बाज़ार प्रणाली स्वतंत्र रूप से खुद ही कार्य करती हैं, **एडम स्मिथ (Adam Smith)** के अनुसार, ***"जब बाज़ार प्रणाली में हर व्यक्ति अपने हित के अनुसार अपने लाभ को बढ़ाने के लिए कार्य करता हैं तो सामाजिक लाभ खुद ही अधिकतम हो जाता हैं।"*** अपने स्वयं के हित में कार्य करते हुए, उत्पादक केवल वही वस्तुएं बनाते हैं जिसकी उपभोक्ता माँग करते हैं। **एडम स्मिथ** ने इसे **अदृश्य हाथ (Invisible Hand) का नियम** कहा है। परिणामस्वरूप, लाखों व्यक्ति (उत्पादक और उपभोक्ता) विकेंद्रीकृत निर्णय लेते हैं जो किसी ना किसी तरह से परस्पर जुड़े होते हैं। बाज़ार में माँग और पूर्ति बराबर रहती हैं। अत: बाजार संतुलन में रहता हैं परन्तु ऐसी भी स्थिति आती हैं जब माँग की मात्रा आपूर्ति की मात्रा से अधिक हो जाए या फिर आपूर्ति की मात्रा माँग की मात्रा से अधिक हो, इन दोनों

ही स्थितियों में बाजार भी कुछ समय बाद स्वत: ही वापिस संतुलन में आ जाता हैं, इस प्रक्रिया को आप नीचें दिए चित्र के माध्यम से समझेंगे।

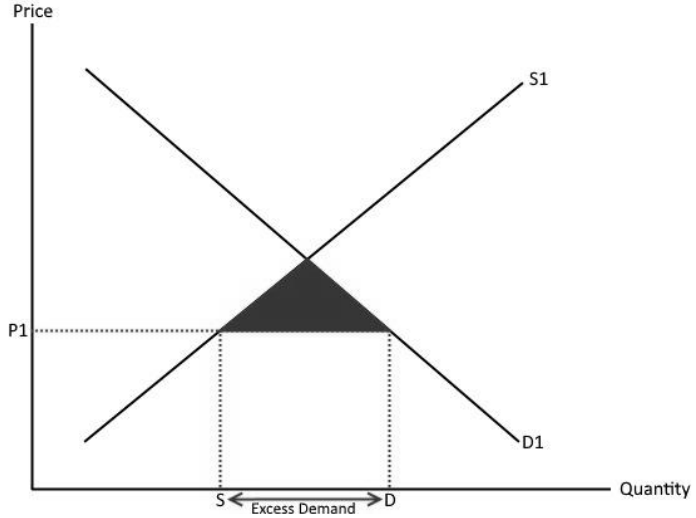

चित्र 6.1 माँग की मात्रा आपूर्ति की मात्रा से अधिक है

चित्र 6.1 में माँग की मात्रा आपूर्ति की मात्रा से अधिक है। संकेत कार्य उत्पादकों को बाज़ार में उस विशेष वस्तु या सेवा की अधिक आपूर्ति करने के लिए कहता है जिसकी माँग अधिक हैं। उत्पादकों के पास लाभ का प्रोत्साहन भी होता है इसलिए जैसे-जैसे वह पूर्ति की मात्रा बढ़ाते हैं, बाज़ार में कीमत बढ़ने लगती है और वह अधिक लाभ कमा सकते हैं। यह उपभोक्ताओं को वस्तु या सेवा कम खरीदने का संकेत देता है क्योंकि इनकी कीमत बढ़ रही हैं। कीमत में वृद्धि उपभोक्ता की माँग को सीमित करती है और वह अब उस विशेष बाज़ार को छोड़ देते हैं।

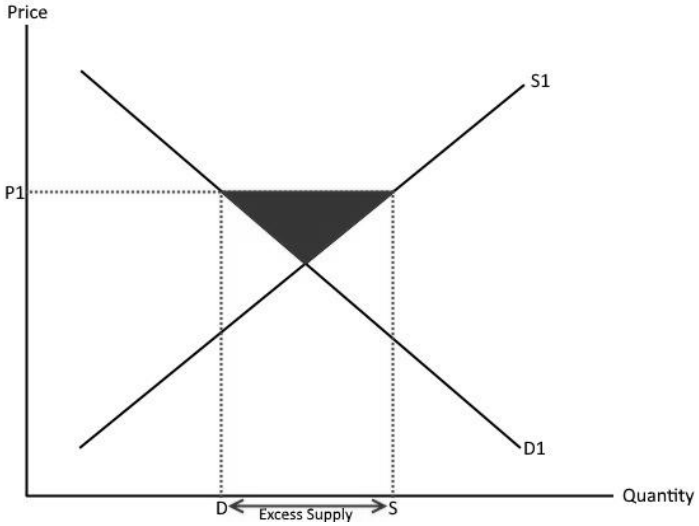

चित्र 6.2 आपूर्ति की मात्रा माँग की मात्रा से अधिक है

चित्र 6.2 में आपूर्ति की मात्रा माँग की मात्रा से अधिक है क्योंकि उत्पादक ज़्यादा नहीं बेच रहे हैं और इससे उनके मुनाफ़े पर असर पड़ता है। संकेत कार्य उत्पादकों को उस वस्तु या सेवा की आपूर्ति कम करने के लिए कहता है। कीमत में कमी उपभोक्ताओं को अधिक खरीदने का संकेत देती है एवं अब दूसरे उपभोक्ता उस बाज़ार में प्रवेश करते हैं।

6.3.2 राज्य का अर्थ (Meaning of State)

अर्थशास्त्र में राज्य का अर्थ सरकार से होता है नाकि किसी स्थान से। जिस प्रकार उपभोक्ता और उत्पादक अपने हित या लाभ के लिए कार्य करते हैं उसके विपरीत सरकार या राज्य लाभ जैसे किसी

छिपे उद्देश्य के बिना सार्वजनिक हित के लिए कार्य करती हैं। व्यक्तिगत उपभोक्ता या उत्पादक समाज के कल्याण के बारे में नहीं सोचते हैं और ना ही वह उन गतिविधियों पर धन व्यय करते हैं जिनसे सभी को लाभ होता है, जैसे कि सड़क, पुल, बांध, स्कूल या अस्पताल जैसे आधारभूत संरचना का विकास करना जिससे समाज के सभी वर्गों को लाभ हो। सिर्फ राज्य ही समाज के बारें में सोच कर कार्य करता हैं, विकास के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करता हैं एवं साथ ही सभी वर्गों के लिए कार्य करता हैं।

अगर राज्य हस्तक्षेप ना करें तो गरीब वर्ग के लोगो के लिए कोई भी उत्पादन नहीं करेगा क्योंकि निजी उत्पादक तो केवल उनही वस्तुओं का उत्पाद करता हैं जिससे वह ज्यादा से ज्यादा लाभ कामा सके और यह तभी संभव हैं जब उत्पादक अमिर वर्ग के लोगो के लिए उत्पाद करेगा। ऐसे में राज्य का हस्तक्षेप करना आवश्यक हैं ताकि सभी वर्ग के लोग संसाधनों का अपनी आय के अनुसार उपयोग कर सके।

6.4 बाजार: वृद्धि का प्रतिनिधि (Market : An Agent of Growth)

बाज़ार स्वतंत्र रूप से कार्य करता हैं एवं अहस्तक्षेप (Laissez-Faire) की प्रक्रिया में विश्वास रखता हैं। बाज़ार प्रणाली का मानना यह हैं की किसी देश को वृद्धि करने के लिए उसे मुक्त रखना आवश्यक हैं अत: सरकार का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। **एडम स्मिथ (Adam Smith)** के अनुसार बाज़ार प्रणाली में अर्थव्यवस्था को अदृश्य हाथ (invisible hand) चलाता हैं। अदृश्य हाथ के अनुसार, समग्र रूप से समाज का सर्वोत्तम हित व्यक्तिगत हित और उत्पादन एवं उपभोग की स्वतंत्रता के माध्यम से पूरा होता है। बाजार में माँग एवं आपूर्ति पर व्यक्तिगत दबावों का निरंतर परस्पर प्रभाव कीमतों की स्वाभाविक गति और वाणिज्य के प्रवाह का कारण बनता है। लेन-देन के लिए जगह उपलब्ध कराकर बाजार संस्थाओं को अपने हितों को आगे बढ़ाने के लिए पूंजी तक पहुँच प्रदान करता हैं, चाहे वह आधारभूत संरचना (Infrastructure) को निधि देना हो, विकास योजनाओं को पूरा करना हो, खरीदारी करना हो या अपना पैसा निवेश करना हो। इससे बाजार में प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त (competitive edge) हासिल करने के लिए नवाचार को बढ़ावा मिलता है।

बाजार अर्थव्यवस्थाएं अधिकांश वस्तुओं और सेवाओं के लिए उचित मूल्य और मात्रा निर्धारित करने के लिए आपूर्ति और माँग की शक्तियों पर निर्भर करती हैं। उत्पादन के कारकों- भूमि, श्रम और पूंजी को संगठित करते हैं और उन्हें श्रमिकों और वित्तीय समर्थकों के साथ मिलकर उपभोक्ताओं या अन्य व्यवसायों के लिए वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करने के लिए संयोजित करते हैं। खरीदार और विक्रेता अपनी इच्छा से कीमत पर सहमत होकर इन लेन-देन की शर्तों पर सहमत होते हैं। विभिन्न व्यवसायों और उत्पादन प्रक्रियाओं में उद्यमियों (Entrepreneurs) द्वारा संसाधनों का आवंटन उपभोक्ता माँग (Consumer demand) के आधार पर निर्धारित होता हैं। सफल उद्यमियों को लाभ के साथ पुरस्कृत किया जाता है जिसे भविष्य के व्यवसाय में फिर से निवेश किया जा सकता है। असफल उद्यमी अपने उत्पादों को संशोधित करते हैं या व्यवसाय से बाहर हो जाते हैं। बाज़ार प्रणाली तीन प्रकार से लाभदायक साबित होती हैं, ***पहला*** यह आवंटन कुशलता **(Allocative Efficiency) की** ओर ध्यान देती हैं, बाजार प्रणाली मुक्त बाजार को बिना किसी बर्बादी के कुशलतापूर्वक वस्तुओं और सेवाओं को वितरित करने की अनुमति देता है और यह पूरे समाज को लाभान्वित करता है। ***दूसरा*** यह निवेश के लिए संकेत देती हैं, बाजार प्रणाली फर्मों और निवेशकों को संकेत देती है कि कौन सी वस्तुएं और सेवाएं लाभदायक हैं और इस प्रकार उन्हें कहाँ निवेश करना चाहिए और कहाँ नहीं। ***तीसरा*** इसमें सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता हैं, यह अदृश्य हाथ के आधार पर वस्तुओं एवं सेवाएं प्रदान करती हैं। बिना सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता के उत्पादक जो चाहें उत्पादन करने के लिए स्वतंत्र हैं और उपभोक्ता जो चाहें खरीदने के लिए स्वतंत्र हैं।

बाज़ार प्रणाली की कुछ सीमाए भी हैं, जिसमे सबसे ***पहला*** हैं **बाजार विफलता (Market Failure)** जहाँ किसी विशेष वस्तु या सेवा, जैसे स्वास्थ्य देखभाल या शिक्षा के उत्पादन के लिए कोई लाभ प्रोत्साहन नहीं है, वहाँ उत्पादक उसका उत्पादन नहीं करेंगे, भले ही उसकी आवश्यकता हो या माँग अधिक हो। इसी कारण स्वतंत्र बाजार द्वारा कई महत्वपूर्ण वस्तुओं और सेवाओं का कम उत्पादन किया जाता है, जिससे बाजार विफलता होती है। ***दूसरी*** सीमा हैं **एकाधिकार (Monopoly)**, वास्तविक दुनिया में कभी-कभी किसी वस्तु या सेवा का केवल एक ही विक्रेता होता है। प्रतिस्पर्धा की कमी के कारण, वे उस वस्तु या सेवा की कीमतों और आपूर्ति को नियंत्रित करते हैं। खासकर अगर यह एक आवश्यक वस्तु या सेवा है तो उपभोक्ताओं को इसे खरीदना ही पड़ता है भले ही कीमत बहुत अधिक क्यों ना हो। ***तीसरी*** सीमा हैं **संसाधनों की बर्बादी (Wastage of resources)** सिद्धांत रूप में, संसाधनों की बर्बादी बहुत कम या बिलकुल नहीं होनी चाहिए क्योंकि उन्हें कुशलतापूर्वक वितरित किया जाता है परन्तु वास्तविक दुनिया में सदैव ऐसा नहीं होता है। अधिकांश फर्म कुशल प्रक्रियाओं की तुलना में लाभ को महत्व देते हैं और इसके परिणामस्वरूप संसाधनों की बर्बादी होती है।

6.5 राज्य: विकास का प्रतिनिधि (State: an Agent of Development)

राज्य या सरकार वह हैं जिसके प्रयासों से नई संस्थाएँ आती हैं एवं मूल्यों में परिवर्तन होता है। बाज़ार प्रणाली में तो व्यक्ति अपने हित में कार्य करते हैं और बाज़ार उन्हें लाभदायक कार्यों के अवसर प्रदान करता है। वृद्धि बाज़ार प्रणाली के द्वारा संभव हैं परन्तु वृद्धि आत्मकेन्द्रित (Self-Centred) होती हैं, किसी देश के विकास के लिए बाज़ार प्रणाली अकेले कार्य नहीं कर सकती राज्य का हस्तक्षेप करना आवश्यक होता हैं। जब राज्य अर्थव्यवस्था में समान रूप से फैलता है एवं समाज को लाभ पहुँचाता है, तभी विकास होता है। बाज़ार प्रणाली में व्यक्तिगत लोग कार्य करते हैं और वह अपने स्वभाव के कारण सामाजिक लाभ के बारे में नहीं सोच सकते। यह राज्य ही है जो समाज का प्रतिनिधित्व करता है एवं अपने प्रयासों के माध्यम से मूल्यों और संसाधनों में बदलाव लाता है जो विकास प्रक्रिया को गति प्रदान करते हैं।

विकास समानता पर निर्भर करता है, समाज में सभी की आय के वितरण में एवं काम मिलने के अवसर में समानता होनी चाहिए। यह सत्य है कि बाज़ार प्रणाली में समय के साथ औद्योगिक विकास में वृद्धि हुई हैं एवं सरकारी आय और प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हुई है परन्तु वृद्धि काफी नहीं हैं अर्थव्यवस्था के बढ़ने के लिए विकास आवश्यक हैं। बाज़ार प्रणाली के नेतृत्व वाली वृद्धि ऊर्ध्वाधर (Vertical) रूप से आगे बढ़ती है जिसे हम एकतरफ़ा वृद्धि भी कह सकते हैं परन्तु राज्य इस एकतरफा वृद्धि को देश के विकास की ओर ले जाता हैं।

अठारहवीं सताब्दी के अंत तक **एडम स्मिथ (Adam Smith)** की पुस्तक **"The Wealth of Nation"** के आने से पहले यह मान्यता थी कि विकास को साकार करने एवं कल्याण में सुधार के लिए बाजार सबसे अच्छा साधन है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री राज्य को कुछ मुख्य कार्यों की पूर्ति करने के लिए सबसे अच्छा मानतें थे जैसे रक्षा (defence), सार्वजनिक सामान प्रदान करना, लोगों एवं संपत्ति की सुरक्षा सुनिश्चित करना, नागरिकों को शिक्षित करना एवं बाजार के फलने-फूलने के लिए आवश्यक अनुबंधों (contracts) को लागू करना। राज्य का हस्तक्षेप इन सभी सामाजिक कार्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक हैं। यूरोप, जापान और उत्तरी अमेरिका में बाजार के विकास और वृद्धि में राज्य हस्तक्षेप ने महत्वपूर्ण उत्प्रेरक की भूमिका निभाई। संयुक्त राज्य अमेरिका वह देश है जिसने इस सिद्धांत को बनाया और माना कि ***"वह सरकार सबसे अच्छी है जो सबसे कम शासन करती है।"*** उन्नीसवीं सताब्दी के दौरान आय के पुनर्वितरण (redistribution) में राज्य की भूमिका काफी सीमित थी। यह मुख्य रूप से यूरोपीय देशों में निजी दान और अन्य स्वैच्छिक कार्यों के माध्यम से आया। कर प्रणाली (tax system) का उपयोग वितरण

उद्देश्यों के लिए नहीं किया गया क्योंकि कराधान केवल सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क, एकाधिकार एवं वस्तु करों तक ही सीमित था।

आय कर (income tax) जो अक्सर पुनर्वितरण उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता था, उन्नीसवीं सताब्दी के अंत तक राजस्व का एक प्रमुख स्रोत बन गया। केवल उस समय, आधुनिक कल्याणकारी राज्य की पहली निष्पक्ष कड़ी जर्मनी (Germany) में देखी गई थी जब इसके चांसलर **ओटो वॉन बिस्मार्क (Otto Von Bismark)** ने सामाजिक बीमा की पहली राष्ट्रव्यापी प्रणाली शुरू की थी।

6.6 बाजार अनुकूल राज्य की आवश्यकता (Need for Market Friendly State)

अनुभव बताते हैं कि बाज़ार की विफलता और हिस्सेदारी (equity) की चिंता ने सरकारी हस्तक्षेप के लिए आर्थिक औचित्य (Economic Propriety) प्रदान किया। साथ ही पिछले पचास वर्षों के अनुभव यह भी बताते हैं कि इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि ऐसे किसी भी हस्तक्षेप से समाज को लाभ होगा। वास्तव में, सरकार की विफलता बाज़ार की विफलता जितनी ही सामान्य हो सकती है। हमारे सामने चुनौती यह है कि राजनीतिक प्रक्रिया और संस्थागत ढांचे को सही प्रोत्साहन मिले, ताकि उनके हस्तक्षेप से वास्तव में सामाजिक कल्याण में सुधार हो। हालाँकि, राज्य की भूमिका को फिर से परिभाषित करने में मुख्य कठिनाई यह है कि सरकार के पैरों के नीचे की ज़मीन हमेशा बदलती रहती है। आर्थिक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देने के लिए सार्वजनिक सामान उपलब्ध कराने में फिर भी राज्य की भूमिका निर्विवाद (undistributed) बनी हुई है। साथ ही बाजार की विफलताएं राज्य के हस्तक्षेप के लिए शक्तिशाली आर्थिक तर्क पेश करती रहती हैं। सफल विकास के ऐतिहासिक और हालिया उदाहरणों में राज्य को विफलताओं को सुधारने के लिए बाज़ारों के साथ साझेदारी में काम करने की ज़रूरत है, नाकि उन्हें बदलने की। आर्थिक विकास की आधारशिला समानता है।

स्वाभाविक रूप से, यह राज्य के लिए एक केंद्रीय चिंता का विषय बना हुआ है। नए साक्ष्य से पता चलता है कि विकास और समानता के बीच परिचित समझौता अपरिहार्य नहीं है, जैसा कि एक बार सोचा गया था कि बुनियादी शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल में उचित रूप से डिजाइन की गई नीतियां गरीबी को कम कर सकती हैं और समानता बढ़ा सकती हैं और वृद्धि के साथ-साथ विकास को भी बढ़ावा दे सकती हैं। अर्थव्यवस्था में, विकास के इन सामाजिक बुनियादी सिद्धांतों की उपेक्षा घातक हो सकती है। हालाँकि, बाजार की विफलता, असमानता एवं असुरक्षा की अन्य समस्याओं के मात्र तथ्य का अर्थ यह नहीं है कि राज्य अकेले ही समस्या का समाधान कर सकता है या करना चाहिए।

अपनी सीमा के भीतर राज्य का दमनकारी अधिकार (Coercive power) उसे इस अधिकार को छीनने की इजाजत देता है परन्तु उसकी अनोखी कमजोरी और अधिकार एवं मानसिकता के प्रति उपेक्षा के परिणाम बिल्कुल विपरीत दिशा में होते हैं। कब और कैसे प्रतिक्रिया देनी है, यह तय करने में राज्य का कड़ी नज़र रखना स्वाभाविक है। राज्य की अनूठी ताकत उसकी कर लगाने की शक्ति है। सरकार की कर लगाने की शक्ति इसे प्रावधानों या सार्वजनिक वस्तुओं के वित्तपोषण में सक्षम बनाती है और इसकी निषेध और दंड देने की शक्ति इसे व्यक्तिगत सुरक्षा और संपत्ति अधिकारों की रक्षा करने में सक्षम बनाती है। दूसरे शब्दों में, जो लोग सार्वजनिक वस्तुओं का लाभ उठाएंगे उनसे लागत का अपना हिस्सा चुकाया जा सकता है। हालाँकि, एक ही समय में, राज्य को अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करने और यह सुनिश्चित करने में अद्वितीय चुनौतियों का सामना करना पड़ता है कि उसके कर्मचारी उनका पालन करें। यद्यपि चुनाव और अन्य राजनीतिक तंत्र नागरिकों और राज्य के बीच मध्यस्थता में मदद करते हैं, नागरिक जनादेश अक्सर प्रबल होते हैं, शक्तिशाली निहित स्वार्थी समूह लगातार राज्य का ध्यान अपनी ओर करने की कोशिश करते हैं। राज्य के विकास के लिए यह पहली बड़ी चुनौती है।

इसके अलावा, प्राथमिक शिक्षा, पर्यावरण संरक्षण एवं निवारक स्वास्थ्य देखभाल जैसी कई सरकारी गतिविधियों में प्रदर्शन की निगरानी करना मुश्किल है। इससे जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए

मानक तय करना या अन्य तंत्र स्थापित करना मुश्किल हो सकता है। इन दोनों समस्याओं के कारण राज्य नौकरशाही को विवेक के लिए भारी गुंजाइश मिल सकती है। यह सभी स्तरों पर राज्य के अधिकारियों को समाज के बजाय अपने स्वयं के एजेंडे को आगे बढ़ाने का अवसर प्रदान करता है। घोटालों की बढ़ती संख्या और बढ़ती भ्रष्टाचार की समस्या इस बात का उदाहरण है कि सामाजिक भलाई के बजाय व्यक्तिगत लाभ के लिए मनमाने ढंग से सार्वजनिक शक्ति का उपयोग किस ओर ले जा सकता है। कई देशों में स्वैच्छिक क्षेत्र ने सामूहिक वस्तुओं और सेवाओं में कुछ समूहों को संबोधित करने के लिए कदम बढ़ाया है, जिन्हें बाजार और राज्य दोनों प्रदान करने में विफल रहे हैं। इस क्षेत्र की भी अपनी ताकत और कमजोरियाँ हैं। यह सार्वजनिक जागरूकता बढ़ाने, लोगों की चिंताओं को व्यक्त करने और सेवाएं प्रदान करने में बहुत अच्छा काम करता है। लेकिन कई बार उनकी चिंता सबके लिए नहीं होती।

उनकी जवाबदेही सीमित है और संसाधन अक्सर सीमित होते हैं। ऐसी स्थिति में, राज्य के लिए चुनौती अपनी संस्थागत क्षमता को ध्यान में रखते हुए और उसमें सुधार करते हुए निजी बाजारों एवं स्वैच्छिक क्षेत्र की सापेक्ष ताकत का निर्माण करना है। अपनी भूमिका को अपनी मौजूदा क्षमता से जोड़कर और राज्य के भीतर और बाहर नियमों, साझेदारी एवं प्रतिस्पर्धी दबाव के माध्यम से अपनी क्षमता को फिर से मजबूत करके, यह आर्थिक और सामाजिक कल्याण को बढ़ा सकता है।

6.7 विकास के लिए बाजार और राज्य के बीच समझौता (Compromise between Market and State for Development)

बाज़ारों में मौजूद संस्थानों और मानदंडों की स्पष्ट समझ इस सोच की मूर्खता को दर्शाती है कि विकास रणनीति राज्य और बाज़ार के बीच चयन करने का मामला है। जैसा कि पहले चर्चा की गई है, संस्थानों और विकास के बीच संबंध की पुष्टि हुई है, दोनों अटूट रूप से जुड़े हुए हैं। देशों को बढ़ने के लिए बाज़ार की ज़रूरत है और बाज़ार को बढ़ने के लिए सक्षम राज्य संस्थानों की ज़रूरत है। राज्य और बाज़ार के बीच समझौते के साथ विकास होता है, अन्य बातों के साथ-साथ अर्थव्यवस्था का भी विकास होता है। नि:संदेह, राज्य बेहतर परिणाम प्राप्त करेगा यदि वह यह प्रयास करे कि वह क्या कर सकता है और कैसे कर सकता है, इसे अपनी संस्थागत क्षमताओं के अनुरूप बनाए, नाकि किसी आदर्शवादी मॉडल के अनुरूप।

जहाँ राज्य के पास राज्य की भूमिका और उसकी क्षमता के बीच बेहतर मेल की तलाश करने का एक लंबा रिकॉर्ड है, ऐसा लगता है कि संगठित अपराध को राज्य के **'संरक्षण'** के लिए भुगतान करना उन्हें खत्म करने का एक नुस्खा है, ऐसे में निवेश को सबसे ज्यादा नुकसान होता है। उद्यमी अत्यधिक अनिश्चित और अस्थिर वातावरण में संसाधनों का निवेश नहीं करते हैं। हालांकि उन्हें विश्वास है कि यह सब बदल जाएगा और एक प्रतिकूल घटना से किए गए निवेश की वसूली करना मुश्किल हो जाएगा। ऐसी स्थितियों में, व्यापार और सेवाएँ जीवित रह सकती हैं लेकिन विनिर्माण (Manufacturing) और उच्च प्रौद्योगिकी (High Technology) विकसित नहीं हो सकती हैं। विश्वसनीयता इसकी गुणवत्ता को प्रभावित करती है। परिणामस्वरूप, कम विश्वसनीयता वाले वातावरण में वृद्धि के साथ-साथ विकास को भी नुकसान होता है। प्रश्न राज्य और बाज़ार दोनों को उचित भूमिका सौंपने का है। उन देशों में जहाँ राज्य अभी तक आर्थिक और सामाजिक बुनियादी सिद्धांतों को सुरक्षित नहीं कर रहे हैं: वैधता की नींव, एक सौम्य नीति वातावरण, बुनियादी सामाजिक सेवाएं और कमजोर लोगों की कुछ सुरक्षा।

राज्य निजी बाज़ार और स्वैच्छिक पहलों द्वारा प्रदान की जा सकने वाली वस्तुओं और सेवाओं से कहीं अधिक उपलब्ध करा रहा है। विकास को आगे बढ़ाने के लिए, ऐसे राज्यों को बुनियादी बातों पर वापस जाने की जरूरत है। राज्य विकसित देशों में स्थिरता बहाल करने के लिए बाजार में हस्तक्षेप करता है जबकि कम विकसित अर्थव्यवस्था में लोगों को विकास के लिए आवश्यक बुनियादी सामग्री प्रदान करने के लिए राज्य आर्थिक गतिविधियों में हस्तक्षेप करता है। बाजार की बहुत अधिक स्वतंत्रता असमानता को जन्म देती है, राज्यों द्वारा बहुत अधिक हस्तक्षेप और भागीदारी विकास में बाधा उत्पन्न करती है, जिसकी विकास के लिए सबसे अधिक आवश्यकता होती है। चूँकि गरीबी सदैव अविकसितता का मुख्य कारण रही

है, कम विकासशील देशों को गरीबी उन्मूलन के लिए विकास की आवश्यकता है। किसी भी देश के विकास के लिए राज्य और बाज़ार दोनों ही आवश्यक हैं। अत: इन दोनों के समझौते के साथ ही देश आगे बढ़ सकता हैं और विकास कर सकता हैं।

6.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. एडम स्मिथ के अनुसार बाज़ार प्रणाली में अर्थव्यवस्था को.....चलाता हैं। (अदृश्य हाथ **या** व्यक्ति)
2. .....के अंतर्गत आवंटन कुशलता देखने को मिलती हैं। (राज्य **या** बाज़ार प्रणाली)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य चुनिए-

1. बाज़ार प्रणाली के केवल तीन कार्य होते हैं, पहला संकेत और दूसरा प्रोत्साहन।
2. राज्य केवल गरीब वर्ग के लोगो के हित में कार्य करता हैं।
3. बाज़ार प्रणाली आत्मकेन्द्रित होती हैं।

6.9 सांराश (Summary)

प्रस्तुत इकाई में आपने बाज़ार अर्थव्यवस्था एवं राज्य अर्थव्यवस्था के बारे में विस्तार से पढ़ा और समझा की बाजार अर्थव्यवस्था अहस्तक्षेप में विश्वास रखती है, जिसमें सरकार कोई भी रोक-टोक नहीं लगाती अत: लेन-देन की प्रक्रिया स्वत: चलती हैं। इस अर्थव्यवस्था में उत्पादक एवं उपभोक्ता अपने हित के लिए कार्य करते हैं एवं केवल अपना लाभ बढ़ाने के बारे में सोचते हैं। वहीं दूसरी ओर राज्य अर्थव्यवस्था जिसे सरकार कहा जाता हैं वह सभी वर्ग के लोगो के लिए कार्य करती हैं, राज्य लाभ के बारे में नहीं सोचता बल्कि वह सामाजिक कल्याण के लिए कार्य करता हैं। इस इकाई में आपने बाज़ार अर्थव्यवस्था के बारे में विस्तार से पढ़ा और समझा की बाज़ार अपने आप ही कार्य करता हैं, बाज़ार असंतुलन की स्थिति में ही कार्य करता हैं बाज़ार तंत्र के तीन कार्य हैं: संकेत, प्रोत्साहन एवं राशनिंग कार्य। इकाई में आपने बाज़ार के गुणों एवं अवगुणों के बारे में जाना और समझा की बाज़ार प्रणाली के तीन गुण होते हैं पहला आवंटन कुशलता दूसरा यह निवेश के लिए संकेत देती हैं और तीसरा इसमें सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता हैं। बाज़ार के तीन अवगुण भी हैं पहला हैं बाजार विफलता दूसरा हैं एकाधिकार, और तीसरा हैं संसाधनों की बर्बादी।

इकाई में आपने पढ़ा कि किस तरह दोनों अर्थव्यवस्था अलग-अलग कार्य करती हैं, बाज़ार अपने हित के लिए कार्य करता हैं और राज्य लोगो के कल्याण के लिए परन्तु दोनों के बीच के समझौते से ही देश का विकास हो सकता हैं। बाज़ार प्रणाली में तो व्यक्ति अपने हित में कार्य करते हैं और बाज़ार उन्हें लाभदायक कार्यों के अवसर प्रदान करता है। वृद्धि बाज़ार प्रणाली के द्वारा संभव हैं परन्तु वृद्धि आत्मकेन्द्रित होती हैं, किसी देश के विकास के लिए बाज़ार प्रणाली अकेले कार्य नहीं कर सकती राज्य का हस्तक्षेप करना आवश्यक होता हैं। जब राज्य अर्थव्यवस्था में समान रूप से फैलता है एवं समाज को लाभ पहुँचाता है, तभी विकास होता है। विकास के लिए दोनों अर्थव्यवस्था का होना आवश्यक हैं दोनों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं जिनके होने से ही हम देश को आगे बढ़ा सकते हैं।

6.10 शब्दावली (Glossary)

- **अहस्तक्षेप (Laissez-Faire):** अहस्तक्षेप नीति वह होती हैं जहाँ सरकार कोई भी हस्तक्षेप नहीं करती हैं, अर्थव्यवस्था अपने आप कार्य करती हैं एवं सभी लोग अपने लाभ के लिए कार्य करते हैं।
- **एकाधिकार (Monopoly):** एकाधिकार बाज़ार का एक प्रकार हैं जिसमें केवल एक ही उत्पादक होता हैं, अत: उसके द्वारा उत्पाद की गई वस्तु का कोई भी स्थानापन्न नहीं होता हैं।

- **आवंटन कुशलता (Allocative Efficiency):** आवंटन कुशलता तब प्राप्त होती है जब किसी अर्थव्यवस्था में सभी उपलब्ध संसाधनों को इस तरह से आवंटित किया जाता है कि यह सभी बाजार सहभागियों को अधिकतम संभव लाभ प्रदान करता है।
- **आर्थिक औचित्य (Economic Propriety):** आर्थिक औचित्य का अर्थ है कानून, नियमों, विनियमों का अनुपालन, विवेक, सतर्कता, उचित परिश्रम के उच्च मानक बनाए रखना और व्यय करते समय और सरकारी प्राप्तियां एकत्र करते समय पैसे का मूल्य सुनिश्चित करना।
- **अदृश्य हाथ (Invisible Hand):** अदृश्य हाथ के अनुसार, समग्र रूप से समाज का सर्वोत्तम हित व्यक्तिगत स्वार्थ और उत्पादन एवं उपभोग की स्वतंत्रता के माध्यम से पूरा होता है।
- **प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त (Competitive Edge):** प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त का अर्थ है आपकी कंपनी द्वारा बाज़ार में लाए जाने वाले अद्वितीय गुण, उपकरण, संसाधन और लाभ। आपकी प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त ही आपके ग्राहकों को किसी अन्य व्यवसाय के बजाय आपकी ओर लाती है।
- **दमनकारी अधिकार (Coercive Power):** दमनकारी अधिकार अवांछनीय व्यवहार या गतिविधियों को रोकने, दंडित करने या रोकने के लिए अधिकारियों द्वारा की गई कार्रवाइयों को संदर्भित करते हैं। इनमें कानूनी मानदंडों को बनाए रखने और सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के उद्देश्य से प्रतिबंध, जुर्माना या नियामक कार्रवाई शामिल होती है।

6.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. अदृश्य हाथ 2. बाज़ार प्रणाली

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य चुनिए-

1. असत्य 2. असत्य 3. सत्य

6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- Adelman, I. (1961) *Theories of Economic Growth and Development*, Stanford University Press, Stanford
- Galbraith, J.K (1969) *Economic Development*, Oxford University Press, London
- Hollis Chenery and T.N. Srinivasan (2007) *Handbook of Development Economics*, Vols. 1 & 2, Elsevier North Holland, UK
- Kindleberger, C. P. (1977) *Economic Development*, (3rd Edition), McGraw Hill, New York.
- Kuznets, Simon (1969) *Economic Growth & Structure*, Oxford & IBH Publishing Co., New Delhi
- Meier, G. M. (1995) *Leading Issues in Economic Development*, (6th Edition), Oxford University Press, New Delhi
- Mishra and Puri (2006) *Economic of Growth and Development*, Himalaya Publishing House, New Delhi

- Meier, G. M. and D. Seers (Eds.) (1987) ***Pioneers in Development***, Oxford University Press, New York.
- Philip Arestis (1996) ***Employment, Economic Growth and the Tyranny of the Market***, Edward Elgar Publishing Ltd, UK
- Taneja, M. L. and R. M. Myer (2013) ***Economics of Development and Planning***, Vishal Publishing Co., Jalandhar
- Thirlwall, A P. (2003) ***Growth and Development***, Palgrave Macmillan Press Ltd., New York
- Todaro, Michael P. and Stephen C. Smith (2014) ***Economic Development***, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd., New Delhi
- Vaidyanathan, A. (2005) ***India's Economic Reforms and Development***, Academic Foundation, New Delhi

6.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Text)

- अग्रवाल, एस. एन. (1972), ***भारत की जनसंख्या समस्या***, टाटा मैक्ग्रा हिल कम्पनी, मुम्बई।
- दत्त, रूद्र एवं के. पी. एम. सुन्दरम (2010), ***भारतीय अर्थव्यवस्था***, एस. चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली।
- सिन्हा, बी. सी. एंव पुष्पा सिन्हा (2011), ***जनांकिकी के सिद्धान्त***, मयूर पेपर बैक्स, नई दिल्ली।
- चौबे, पी. के. (2000), ***भारत में जनसंख्या नीति***, कनिष्ट प्रकाशन, नई दिल्ली।
- मिश्र, प्रकाश (2012), ***जनांकिकी***, साहित्य भवन पब्लिकेशन, दिल्ली।

6.14 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. बाज़ार अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं? इसके कार्यों को विस्तार से समझाइए।
2. राज्य अर्थव्यवस्था का अर्थ क्या हैं? विस्तार से बताइए कि राज्य किस प्रकार विकास का प्रतिनिधि हैं।
3. किसी भी देश के विकास के लिए बाजार अनुकूल राज्य की आवश्यकता क्यों हैं? टिप्पणी कीजिए।

इकाई 7- विकास प्रेरित विस्थापन: कारण, परिणाम और चुनौतियाँ (Development Included Displacement- Causes, Consequences and Challenges)

7.1 परिचय (Introduction)
7.2 उद्देश्य (Objectives)
7.3 विस्थापन के प्रकार (Types of Displacement)
7.4 विस्थापन के कारण (Causes of Displacement)
7.5 विकास प्रेरित विस्थापन (Development Induced Displacement)
7.6 विकास प्रेरित विस्थापन के परिणाम (Consequences of Development Induced Displacement)
7.7 आंतरिक विस्थापन के निर्देशक सिद्धांत (Guiding Principles of Internal Displacement)
7.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
7.9 सारांश (Summary)
7.10 शब्दावली (Glossary)
7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)
7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
7.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)
7.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

7.1 परिचय (Introduction)

इस अध्याय में, आप विस्थापन के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे, जिसमें बलात विस्थापन, स्वैच्छिक विस्थापन और प्रेरित विस्थापन की श्रेणियाँ शामिल हैं। विस्थापन के कारणों पर भी ध्यान केंद्रित किया जाएगा, जैसे हथियारबंद संघर्ष, प्राकृतिक आपदाएँ, और आर्थिक विकास। आप जानेंगे कि कैसे इन कारणों से लाखों लोग विस्थापित होते हैं और किस प्रकार के सामाजिक, आर्थिक, और पर्यावरणीय परिणाम उत्पन्न होते हैं। विशेष रूप से, विकास प्रेरित विस्थापन पर चर्चा की जाएगी, जिसमें भारत के संदर्भ में ऐतिहासिक और वर्तमान परिदृश्य पर प्रकाश डाला जाएगा। अंत में, आप विस्थापन के मानवाधिकार संबंधी पहलुओं को भी समझेंगे, जिनमें जीवन, आजीविका, और स्वायत्तता के अधिकारों का उल्लंघन शामिल है। यह अध्याय आपको विस्थापन की जटिलता और इसके विभिन्न आयामों को समझने में सहायता करेगा।

7.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- ✓ विस्थापन के प्रकारों से जान सकेंगे।
- ✓ विस्थापन के कारणों, इसके परिणामों और इसकी वजह से सामने आने वाली चुनौतियों के बारे में जान सकेंगे।
- ✓ विकास प्रेरित विस्थापना की अवधारणा से अवगत हो सकेंगे व इसके परिणामों को समझ सकेंगे।
- ✓ आंतरिक विस्थापन के निर्देशक सिद्धांत को भी जान सकेंगे।

7.3 विस्थापन के प्रकार (Types of Displacement)

पृथ्वी एक नाजुक, संवेदनशील, अंतर्संयोजित व्यवस्थाओं और तंत्र के एक अतुल्य जटिल नेटवर्क वाला ग्रह है, जिसका विकास साढ़े चार लाख वर्षों से भी अधिक समय से लगातार जारी है। धरती पर जीवन के प्रारंभ के साथ हर वस्तु, घटना के पीछे प्राकृतिक विकास की प्रक्रिया रही है। हालांकि, प्रजाति के रूप में मानवों के विकास ने इस प्राकृतिक श्रेणीक्रम को प्रभावित करना शुरू किया है। सात अरब से अधिक आबादी के साथ मनुष्यों ने पृथ्वी की प्राकृतिक व्यवस्था पर खासा असर डाला है। मानव इतिहास इस बात का प्रतीक रहा है कि व्यक्तिगत अधिकार और मानवता के लक्ष्य को पूरा करने की जरूरत है। हालांकि, ऐतिहासिक रूप से कई बार समाजों ने व्यक्तिगत अधिकारों और सत्ताशक्ति, राज्य के बीच संतुलन बनाये रखने का प्रयास किया है कई बार संतुलन की इस प्रक्रिया में संसाधनों, जीवनस्तर, आजीविका आदि के लिये बेहतर और समृद्ध स्थानों की ओर विस्थापन, पलायन देखा जाता है। पलायन कई बार स्वैच्छिक (निजी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये) हो सकता है, लेकिन कई बार यह बलात अथवा अनैच्छिक (विद्रोह के कारण अथवा विकास गतिविधियों के संचालन के कारण) भी हो सकता है।

International Organization for Migration के अनुसार बलात पलायन में कोई व्यक्ति उत्पीड़न, दमन, प्राकृतिक और मानवनिर्मित आपदाओं, पारिस्थितिकीय अपमानक या जीवन को खतरे में डालने वाली परिस्थितियों से बचाव, स्वतंत्रता अथवा बेहतर आजीविका के लिये एक से दूसरे स्थान की ओर जाता है। इस तरह विस्थापित होने वाले लोगों को बलात पलायित या विस्थापित या कई बार देश के भीतर ही विस्थापित शरणार्थी भी कहा जाता है। World Migration Report 2018 के अनुसार वर्ष2015 में 24 करोड़ से अधिक लोग अंतर्राष्ट्रीय विस्थापित थे, जो वैश्विक जनसंख्या का करीब 3.3 प्रतिशत था। यहां यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि पलायन करने वाले अधिकतर लोग सीमाओं को पार नहीं करते, वे उसी देश की सीमाओं के भीतर रहना चाहते हैं जहां उनका जन्म हुआ। इसके चलते किसी देश के भीतर ही विस्थापित होने वाले लोगों की बड़ी संख्या रहती है। हाल के वर्षों में आंतरिक यानी देश के भीतर और सीमापार यानी एक से दूसरे देश में पलायन करने वाले लोगों की संख्या में खासा इजाफा दर्ज किया गया है। इस तरह के पलायन की वजह नागरिक और अंतर्राज्यीय, अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष हैं। वर्ष 2016 के

आकलन के अनुसार 4.03 करोड़ लोगों ने अपने-अपने देश के भीतर ही विस्थापन किया, जो वर्ष 2015 में 4.08 करोड़ के आंकड़े से कुछ कम रहा। वहीं, वर्ष 2018 में 2.25 करोड़ अंतर्राष्ट्रीय शरणार्थी दुनियाभर में थे, जिनमें पांच लाख के करीब म्यांमार से भारत और बांग्लादेश में आने वाले रोहिंग्या रहे।
विस्थापन को मुख्यतः तीन श्रेणियों में बांटकर देखा जा सकता है-

1. **स्वैच्छिक विस्थापन (Voluntary Displacement)-** यह ऐसी परिस्थिति है, जब कोई आबादी स्वयं अपने विस्थापन के लिये प्रयास करती है। उस पर कोई बाहरी दबाव नहीं होता है।
2. **बलात या मजबूरन विस्थापन (Forced or forced displacement)-** इस प्रक्रिया में किसी परिवार या समुदाय को उनकी इच्छा के विपरीत और विरोध के बावजूद विस्थापित कर दिया जाता है।
3. **प्रेरित विस्थापन (Induced displacement)-** जब विकास एजेंसियों द्वारा उत्पन्न परिस्थितियों (जब मौजूदा प्राकृतिक पर्यावरण में आजीविका के लिहाज से रह पाना मुश्किल हो जाता है) के कारण प्रभावित समुदाय और आबादी विस्थापन की मांग करते हैं। इन परिस्थितियों के कारण संबंधित लोगों को विकास एजेंसियों के उत्पीड़न, दबाव का सामना करना पड़ता है। उनकी आजीविका पर तमाम प्रतिबंध लग जाते हैं, बुनियादी सुविधाएं भी नहीं मिल पातीं और विकास परियोजनाओं के चलते संरक्षित किये गये क्षेत्र से उन्हें बाहर जाना पड़ता है। हालांकि, प्रेरित विस्थापन को हालिया दौर में कई बार गलती से स्वैच्छिक मान लिया जाता है।

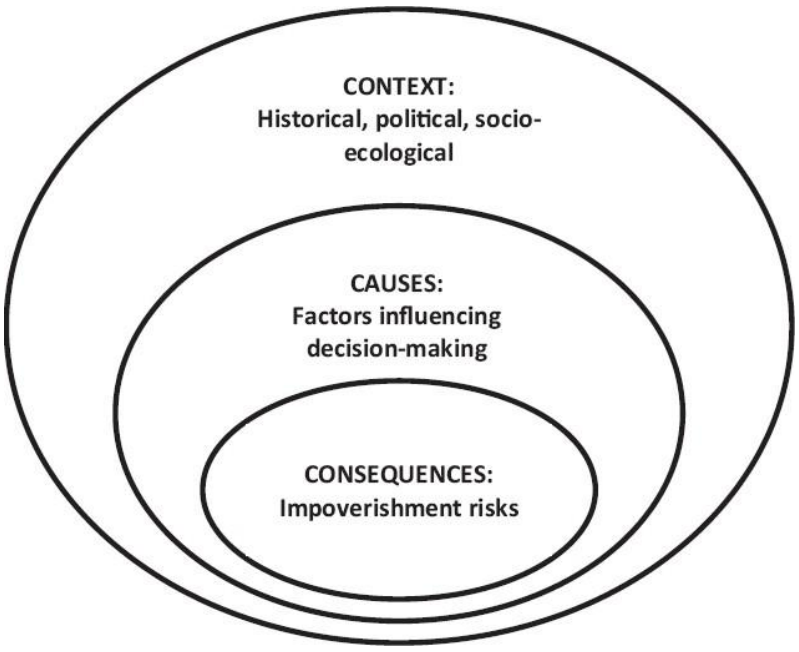

Figure 1: A framework for understanding the causes and consequences of displacement

7.4 विस्थापन के कारण (Causes of Displacement)

लोगों का पलायन सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप है जो विभिन्न कारकों से होता है, जिसमें हथियारबंद संघर्ष सबसे आम है। हालांकि, प्राकृतिक आपदाएं, नागरिक संघर्ष, विकास, आर्थिक गतिविधियां और सूखा आदि भी मानवीय विस्थापन के कारण हैं। विश्वभर में आबादी के बढ़ते दबाव, भूमि पर शहरीकरण के दबाव, बेहद त्वरित आर्थिक विकास, अवस्थापना ढांचे की बढ़ती जरूरतों ने हाल के

दशकों में विस्थापन और पलायन को लगातार बढ़ाया है। सामान्यतः अधिकतर विस्थापन में मानवाधिकारों का हनन स्पष्ट देखा जा सकता है। विस्थापन के कारकों को हम निम्नवत विस्तार से जान सकेंगे-

1. **हथियारबंद युद्ध और नागरिक विद्रोह (Armed Warfare and Civil Rebellion)-** देश के भीतर और एक से अन्य देश में मानव आबादी के बलात विस्थापन के पीछे का यह सबसे प्रमुख कारण है। इस तरह के विस्थापन के पीछे मुख्यतः राजनीतिक, सामाजिक, पारंपरिक और धार्मिक कारण होते हैं। उदाहरण के लिये सीरिया, अफगानिस्तान और सोमालिया में युद्ध के दौरान भारी पलायन दर्ज किया गया। विश्वभर में शरणार्थियों की कुल संख्या का 54 प्रतिशत हिस्सा इन तीन देशों का ही रहा। सीरिया इस मामले में सबसे आगे रहा, जहां से 49 लाख से अधिक लोग दूसरे देशों में शरण लेने पर मजबूर हुये। इसी तरह अफगानिस्तान से 27 लाख से अधिक और सोमालिया से 11 लाख से अधिक लोग विस्थापित हुये।
2. **प्राकृतिक आपदाएं (Natural Disasters)-** बादल फटना, बाढ़, भूस्खलन, भूकंप, ज्वालामुखी, वनाग्नि, सुनामी, हरीकेन-टॉरनेडो तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाएं भी मानव आबादी के विस्थापन की मुख्य वजह है। इस तरह का विस्थापन दरअसल, अस्तित्व को बचाये रखने के प्रयास के तौर पर होता है। प्राकृतिक आपदाओं और इनके कारण आजीविका, संसाधनों को हुये नुकसान, पर्यावरणीय हानि के कारण वर्ष 2009 से 2010 तक पांच करोड़ से अधिक लोग दुनियाभर में विस्थापित हुये। वर्ष 2009 में भारत में बाढ़ और तूफान के कारण आयी सबसे बड़ी आपदा 50 लाख लोगों के विस्थापन की वजह बनी। इसी तरह 2010 में पाकिस्तान में आयी बाढ़ के कारण 15 लाख से अधिक लोग विस्थापित हुये। सुनामी, ज्वालामुखी, भूकंप जैसी आपदाओं के कारण वर्ष 2008 से 2010 के बीच विभिन्न देशों में 4.6 करोड़ लोग विस्थापित हुये। वर्ष 2013 की केदारनाथ आपदा, जम्मू-कश्मीर में बाढ़ ने भी करीब 10 लाख लोगों को विस्थापन के लिये मजबूर किया।
3. **आर्थिक विकास (Economic Development)-** विकास संबंधी गतिविधियों ने भी मानव आबादी को अपने घरों, गृहक्षेत्र और राज्य से आर्थिक विकास के उद्देश्य से विस्थापन के लिये मजबूर किया है। ऐतिहासिक रूप से इस तरह का विस्थापन मुख्यतः बांधों के निर्माण, सिंचाई परियोजनाओं, खनन, सड़क, रेलमार्ग, नहरों, बंदरगाहों, एयरपोर्ट आदि के विकास के कारण होता है।
4. **वन्यजीव प्रबंधन और संरक्षण (Wildlife Management and Conservation)-** नेशनल पार्क, टाइगर रिजर्व, एलीफेंट रिजर्व, वन्यजीव अभ्यारण्य और संरक्षित क्षेत्रों के कारण भी बड़ी आबादी को विस्थापित होना पड़ता है। उदाहरण के लिये उत्तराखंड में कॉर्बेट नेशनल पार्क, राजाजी नेशनल पार्क के आसपास और वनक्षेत्रों के भीतर रहने वाले लोगों को संरक्षित क्षेत्रों से निकालकर विस्थापित किया गया है।
5. **मानव तस्करी और गुलामी (Human Trafficking and Slavery)-** कई देशों में लोग इसलिये पलायन करते हैं कि वे शोषण से बचे रहें। चूंकि मानव तस्करी जैसी गतिविधियां बेहद गुप्त होती हैं, इनके संबंध में अधिक और सही आंकड़ा उपलब्ध नहीं हो पाता है। 15वीं से 19वीं सदी तक अफ्रीका, एशिया और अमेरिका में दो करोड़ से अधिक लोगों को बंधक बनाकर गुलाम बनाने के लिये विस्थापित किया गया था।
6. **पारंपरिक समुदायों के संघर्ष (Struggles of Traditional Communities)-** कई बार शक्तिशाली समूह किसी क्षेत्रविशेष में रहने वाले पारंपरिक समुदाय को खदेड़ देता है। इसके पीछे शक्तिशाली समूह का खुद की परंपरा को बढ़ावा देने का मकसद होता है। ऐसे हालिया उदाहरणों में म्यांमार शामिल है, जहां से कई लोग दो समूहों के बीच चल रहे संघर्ष के चलते विस्थापित हुये हैं।

इनके अलावा विस्थापन तब भी सामने आता है, जब विस्थापित होने वाली आबादी प्रथम विस्थापन की जगह पर भी अवसरों और अवस्थापना का अभाव अनुभव करती है। इसे द्वितीयक विस्थापन कहा जाता है और यह एक के बाद एक कई विस्थापनों की वजह बन सकता है। बलात विस्थापन की प्रक्रिया विस्थापित लोगों को अकसर निर्धनता की ओर धकेल देती है, क्योंकि विस्थापन की नयी जगह पर सामान्यतः प्रभावी जीवन जीने के लिये विस्थापित आबादी के मूल स्थान के मुकाबले पर्याप्त अवसरों का अभाव रहता है।

7.5 विकास प्रेरित विस्थापन (Development Induced Displacement)

भारत जैसी तेजी से विकसित होती अर्थव्यवस्था में सरकार विकास और अवस्थापना ढांचे की स्थापना के लिये बड़ी मात्रा में भूमि अधिग्रहण करती है। आंकड़े बताते हैं कि 90 के दशक में विकास परियोजनाओं की स्थापना के लिये भारत में दस करोड़ के करीब लोगों को विस्थापित होना पड़ा। दुनियाभर में करोड़ों लोग इसी तरह विस्थापित हुये हैं। **रॉबिन्सन** (2003) ने विकास के कारण विस्थापन की कुछ श्रेणियों को स्पष्ट किया है। इनमें शहरी अवस्थापना विकास, परिवहन सुविधा का विकास- सड़कें, हाईवे, नहरें, जल वितरण-बांध निर्माण, जल संरक्षण क्षेत्र, सिंचाई परियोजनाएं, ऊर्जा-हाइड्रोपावर, कोयला प्लांट, न्यूक्लियर प्लांट, तेल पाइपलाइन, खनन, कृषि विस्तार, पार्क-वन संरक्षित क्षेत्र और आबादी पुनर्व्यवस्था योजनाएं शामिल हैं।

विकास प्रेरित विस्थापन को समस्याओं का कारण माना जाता है। मुख्यतः जब यह आबादी के किसी विशेष वर्ग को लक्षित करता है, जिनमें निर्धन, पारंपरिक, जातीय, धार्मिक-राजनीतिक अल्पसंख्यक, पारंपरिक जनजातीय और अन्य उपेक्षित समूह होते हैं। ऐसी स्थिति में कई बार देखा जाता है कि विकास प्रक्रियाओं के चलते मानवाधिकारों का हनन होने लगता है। ऐसे में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के स्तर पर निर्देशक सिद्धांतों का ध्यान रखा जाना आवश्यक होता है, जो अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों, संयुक्त राष्ट्र संघ, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा तैयार किये जाते हैं।

भारत में विकास प्रेरित विस्थापन का इतिहास (History of development induced displacement in India)

भारत में विश्व की सर्वाधिक विकास परियोजनाएं संचालित हो रही हैं। भारत में 19 वीं सदी के प्रारंभ से ही विकास गतिविधियों के कारण आबादी के विस्थापन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी थी। औपनिवेशिक काल के दौरान झारखंड मे कोयला खदानों, बंगाल और असोम में चाय बागान (जहां बड़ी संख्या में छत्तीसगढ़, ओडिशा और झारखंड के लोग गुलामों की तरह काम किया करते थे), कर्नाटक में कॉफी और ऐसी ही कई योजनाएं प्रारंभ की गयीं। इन सभी परियोजनाओं के विकास के लिये बड़ी मात्रा में भूमि की जरूरत को देखते हुये भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया में कई संशोधन किये गये। भूमि अधिग्रहण के चलते लाखों लोगों को विकास के लिये विस्थापित होना पड़ा। वर्ष 2013 तक भारत में भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया Permanent Settlement 1793 एवं Land Acquisition Act 1894 के तहत पूरी होती थी। वर्ष 2013 मे Right to Fair Compensation and Transparency in Land Acquisition, Rehabilitation and Resettlement एक्ट, 2013 इस कानून के दो पहलू हैं, पहला यह कि राज्य (शासन) हर तरह की जैवविविधता, प्राकृतिक संसाधनों और भूमि का उपयोग एवं स्वामित्व ले सकता है, दूसरा राज्य को इस बात का पूर्ण अधिकार है कि वह सार्वजनिक लाभ के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुये निजी जमीनों पर काबिज लोगों को विस्थापित कर सके।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात चार दशकों में 2.1 करोड़ से अधिक लोग विभिन्न विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित हुये, जिनमें जनजातीय समुदायों की 40 प्रतिशत संख्या रही (Robinsion, 2003) अप्रत्यक्ष विस्थापन लोगों को पारंपरिक आजीविका संसाधनों से दूर कर देता है। 1950 से 1960 के दशक में भारतीय पारंपरिक समाज इसी वजह से आधुनिक और जटिल समाज के तौर

पर बदलता देखा गया। तकनीकी, पूंजी संबंधी पहल और विकास परियोजनाओं के बड़े पैमाने पर संचालन ने भारतीय समाज की अर्थव्यवस्था को गति प्रदान की। लेकिन, विकास की इस पूरी प्रक्रिया ने भारतीय समाज के निर्धनतम वर्गों, जनजातियों और वनवासी समूहों को और अधिक निर्धनता की ओर धकेल दिया, क्योंकि वे अपनी पारंपरिक आजीविका, प्राकृतिक संसाधनों, संपत्तियों और सामाजिक ढांचे से दूर होते चले गये।

इन चुनौतियों को देखते हुये नव विकासवाद का उभार हुआ, जिसमें निर्धनता उन्मूलन, पर्यावरणीय संरक्षण, सामाजिक न्याय, मानवाधिकार आदि पहलुओं को शामिल करने की कोशिश की गयी। सरदार सरोवर बांध और नर्मदा नदी पर सिंचाई परियोजनाएं भारत की ऐसी सर्वाधिक विवादित परियोजनाएं रहीं, जिन्हें भारत में विकास प्रेरित विस्थापन का बड़ा उदाहरण माना जा सकता है। परियोजना का शिलान्यास अप्रैल 1961 में प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने किया था और इसका उद्घाटन वर्तमान पीएम श्री नरेन्द्र मोदी ने 17 सितंबर 2017 को किया। सरकार का दावा है कि सरदार सरोवर परियोजना से गुजरात में सूखा प्रभावित 18 लाख हेक्टेअर और राजस्थान में 75 हजार हेक्टेअर भूमि को सिंचाई का पानी, 24 लाख लोगों को पीने का पानी उपलब्ध हुआ। परियोजना के चलते तीन लाख 20 हजार लोगों को विस्थापित किया गया और हजारों लोगों की आजीविका पर भी असर पड़ा। विभिन्न शोधों का आकलन है कि भारत में बीते 50 वर्षों में बांधों के कारण कम से कम दो करोड़ 16 लाख, दो करोड़ से चार करोड़ के बीच कुल मिलाकर पांच करोड़ लोग विस्थापित हुये।

हिमालयी राज्यों में विकास प्रेरित विस्थापन (Development induced displacement in Himalayan states)

हिमालयी राज्यों में विकास प्रेरित विस्थापन वैश्विक चिंता का विषय रहा है। हिमालयी राज्य उत्तराखंड में एशिया का सबसे बड़ा बांध टिहरी जलविद्युत परियोजना बना है, जो उत्तर भारत के बड़े हिस्से को बिजली, पेयजल और सिंचाई का पानी उपलब्ध कराता है। बांध के पानी के लिये बनाये गये रिजर्वायर नेनासिर्फ टिहरी नगर को डुबो दिया, बल्कि 120 से अधिक गांव पूर्ण या आंशिक रूप से डूब क्षेत्र में आ गये। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से करीब एक लाख लोगों को देहरादून और अन्य स्थानों पर विस्थापित किया गया, लेकिन ये लोग अब देहरादून में एयरपोर्ट के विस्तारीकरण और अन्य कारणों से फिर विस्थापन की जद में आ गये हैं।

1970 और 1980 में उत्तराखंड में नेशनल पार्कों के कारण भी बड़ी आबादी का विस्थापन हुआ। The Corbett national Park (1936)और Tiger Reserve (1973) के कारण रामनगर और काशीपुर से 500 से अधिक परिवार विस्थापित किये गये। इसी तरह Rajaji national park (1983) से 1500 गुज्जर परिवारों को हरिद्वार के आसपास पथरी, गैंडीखाता और अन्य स्थानों पर विस्थापित किया गया। इसके अलावा विकास के कारण पर्वतीय जिलों से लोगों का मैदानी जिलों की ओर विस्थापन भी लगातार बढ़ रहा है, लेकिन इस प्रक्रिया के संबंध में अभी विस्तार से शोध, दस्तावेजीकरण नहीं किया जा सका है।

7.6 विकास प्रेरित विस्थापन के परिणाम (Consequences of Development Induced Displacement)

विश्व बैंक से संबद्ध समाजशास्त्री मिशेल सर्निया ने दो दशक तक विकास प्रेरित विस्थापन का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि विस्थापित किये जाने वाले लोगों को उनकी संपत्तियों के बदले मुआवजा और स्वयं को नये स्थान पर बेहतर ढंग से स्थापित करने के लिये सहयोग करने की व्यवस्था तो है, लेकिन हर बार ऐसा नहीं हो पाता। उन्होंने विस्थापन के आठ सामाजिक-आर्थिक परिणामों को स्पष्ट किया है। इसके अलावा दो अन्य परिणाम terminski (2013) से लिये गये हैं।

विकास प्रेरित विस्थापन के परिणामों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं

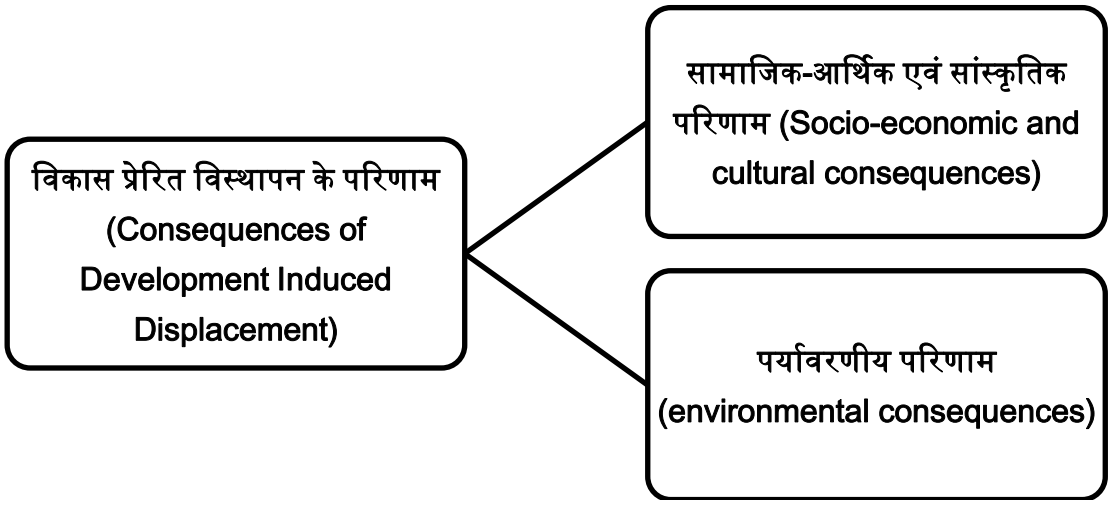

A. सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिणाम (Socio-economic and cultural consequences)

1. **भूमिहीनता(Landlessness)-** भूमि वह संसाधन है, जिस पर लोगों की आजीविका, आर्थिक गतिविधियां स्थापित होती हैं। विथापित होने वाले लोगों के पूंजीहीन हो जाने का यह बड़ा कारण है कि उन्हें अपनी पारंपरिक जमीन और इसके जरिये निर्मित पूंजी से अलग होना पड़ता है। उदाहरण के लिये- भारत में भूमि के बदले दिया जाने वाला नगद मुआवजा (यानी अधिग्रहीत भूमि के बदले भूमि नहीं देना) देने से कई जगह वनवासी और अन्य अशिक्षित, उपेक्षित समुदायों के लिये नुकसानदायक साबित हुआ।
2. **रोजगार का अभाव(Lack of employment)-** रोजगार का अभाव शहरी और ग्रामीण दोनों तरह के विस्थापन की बड़ी चुनौती है। लोग अपने मूल स्थान पर विभिन्न तरह के रोजगार, सेवाओं, कृषि आदि से जुड़े हुये होते हैं। लेकिन नयी जगह पर विस्थापित होते ही उनके लिये रोजगार के नये अवसर उत्पन्न करना बेहद मुश्किल हो जाता है। उदाहरण के लिये विंध्याचल सुपर थर्मल पावर प्रोजेक्ट के लिये कुल 2330 परिवार विस्थापित किये गये। लेकिन, विस्थापन के बाद इनमें से 1298 ही चिह्नित किये जा सके और इनमें भी 272 ही परिवारों को नौकरी या स्वरोजगार के जरिये पुनर्वासित किया जा सका।
3. **आवासहीनता(Homelessness)-** आवास का अभाव विस्थापित होने वाले कम ही लोगों के लिये समस्या बनता है, लेकिन आवासीय मानकों की कमी उनके लिये परेशानी का बड़ा सबब रहता है। सांस्कृतिक तौर पर देखें तो किसी परिवार का अपने वर्षों पुराने घर, किसी समूह का वर्षों पुराने सांस्कृतिक स्थान को छोड़कर आना उन्हें अकेलेपन की ओर धकेल देता है।
4. **उपेक्षा(Neglect)-** यह स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब संबंधित परिवार अपनी आर्थिक शक्ति गवां देते हैं और स्वयं के विकास के लिहाज से बेहद निचले पायदान पर जा पहुंचते हैं। नयी जगह पर जाने के बाद अधिकतर लोग बहुत तेजी से आर्थिक गतिविधियों में शामिल नहीं हो पाते। इसके चलते उनकी पूंजी कमाने की क्षमता निष्क्रिय होती जाती है और वे सामाजिक-मनोवैज्ञानिक रूप से उपेक्षा का शिकार होने लगते हैं। उनमें आत्मविश्वास का अभाव स्पष्ट होने लगता है, कई बार

उन्हें ऐसा भी महसूस होता है कि अपने मूल स्थान से एक बिल्कुल नयी, अनजानी जगह पर भेजकर उनके साथ नाइंसाफी की गयी है।

5. **खाद्य असुरक्षा(Food insecurity)-** बलात विस्थापन लोगों को कई बार पोषण की अस्थायी अथवा गंभीर जोखिम में डाल देता है। इसे इस तरह समझा जा सकता है कि मानव शरीर के लिये आवश्यक प्रोटीन कैलोरी उन्हें उपलब्ध नहीं हो पाती या अगर मिल भी जाये तो यह इतनी अधिक नहीं होती कि उनका सामान्य शारीरिक विकास संभव हो सके।
6. **रुग्णदर एवं मृत्युदर में वृद्धि(Increase in morbidity and mortality)-** आबादी का भारी पलायन स्वास्थ्य के स्तर में गिरावट का कारण बनता है। विस्थापन के कारण मानसिक-मनोवैज्ञानिक तनाव, चिंता, अवसाद जैसी बीमारियां आदि सामने आती हैं। इसके अलावा मलेरिया जैसे रोगों का भी खतरा रहता है। असुरक्षित पेयजल सप्लाई, खराब सीवेज व्यवस्था, डायरिया और अन्य संक्रामक रोगों का कारण बनते हैं। इसके चलते जनसंख्या की सबसे कमजोर कड़ियां यानी नवजात, बच्चे और बुजुर्ग सबसे अधिक प्रभावित होते हैं।
7. **सार्वजनिक संपत्ति तक पहुंच का अभाव(Lack of access to public property)-** निर्धन लोगों के लिये सार्वजनिक संपत्तियों जैसे वन, जलस्रोत आदि तक पहुंच मुश्किल हो जाती है। इसका उनकी आय और आजीविका के स्तर पर बेहद नकारात्मक असर पड़ता है।
8. **सामाजिक पृथक्कीकरण(Social segregation)-** बलात विस्थापन का बुनियादी गुण यह है कि यह मौजूदा सामाजिक ढांचे को पूरी तरह छिन्न-भिन्न कर देता है। यह कई स्तर पर देखा जा सकता है। लोगों को विस्थापित किये जाने पर पारंपरिक उत्पादन व्यवस्था खत्म हो जाती है। दशकों-सदियों से चली आ रही आवासीय व्यवस्था ढह जाती है। परिवार, आस-पड़ोस और सामाजिक परिवेश छितर-बितर हो जाता है। ग्राहक-उपभोक्ता के पुराने संबंध खत्म हो जाते हैं। औपचारिक और अनौपचारिक समन्वय, स्थानीय प्रबंधन, प्राचीन बाजार, स्थानिक महत्व के प्रतीक अदि सभी अचानक से समाप्त हो जाते हैं। नये स्थान पर विस्थापित लोगों के लिये अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान बना पाना बेहद जटिल हो जाता है। कुल मिलाकर इस पूरी प्रक्रिया का असर यह होता है कि सामाजिक ताना-बाना बिल्कुल छिन्न-भिन्न हो जाता है।
9. **सामुदायिक सुविधाओं तक पहुंच का अभाव (Lack of access to community facilities)-** इसमें स्वास्थ्य, शिक्षा समेत विभिन्न पहलुओं को शामिल किया जा सकता है। विस्थापन के चलते बच्चों की शिक्षा में या तो विलंब होने लगता है अथवा इस पर होने वाला खर्चा पहले से अधिक बढ़ जाता है। उदाहरण के लिये ओडिशा में सालंदी सिंचाई परियोजना के चलते विस्थापित हुये परिवारों के लिये बसायी गयी कॉलेनियों में बच्चों के लिये सरकार की ओर से करीब दस साल बाद भी स्कूल नहीं बनाये गये थे।
10. **मानवाधिकारों का उल्लंघन(Violations of human rights)-** किसी व्यक्ति को उसके मूल स्थान से विस्थापित करना और पर्याप्त मुआवजा दिये बिना उसका घर-जमीन ले लेना अपने आप में मानवाधिकार का उल्लंघन है। इनके अलावा उपरोक्त वर्णित बिंदु भी नागरिक और राजनैतिक अधिकारों के उल्लंघन का ही स्वरूप माने जा सकते हैं। कुल मिलाकर विस्थापन की प्रक्रिया मानवाधिकारों को खतरे में डालती है और कई बार यह पहले से अवस्थित आबादी समूह में विस्थापित समूह को शामिल करने के दौरान हिंसा का भी कारण बन जाती है।
11. **मानवाधिकारों के उल्लंघन(Violations of human rights)-** पर विस्तार से बात करें तो विकास प्रेरित विस्थापन निम्न तरह से उल्लंघन का कारण बनता है। इन बिंदुओं को बालकृष्णन राजगोपाल ने मानवाधिकार चुनौतियों के रूप में स्पष्ट किया है और इन्हें टर्मिनेस्की के प्रतिपादन से लिया गया है।

12. **स्वयं के विकास और आत्मनिर्णय का अधिकार (Right to self-development and self-determination)-** 1986 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने घोषणा की। इसके तहत कहा गया कि प्रत्येक और सभी व्यक्ति आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक विकास में सहभागिता, योगदान और लाभान्वित होने के अधिकारी हैं, जिसमें सभी मानवाधिकार और बुनियादी स्वतंत्रताएं पूरी तरह परिलक्षित होती हैं। घोषणा में लोगों के आत्मनिर्णय और प्राकृतिक संसाधनों से उपेक्षित नहीं रहने का भी अधिकार दिया गया है। हालांकि, अधिकतर मामलों में इन अधिकारों के हनन की बात सामने आती है।
13. **सहभागिता का अधिकार (Right to participation)-** सहभागिता का अधिकार International Bill of Human Rights, 1991 के तहत वर्णित है, जो Universal Declaration of Human Rights (UDHR), International Covenant on Civil and Political Rights (ICCPR)और International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights (ICESCR) का संयोजन है। विशेष रूप से वर्ष 1991 में International Labour Organization Convention regarding Indigenous and Tribal Peoples in Independent Countries (ILO Convention 169)के अनुच्छेद 7 में कहा गया है कि पारंपरिक और जनजातीय लोगों को राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय नियोजन, विकास प्रक्रियाओं को लागू करने, योजनाएं बनाने एवं मूल्यांकन में शामिल किया जाना चाहिये, क्योंकि इन सबका सीधा असर इन लोगों पर ही पड़ता है। हालांकि, अधिकतर मामलों में स्थानीय लोगों की सहमति नहीं लिये जाने और उन्हें नजरअंदाज किये जाने की बात सामने आती है।
14. **जीवन और आजीविका का अधिकार (Right to life and livelihood)-** जब सुरक्षाबल लोगों को बलात हटाते हैं या विकास परियोजनाओं के चलते नागरिकों को विस्थापित किया जाता है तो यह सीधे तौर पर जीवन के अधिकार के लिये चुनौती बन जाता है। जीवन का अधिकार और ICCPR (Article 6)में वर्णित है। इसी तरह घरों, पर्यावास के छिन जाने से आजीविका का अधिकार भी हनन होता है, क्योंकि लोगों से उनकी पारंपरिक खेती, शिकार, स्थानीय व्यापार आदि विस्थापन के कारण छिन जाते हैं। UDHR (Articles 17 and 23, respectively) और Article 6 ICESCR ने संपत्ति के अधिकार को स्पष्ट किया है। इतना ही नहीं, Article 11 ICESCR स्पष्ट करता है कि राज्य व संबंधित संस्थाओं को प्रतिज्ञा देनी होगी कि वे प्रत्येक व्यक्ति के स्वयं और परिवार के साथ जीवन यापन के अधिकार, भोजन, आवास, कपड़े और उसकी जीवन परिस्थितियों में निरंतर सुधार पर दृढ़ हैं। जीवन के अधिकार में पर्यावरण का अधिकार भी शामिल है, जो जीवन और सततता के लिये आवश्यक है। The Convention on Biological Diversity (CBD) 1992 के अनुसार राज्य मौजूदा और भावी पीढ़ियों के लाभ के लिये जैवविविधता के संरक्षण, सततता के लिये प्रतिबद्ध है।

B. पर्यावरणीय परिणाम (Environmental Consequences)

विकास प्रेरित विस्थापन बड़े पैमाने पर पर्यावरणीय प्रभावों का भी कारक बनता है। इसका असर खाली किये जाने वाले स्थान और विस्थापन की नयी जगह पर भी होता है। ये प्रभाव विकास परियोजनाओं के लिये लाभकारी हो सकते हैं, जैसे- वन्यजीवों और जैवविविधता के लिये विकास के अवसर उपलब्ध हो पाते हैं। लेकिन कई बार वन्यजीवों और उनके पर्यावास पर इसके असर भी नजर आते हैं। विभिन्न शोध, अध्ययनों से इसके निम्न परिणाम स्पष्ट होते हैं।

1. **भूउपयोग परिवर्तन(Land use change)-** विस्थापित की जाने वाली आबादी के लिये स्कूल, आवास, अस्पताल, परिवहन, संचार आदि बुनियादी सुविधाओं के विकास की आवश्यकता होती है, जिसके लिये जमीन जरूरी है। आमतौर पर नदियों के किनारे, कृषि भूमि और वन भूमि का इस्तेमाल इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है। इस दौरान भूउपयोग में किया जाने वाला परिवर्तन कई पर्यावरणीय परिणामों की वजह बनता है, जिनमें पर्यावास का नुकसान, जलाच्छादित क्षेत्रों में कमी आदि शामिल हैं। हाल के वर्षों में इस तरह के क्षेत्रों में नगरीय विकास में खासी तेजी दर्ज की गयी है।
2. **जैवविविधता पर प्रभाव (Impact on Biodiversity)-** प्राकृतिक क्षेत्रों के आसपास विस्थापन के चलते कई बार अव्यवस्थाएं उत्पन्न होती हैं, जिसका जैवविविधता पर गहरा असर होता है। कई जीव प्रजातियां इस दौरान नष्ट हो जाती हैं। विकास परियोजनाओं के कारण वन्यजीवों के कई कॉरिडोर समाप्त हो चुके हैं। इसके अलावा वन्यजीवों के लिये भोजन का संकट भी इससे बढ़ता जाता है। यह सब कई बार मानव-वन्यजीव संघर्ष का भी कारण बनता है।
3. **जल संसाधन पर प्रभाव (Impact on Water Resources)-** विस्थापन की नयी जगह पर जनसंख्या का दबाव बढ़ने से पानी की मांग खासी बढ़ जाती है, जिसके चलते जलस्रोतों पर बुरा असर पड़ता है और जलस्तर में गिरावट आने लगती है। इतना ही नहीं, कृषिकार्य में रसायनों के इस्तेमाल से भी जलस्रोतों के पानी की गुणवत्ता खराब होती है। आसपास के प्राकृतिक जलस्रोतों में प्रदूषण लगातार बढ़ता जाता है, जो जलीय जीवों के लिये भी घातक होता है।
4. **प्राकृतिक संसाधनों पर असर(Impact on Natural Resources)-** विस्थापन के नये स्थान पर प्राकृतिक संसाधनों पर भी दबाव बढ़ जाता है। यह संसाधनों के लुप्ति के कगार पर पहुंच जाने का कारण बन जाता है। इससे प्राकृतिक संसाधन ना सिर्फ खत्म होने लगते हैं, बल्कि उनकी गुणवत्ता पर भी गहरा नकारात्मक असर पड़ता है।

7.7 आंतरिक विस्थापन के निर्देशक सिद्धांत (Guiding Principles on Internal Displacement)

मानवीय विस्थापन से जुड़े परिणामों, समस्याओं, मसलों के निस्तारण के लिये मानक सिद्धांत निर्धारित किये गये हैं। United Nations Commission on Human Rights (UNCHR) ने 1998 में आंतरिक विस्थापन प्रक्रिया को वैश्विक विषय मानते हुये निर्देशक सिद्धांत दिये। ये सिद्धांत आंतरिक रूप से विस्थापित होने वाले लोगों के मानवाधिकार, मानवीय नियमों, संरक्षण, पुनर्वास जैसे मसलों का ध्यान रखते हैं। इन सिद्धांतों में अधिकारों का पूरा ख्याल रखा गया है और वे लोगों की बलात विस्थापन से संरक्षा में सहायक होते हैं। ये सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार नियमों को बढ़ावा देते हैं। ये सिद्धांत निम्न को निर्देशित करते हैं-

1. महासचिव के प्रतिनिधि को आंतरिक विस्थापित लोगों के संबंध में शासनादेश देने के बाबत राज्यों को, जब वे आंतरिक विस्थापन के घटनाक्रम का सामना कर रहे होते हैं।
2. अन्य सभी अधिकरणों, समूहों, संस्थाओं और व्यक्तियों को, जो आंतरिक विस्थापित होने वाले लोगों से संबद्ध हों।
3. अंतर्सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों का जब वे आंतरिक विस्थापन प्रक्रिया में शामिल हों।
4. इन सिद्धांतों को और बेहतर तरीके से समझने के लिये **Agenda item 9 b Report of the Representative of the Secretary-General, Mr. Francis M. Deng, submitted pursuant to Commission resolution 1997/39. Addendum: Guiding Principles on Internal Displacement** (UNCHR 1998) को देखा जाना चहिये।

7.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. स्वैच्छिक विस्थापन तब होता है जब लोग अपनी.....के अनुसार स्थान बदलते हैं।(इच्छानुसार **या** दबावों)
2. बलात विस्थापन तब होता है जब किसी को उनकी इच्छा के विपरीत ..... जाता है। (हटाया **या** बसाया)
3. .....विकास परियोजनाओं के कारण उत्पन्न स्थितियों के चलते विस्थापन को विस्थापन कहते हैं। (प्रेरित **या** विपरीत)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. स्वैच्छिक विस्थापन में लोग अपनी इच्छा से स्थान बदलते हैं।
2. बलात विस्थापन में लोग अपने घर से स्वैच्छिक रूप से हट जाते हैं।

7.9 सारांश (Summary)

इस अध्याय में हमने पृथ्वी पर विकास के कारण होने वाले विस्थापन के विभिन्न पहलुओं को समझा। सबसे पहले, विस्थापन की प्रक्रिया को तीन प्रमुख श्रेणियों में बांटा गया है स्वैच्छिक, बलात और प्रेरित विस्थापन। स्वैच्छिक विस्थापन वह होता है जब लोग अपनी इच्छानुसार स्थान बदलते हैं, जबकि बलात विस्थापन तब होता है जब किसी को उनकी इच्छा के विपरीत हटाया जाता है। प्रेरित विस्थापन विकास परियोजनाओं के कारण उत्पन्न स्थितियों के चलते होता है, जैसे कि बड़े-बड़े बांधों और शहरीकरण के कारण।

हमने देखा कि विस्थापन के कई कारण हो सकते हैं, जिनमें हथियारबंद संघर्ष, प्राकृतिक आपदाएं, आर्थिक विकास और वन्यजीव संरक्षण शामिल हैं। इन कारणों की वजह से लाखों लोग अपने घर-बार छोड़ने पर मजबूर हो जाते हैं। उदाहरण के तौर पर, भारत और अन्य देशों में विकास परियोजनाओं के चलते बड़े पैमाने पर विस्थापन हुआ है।

विकास प्रेरित विस्थापन के सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय परिणाम भी गंभीर हैं। विस्थापित लोगों को भूमि, रोजगार, आवास और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाओं की कमी का सामना करना पड़ता है, जिससे उनका जीवन स्तर प्रभावित होता है। इसके अलावा, विस्थापन से सामाजिक ढांचे और सांस्कृतिक पहचान को भी नुकसान पहुँचता है।

अध्याय के अंत में, हमने विकास प्रेरित विस्थापन के मानवाधिकारों पर पड़ने वाले प्रभावों को भी जाना, जिसमें अधिकारों की अनदेखी और उपेक्षा शामिल हैं। कुल मिलाकर, यह अध्याय विस्थापन की जटिलताओं और इसके दूरगामी प्रभावों को समझने में मदद करता है।

7.10 शब्दावली (Glossary)

- **प्राकृतिक आपदाएं (Natural Disasters) :** प्राकृतिक आपदाएं प्रकृति में होने वाली विनाशकारी घटनाएं हैं जो एक समुदाय की सुरक्षा और उनके कार्यों को भी खतरे में डालने का काम करती है। प्राकर्तिक आपदाएं सार्वजनिक और निजी दोनों प्रकार की संपत्तियों को काफी भारी नुकसान पहुँचती हैं।
- **प्रेरित विस्थापन (Induced Displacement) :** प्रेरित विस्थापन उस स्थिति को दर्शाता है जहां किसी बाहरी प्रभाव, जैसे प्राकृतिक आपदा, सामाजिक तनाव या नीति परिवर्तन के कारण लोगों को अपने मौजूदा निवास स्थान से स्थानांतरित होना पड़ता है। यह विस्थापन किसी बाहरी कारक द्वारा प्रेरित होता है, ना कि स्वेच्छा से।
- **जैव-विविधता (Biodiversity) :** जैव-विविधता से तात्पर्य पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के जीवन रूपों की विविधता से है। इसमें विभिन्न प्रजातियों, उनके आनुवंशिक विविधता, और उनके पारिस्थितिक

तंत्रों की विविधता शामिल होती है। जैवविविधता पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता और विकास के लिए महत्वपूर्ण है।

- **आंतरिक विस्थापन (Internal Displacement) :** आंतरिक विस्थापन वह स्थिति है जब लोग अपने देश के भीतर ही किसी संकट, प्राकृतिक आपदा, या अन्य कारणों के चलते अपने निवास स्थान को छोड़कर किसी अन्य स्थान पर चले जाते हैं। इसमें वे अंतरराष्ट्रीय सीमा पार नहीं करते, बल्कि अपने ही देश के भीतर कहीं और स्थानांतरित होते हैं।
- **बलात विस्थापन (Forced Displacement) :** बलात विस्थापन वह स्थिति है जिसमें लोग अपने घर या क्षेत्र को किसी बाहरी दबाव, जैसे युद्ध, संघर्ष, या अत्याचार, के कारण स्वेच्छा से नहीं बल्कि मजबूरी में छोड़ते हैं। इसमें विस्थापन का कारण आमतौर पर उत्पीड़न या हिंसा होता है।

7. 11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1.इच्छानुसार 2. हटाया 3.प्रेरित

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1.सत्य 2.असत्य

7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- Agnihotri A. (1994) The Orissa Resettlement and Rehabilitation of Project-Affected Persons Policy: An analysis of its robustness with reference to the Impoverishment Risks Model, In A.B. Ota and A. Agnihotri (eds.), Involuntary Resettlement in Dam Projects. New Delhi: Prachi Prakashan.
- Asian Development Bank (2000). Special Evaluation Study on the Policy Impact of Involuntary Resettlement, Manila, Philippines.
- Cernea M. (1988). Involuntary Resettlement in Development Projects: Policy Guidelines in World Bank-Financed Projects.
- CerneaM. (1999). Why Economic Analysis is Essential to Resettlement: A Sociologist's View. In Michael Cernea (ed) The Economics of Involuntary Resettlement: Questions and Challenges (Washington, DC: World Bank).
- Cernea M., McDowell C. (2000). Risks and reconstruction: experiences of resettlers and refugees. Washington (DC): World Bank.
- Cernea M. (2000). Risks, safeguards and reconstruction: a model for population displacement and resettlement. Economics and Political Weekly. 35:3659–3678.
- CerneaM. (2006). Re-examining ‘displacement’: a redefinition of concepts in development and conservation policies. Social Change. 36:8–35.
- Cernea M, Schmidt K. (2006). Poverty risks and national parks: policy issues in conservation and resettlement. World Development. 34:1808–1830.

- CBD (2004). Akwe kon – Voluntary guidelines for the conduct of cultural, environmental and social impact assessment regarding developments proposed to take place on, or which are likely to impact on, sacred sites and on lands and waters traditionally occupied or used by Indigenous and local communities. Montreal: Secretariat of the Convention on Biological Diversity.
- Fernandes W. (1991). Power and Powerless: Development Projects and Displacement of Tribals, Social Action, Vol. 41, 242-68.
- Frank V. (2017). Project-induced displacement and resettlement: from impoverishment risks to an opportunity for development?, Impact Assessment and Project Appraisal, 35:1, 3-24.
- Government of India (2007). The National Rehabilitation and Resettlement Policy, Ministry of Rural Development, New Delhi: Government of India.
- Government of India (2013). Right to Fair Compensation and Transparency in Land Acquisition, Rehabilitation and Resettlement Act, 2013. The Gazette of India. 26 September 2013.
- Human Development Report (1990). Defining & Measuring Human Development, United Nation Development Programme, Oxford University Press, New York.
- International Labor Organization Convention Concerning Indigenous and Tribal Peoples in Independent Countries, 1994.
- IOM (2018). World Migration Report 2018. International Organization for Migration. ISBN 978-92-9068-742-9.
- Iyer R. (2007). Towards a Just Displacement and Rehabilitation Policy, Economic and Political Weekly, Vol.42, No.30.
- Siddiqui K. (2012). Development and Displacement in India: Reforming the Economy towards Sustainability, 25th International Congress on Condition Monitoring and Diagnostic Engineering, Journal of Physics: Conference Series. 364 012108.
- Kothari A. (2009). Displacement & Relocation of protected areas: A synthesis & analysis of case studies. Economic & Political Weekly, Vol XLIV(49): 37-47.
- Mahapatra L.K. (1992). Development for Whom? Depriving the Disposed Tribals, In W. Fernandes (Eds.): National Development and Deprivation. Indian Social Institute, New Delhi.

- Negi N.S and Ganguly S. (2010). Development Project vs. Internally Displaced Population in India: A Literature Based Appraisal, Bad Salzuflen, Germany.
- ParasuramanS. (1995). Development Projects and Displacement: Impact on Families, The Indian Journal of Social Work, Vol.56, p.195-210.
- Rajagopal B. (2002). The Violence of Development," Washington Post, August 9, 2002.
- Randell H. (2016). The short-term impacts of development-induced displacement on wealth and subjective well-being in the Brazilian Amazon. World Development, November 2016, 87: 385–400.
- Robinson C.W. (2003).Risks and Rights: The Causes, Consequences, and Challenges of Development-Induced Displacement. Occasional Paper. The Brookings Institution-SAIS Project on Internal Displacement, May 2003.
- Sharma R.N. and Singh S.R. (2009). Displacement in Singrauli Region: Entitlements and Rehabilitation, Economic and Political Weekly, 19th December, Mumbai.
- Singh S. (1997). Taming the Waters, New Delhi: Oxford University Press.
- Stanley J. Development-induced displacement and resettlement.
- Taneja B. and Thakkar H. (2000). Large Dams and Displacement in India. Cape Town, South Africa: Submission no. SOC166 to the World Commission on Dams.
- Terminski B. (2013). Development-Induced Displacement and Resettlement: Theoretical Frameworks and Current Challenges. Geneva, May 2013.
- United Nations Commission on Human Rights. Freedom of Movement and Population Transfer, UN Doc: E/CN.4/Sub.2/1997/29, August 28, 1997.
- United Nations Commission on Human Rights. Sub-Commission on Prevention of Discrimination and Protection of Minorities. Expert Seminar on the Practice of Forced Evictions (Geneva, June 11-13, 1997), UN Doc: E/CN.4/Sub.2/1997/7, July 2, 1997.
- United Nations, Department of Economic and Social Affairs, Population Division (2009). World Population Prospects: The 2008 Revision, Highlights, Working Paper No. ESA/P/WP.210

- UNCHR (1998). Report of the Representative of the Secretary-General, Mr. Francis M. Deng, submitted pursuant to Commission resolution 1997/39. Addendum on: Guiding Principles on Internal Displacement, Introductory note to the Guiding Principles.
- World Commission on Environment and Development (1998). Our Common Future, Delhi: Oxford University Press.
- World Commission on Dams (2000), Dams and Development: A new framework for decision-making. London: Earthscan.

7.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- अग्रवाल, एस. एन. (1972), ***भारत की जनसंख्या समस्या***, टाटा मैक्ग्रा हिल कम्पनी, मुम्बई।
- दत्त, रूद्र एवं के. पी. एम. सुन्दरम (2010), ***भारतीय अर्थव्यवस्था***, एस. चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली।
- सिन्हा, बी. सी. एंव पुष्पा सिन्हा (2011), ***जनांकिकी के सिद्धान्त***, मयूर पेपर बैक्स, नई दिल्ली।
- चौबे, पी. के. (2000), ***भारत में जनसंख्या नीति***, कनिष्ट प्रकाशन, नई दिल्ली।
- मिश्र, प्रकाश (2012), ***जनांकिकी***, साहित्य भवन पब्लिकेशन, दिल्ली।

7.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. विकास प्रेरित विस्थापन के सामाजिक विश्लेषण करें। ये परिणाम विस्थापित आर्थिक परिणामों का- व्यक्तियों और उनके समुदायों को आर्थिक स्थिरता, सामाजिक एकता, और सांस्कृतिक पहचान के संदर्भ में कैसे प्रभावित करते हैं?
2. प्राकृतिक आपदाओं के विस्थापन प्रतिरूप पर प्रभाव का मूल्यांकन करें। विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक आपदाएं विस्थापन में कैसे योगदान करती हैं, और विस्थापित जनसंख्या पर दीर्घकालिक प्रभाव क्या होते हैं?
3. विकास प्रेरित विस्थापन के नैतिक विचार और मानवाधिकार निहितार्थ पर चर्चा करें। कैसे सरकारें और संगठन सुनिश्चित कर सकते हैं कि विकास परियोजनाएं प्रभावित समुदायों के अधिकारों का उल्लंघन ना करें?

इकाई 8 - विकास का प्रतिष्ठित सिद्धान्त
(Classical Theory of Development)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

8.2 उद्देश्य (Objectives)

8.3 एडम स्मिथ का विकास प्रारुप(Adam Smith's Growth Model)

8.3.1 मुक्त साहस एवं प्रतिस्पर्धा (Free Adventure and Competition)

8.3.2 श्रम विभाजन (Division of Labour)

8.3.3 विकास प्रक्रिया (Development Process)

8.3.4 विकास का क्रम (Order of Development)

8.3.5 स्थिर अवस्था (Steady State)

8.4 रिकार्डो का विकास प्रारुप (Development Model of Ricardo)

8.4.1 विकास प्रारुप की मान्यताएं (Assumptions of The Development Model)

8.4.2 विकास के दूत (Messenger of Development)

8.4.3 पूँजी संचय की प्रकिया (Process of Capital Accumulation)

8.4.4 पूँजी संचय के अन्य साधन (Other Means of Capital Accumulation)

8.4.5 स्थिर अवस्था (Steady State)

8.5 विकास प्रारुप की गणितीय व्याख्या (Mathematical Interpretation of Growth Pattern)

8.6 प्रतिष्ठित विकास प्रारूप की आलोचनाएं (Criticisms of the Classical Development Model)

8.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

8.8 सारांश (Summary)

8.9 शब्दावली (Glossary)

8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to practice questions)

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

8.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

8.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

विकास के प्रारुप से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि विकास क्या है? विकास का मापन की विधियाँ कौन-कौन सी है। अल्पविकसित देशों की विशेषताएँ और विकास के निर्धारक घटक क्या-क्या है।

इस अध्याय में, छात्रों को विकास के प्रतिष्ठित सिद्धांतों के मूलभूत पहलुओं को समझने का अवसर मिलता है। इसमें एडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो जैसे प्रमुख अर्थशास्त्रियों के विचारों की विस्तृत विवेचना की गई है, जो आर्थिक विकास के सिद्धांतों की नींव रखती हैं।

एडम स्मिथ का दृष्टिकोण- अध्याय की शुरुआत एडम स्मिथ के विचारों से होती है, जिनके अनुसार आर्थिक विकास के लिए मुक्त प्रतिस्पर्धा और मुक्त साहस आवश्यक हैं। स्मिथ का मानना था कि न्यायपूर्ण वैधानिक पद्धति और अदृश्य हाथों का सिद्धांत एक स्वायत्त और लाभकारी आर्थिक व्यवस्था स्थापित कर सकता है। उन्होंने श्रम विभाजन के महत्व को भी बताया, जो उत्पादकता में वृद्धि और समय की बचत में योगदान करता है, हालांकि इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं। इसके अतिरिक्त, उन्होंने आर्थिक विकास की प्रक्रिया का वर्णन किया, जिसमें कृषि, निर्माण, और वाणिज्य के क्रम में विकास की अवधारणा को स्पष्ट किया।

डेविड रिकार्डो का दृष्टिकोण: रिकार्डो ने अपनी पुस्तक 'The Principles of Political Economy and Taxation' में आर्थिक विकास की प्रक्रिया को विभिन्न मान्यताओं पर आधारित बताया। उन्होंने पूँजी संचय, लाभ की दर, और मजदूरी के बीच के संबंधों का विश्लेषण किया। उनके विचार में, पूँजी संचय लाभ से होता है, और यह श्रम की मांग और मजदूरी पर निर्भर करता है। रिकार्डो ने भी स्थिर अवस्था की अवधारणा को प्रस्तुत किया, जिसमें लाभ शून्य हो जाते हैं और आर्थिक विकास रुक जाता है।
गणितीय व्याख्या और आलोचनाएँ: इस अध्याय में प्रतिष्ठित सिद्धांतों की गणितीय व्याख्या भी की गई है, जिसमें उत्पादन फलन, पूँजी संचय, और मजदूरी कोष जैसे तत्वों की समीकरणों के माध्यम से विश्लेषण किया गया है। अंत में, प्रतिष्ठित सिद्धांतों की आलोचनाएँ भी प्रस्तुत की गई हैं, जो इनके अवास्तविक मान्यताओं और आधुनिक आर्थिक परिदृश्य के बदलते दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए हैं।

समग्रत:, यह अध्याय छात्रों को आर्थिक विकास के प्रतिष्ठित सिद्धांतों की गहराई से समझने में मदद करता है, साथ ही उनके वास्तविकता पर आधारित आलोचनाओं की भी जानकारी प्रदान करता है। यह उन्हें यह सिखाता है कि कैसे ऐतिहासिक दृष्टिकोणों और आधुनिक विचारधाराओं का समेकित विश्लेषण अर्थशास्त्र के अध्ययन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

8.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ बता सकेंगे कि प्रतिष्ठित विकास प्रारूप कितने प्रकार का होता है।
- ✓ एडम स्मिथ का विकास प्रारुप को समझ सकेंगे।
- ✓ रिकार्डो के विकास प्रारुप को जान सकेगें।
- ✓ प्रतिष्ठित विकास प्रारूप का गणितीय विवेचन कर सकेंगे।

8.3 एडम स्मिथ का विकास प्रारुप (Adam Smith's Development Model)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा अर्थव्यवस्था का अत्यन्त सरल रूप में क्रमबद्ध ढंग से विवेचन किया गया है। उनका प्रमुख ध्येय आर्थिक नीति निर्धार के लिए ऐसे मार्ग का निर्धारण करना जिनसे राष्ट्रों की सम्पत्ति को बढ़ाया जा सके।

प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के अर्थशास्त्री एडम स्मिथ डेविड रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत आर्थिक विकास से सम्बन्धित विचारों में बहुत सीमा तक समानता पाई जाती है। इनके सम्मिलित विचारों को ही आर्थिक विकास का प्रतिष्ठित सिद्धान्त कहा जाता है। आर्थिक विकास के ये प्रतिष्ठित सिद्धान्त को विकास का प्रारम्भिक सिद्धान्त भी कह सकते है।

एडम स्मिथ प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के अगुवा माने जाते है। उनका 1776 में प्रकाशित होने वाला महान ग्रन्थ **'An Enquiry in to the nature and Causes of wealth of nations'** स्वयं में ही आर्थिक विकास के महत्व का एक स्पष्टीकरण है। एडम स्मिथ के प्रगति के सिद्धान्त की प्रमुख विचारधाराएँ निम्न प्रकार वर्गीकृत की जा सकती है-

8.3.1 मुक्त साहस एवं प्रतिस्पर्धा (Free Will and Competition)

एडम स्मिथ के विचार में आर्थिक विकास के लिए मुक्त साहस एवं मुक्त प्रतिस्पर्धा अत्यन्त आवश्यक है। इनके द्वारा (प्रकृति) निर्धारित न्याय पूर्ण वैधानिक पद्धति ही विकास करने का सर्वोच्च साधन है। न्यायपूर्ण वैधानिक पद्धति का अर्थ उस व्यवस्था से लिया गया है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के अपने हितों का अन्य सदस्यों के दबाव से मुक्त रहकर अनुसरण करने के अधिकार को संरक्षण प्राप्त होता है। अर्थव्यवस्था को अदृश्य हाथों द्वारा यदि संचालित होने के लिए मुक्त छोड़ दिया जाय तो समन्वित एवं लाभकारी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना हो सकती है। अदृश्य हाथों से स्मिथ का तात्पर्य मुक्त प्रतिस्पर्धा में उदय हुई शक्तियों से है जो अर्थव्यवस्था में आवश्यक समायोजन स्थापित करती रहती है।

8.3.2. श्रम विभाजन (Division of Labour)

श्रम विभाजन द्वारा श्रम की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण द्वारा श्रमिकों की निपुणता में वृद्धि होती है। वस्तुओं के उत्पादन में लगने वाले समय में कमी होती है एवं अच्छी मशीनों एवं प्रसाधनों का अविष्कार होता है। उत्पादकता में वृद्धि होती है। परन्तु श्रम-विभाजन द्वारा उत्पादकता बढ़ाने की प्रक्रिया की तीन परिसीमाएँ है-

1. श्रम विभाजन का प्रारम्भ मानव की एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु प्राप्त करने की इच्छा पर होती है।
2. श्रम विभाजन के प्रारम्भ अथवा विस्तार के लिए पूँजी सचयन होना आवश्यक है। पूँजी संचयन के लिए बचत होना और बचत अथवा पूँजी मितव्ययता से बढ़ती है एवं फिजूलखर्ची एवं दुराचरण से घटती है।
3. तीसरी सीमा बाजार का आकार होती है। यदि बाजार संकुचित है और उत्पादको को अपने उत्पादन के अतिरेक (Surplus) के विनिमय के अवसर सीमित हो तो व्यक्ति एक रोजगार में रहकर आवश्यकता से अधिक उत्पादन नही करेगा। इस प्रकार संकुचित बाजार में श्रम विभाजन के लाभ प्राप्त नहीं होगें।

8.3.3 विकास प्रक्रिया (Development Process)

पूँजी संचयन की व्यवस्था होने से श्रम विभाजन का उदय होता है जिससे उत्पादकता के स्तर में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरुप राष्ट्रीय आय एवं जनसंख्या में वृद्धि होती है। आर्थिक विकास की यह प्रक्रिया धीरे, चलती है और अर्थव्यवस्था के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में फैल जाती है एक क्षेत्र का विकास दूसरे क्षेत्रों के विकास को प्रभावित करता है और अन्तत: अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्र विकसित हो जाते है।

1. **मजदूरी का निर्धारण-** मजदूरी का निर्धारण श्रमिको एवं पूँजी पतियों की सौदा करने की क्षमता पर निर्भर करता है।
2. **लाभ निर्धारण-** विकास की प्रक्रिया में लाभ एवं मजदूरी उस समय तक घटते बढ़ते रहते है जब तक कि जनसंख्या में आवश्यकतानुसार पर्याप्त वृद्धि होती है। अन्ततः अर्थव्यवस्था स्थिर अवस्था में पहुँच जाती है जहाँ पूँजी संचयन एवं आर्थिक विकास की प्रक्रिया दोनों ही रूक जाते है।
3. **लगान का निर्धारण -** भूमि पर एकाधिकार का प्रतिफल लगान होता है।
4. **विकास के दूत -** एडम स्मिथ के अनुसार कृषक उत्पादन एवं व्यापारी आर्थिक उन्नति एवं विकास के दूत है।

8.3.4 विकास का क्रम (order of development)

विकास की प्रक्रिया में सर्वप्रथम कृषि का विकास होता है। कृषि के बाद निर्माण प्रक्रिया का अन्त में वाणिज्य का विकास होता है। यद्यपि स्मिथ ने अपने विचार आर्थिक विकास के सिद्धान्त के रुप में प्रकट नही किये परन्तु उनके विचार का प्रभाव बाद में आर्थिक विकास के सिद्धान्त पर पड़ता है। पूँजी संचयन का महत्व, स्थिर अर्थव्यवस्था का विचार एवं विकास प्रक्रिया में सहकारी हस्तक्षेप के तिरस्कार को बाद के प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने भी मान्यता प्रदान की है।

8.3.5 स्थिर अवस्था (steady state)

यह प्रगतिशील अवस्था सदैव नही चलती रहती है। प्राकृतिक साधनों की कमी विकास को रोकती है। जब अर्थव्यवस्था अपने साधनों का पूर्ण विकास कर लेती है ऐसी समृद्ध अवस्था में श्रमिकों में रोजगार के लिए प्रतिस्पर्धा मजदूरी कम करके निर्वाह स्तर पर ला देती है और व्यापारियों में प्रतिस्पर्धा लाभों को कम कर देती है। जब एक बार लाभ घटते है तो घटते ही चले जाते है **जिससे निवेश - निवेश भी घट जाता है-पूँजी संचय भी रूक जाता है- जनसंख्या स्थिर हो जाती है- लाभ न्यूनतम होने लगते - मजदूरी जीवन निर्वाह स्तर पर पहुँच जाती है- प्रति व्यक्ति आय स्थिर हो जाती है और अर्थव्यवस्था गतिहीनता की अवस्था में पहुँच जाती है। जिसे एडम स्मिथ ने स्थिर अवस्था का नाम दिया।**

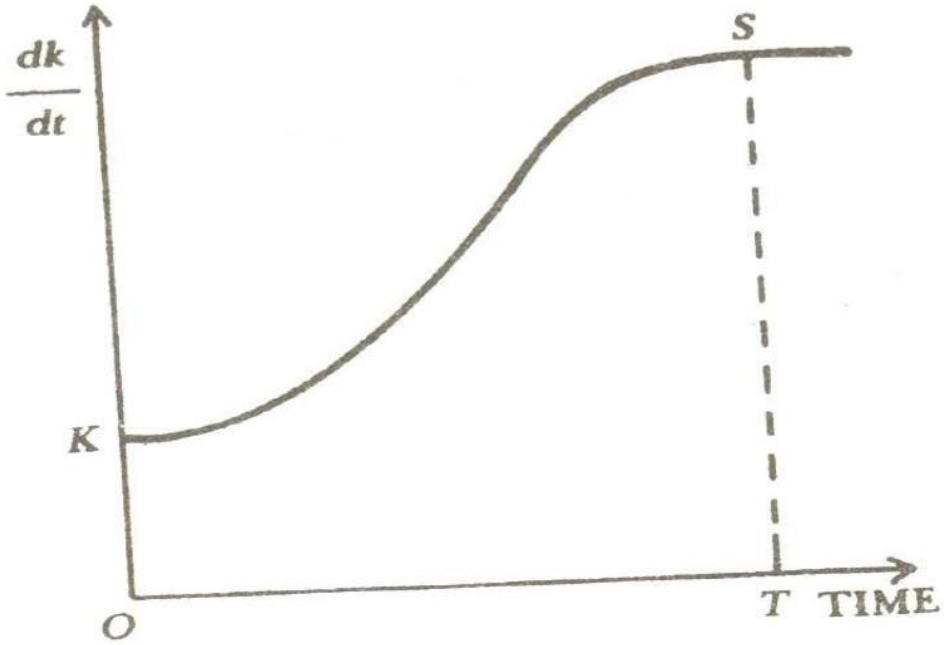

चित्र 8.1

चित्र से स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था T समय में K से S तक बढ़ती है T के बाद अर्थव्यवस्था S से सम्बद्ध स्थिर अवस्था को प्राप्त होती है जहाँ आगे वृद्धि नहीं होती मजदूरी जितना बढ़ती है कि लाभ शून्य हो जाता है। पूँजी संचय रूक जाता है एवं जनसंख्या अपरिवर्तित रहती है। एडम स्मिथ ने स्थिर अवस्था को को दूर करने के उपाय नहीं बतायें। एडम स्मिथ का स्थिर अवस्था का विचार अल्प विकास से बिल्कुल ही अलग है। स्मिथ के अनुसार, स्थिर अवस्था में अर्थव्यवस्था समृद्धि के उच्चतम बिन्दु पर होती है, जहाँ सभी संसाधनों का पर्यावरण अनुकूल समुचित विदोहन किया जाता है, जबकि अल्प विकास अर्थव्यवस्था में स्थिर अवस्था में अर्थव्यवस्था समृद्धि के उच्चतम बिन्दु से पूर्व में ही गतिरोध की अवस्था में पहुंच जाती है।

8.4 रिकार्डों का विकास प्रारुप (Development Model Of Ricardo)

डेविड रिकार्डों के विकास सम्बन्धी विचार उनकी पुस्तक **'The Principles of political Economy and Taxation'** (1917) में जगह पर अव्यवस्थित रुप में व्यक्त किये गये। इनका विश्लेषण एक चक्करदार मार्ग है। यह सीमान्त और अतिरेक नियमों पर आधारित है। शुम्पीटर ने कहा रिकार्डों ने कोई सिद्धान्त नही प्रतिपादित किया केवल स्मिथ द्वारा छोड़ी गयी कड़ियों को अपेक्षाकृत एक अधिक कठोर रूप से जोड़ने का प्रयास अवश्य किया। इसी तरह का विचार **मायर एवं वाल्डविन** आदि का था।

8.4.1 विकास प्रारुप की मान्यताएं (Assumptions of The Development Model)

1.अनाज के उत्पादन में समस्त भूमि का प्रयोग होता है और कृषि में कार्यशील शक्तियाँ उद्योग में वितरण निर्धारित करने का काम करती है।
2. भूमि पर घटाते प्रतिफल का नियम क्रियाशील है।
3. भूमि की पूर्ति स्थिर है।
4. अनाज की माँग पूर्णतया अलोचशील है।
5. पूँजी और श्रम परिवर्तनशील आगत (Inputs) है।
6. समस्त पूँजी समरूप है।
7. पूँजी में केवल चल पूँजी ही शामिल है।
8. तकनीकी ज्ञान की स्थिति दी हुई है।
9. सभी श्रमिकों को निर्वाह मजदूरी दी हुई है।
10. श्रम की पूर्ति कीमत स्तर पर दी हुई है।
11. श्रम की माँग पूँजी संचय पर निर्भर करती है। श्रम की माँग और श्रम की पूर्ति कीमत दोनों ही श्रम की सीमान्त उत्पादकता से स्वतन्त्र होती है।
12. पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।
13.पूँजी संचय लाभ से उत्पन्न होती है।

8.4.2 विकास के दूत (Messenger of Development)

इन मान्यताओं के आधार पर रिकार्डों ने कहा कि अर्थव्यस्था का विकास तीन वर्गो के परस्पर सम्बन्धों पर आधारित हैं- ***पहला*** भूमिपति ***दूसरा*** पूँजीपति एवं ***तीसरा*** श्रमिक।
जिनमें भूमि की समस्त उपज बाँटी जाती है। इन तीन वर्गों में कुल राष्ट्रीय उत्पादन क्रमशः लगान, लाभ और मजदूरी के रूप में बाँट दी जाती है।

8.4.3 पूँजी संचय की प्रकिया (Process of Capital Accumulation)

रिकार्डों पूँजी संचय लाभ से होता है यह जितना बढेगा पूँजी निर्माण के काम आता है। पूँजी संचय दो घटकों पर निर्भर करेगा। प्रथम बचत करने की क्षमता और द्वितीय बचत करने की इच्छा जैसा कि रिकार्डों ने कहा दो रोटियों में से मैं एक बचा सकता हूँ और चार में से तीन यह बचत (अतिरेक) भूमिपति एवं पूँजीपति ही करते है। जो लाभ की दर पर निर्भर करता है।

1. **लाभ दर-** ***लाभ की दर = लाभ/मजदूरी*** अर्थात् जब तक लाभ की दर धनात्मक रहेगी, पूँजी संचय होता रहेगा। वास्तव में लाभ मजदूरी पर निर्भर करता है, मजदूरी अनाज की कीमत पर अनाज की कीमत सीमान्त भूमि की उर्वरकता पर। इस प्रकार लाभ एवं मजदूरी में विपरीत सम्बन्ध है। कृषि में सुधार से उर्वरकता बढ़ती है इससे उपज बढेगी कीमत कम होगी निर्वाह मजदूरी कम होगी परन्तु लाभ बढेगा पूँजी संचय अधिक होगा इससे श्रम की माँग बढ़ेगी मजदूरी अधिक होगी लाभ

घटेगा।

2. **मजदूरी में वृद्धि - रिकार्डों** यह बातते है कि पूँजी संचय विभिन्न परिस्थितियों में लाभ को ही कम करेगा। मजदूरी बढ़ेगी तो मजदूर निर्वाह की वस्तुओं की माँग बढ़ेगी जिससे मूल्य बढ़ेगा। मजदूर उपभोग की वस्तुएँ प्रमुख रुप से कृषि वस्तुएँ होती है। ज्यों, जनसंख्या बढ़ेगी उपज की माँग बढ़ेगी उपजाऊ काश्त में वृद्धि होगी मजदूरी की माँग बढ़ेगी मजदूरी बढ़ेगी अनाज की कीमत बढ़ेगी। लाभ कम हो जायेगा। लगान बढ़ जायेगा जो अनाज कीमत में हुई वृद्धि खपा लेगा। ये दोनों विराधी प्रवृत्तियाँ अंत में पूँजी संचय कम कर देती है।

3. **अन्य उद्योगों में भी लाभों की कमी - रिकार्डों** के अनुसार ***"किसानों के लाभ अन्य सब व्यापारियों के लाभों को नियमित करते है। क्योंकि हर क्षेत्र के लिए आगत (Input) कृषि क्षेत्र से आता है।"***

8.4.4 पूँजी संचय के अन्य साधन (Other Means of Capital Accumulation)

रिकार्डों के अनुसार ***"आर्थिक विकास उत्पादन एवं उपभोग के अन्तर पर निर्भर करता है इसलिए वह उत्पादन के बढ़ाने और अनुत्पादक उपभोग में कमी करने पर जोर देता है।"***

1. **कर(tax)-** कर सरकार के हाथ में पूँजी संचय का साधन है **रिकार्डों** के अनुसार करों को केवल दिखावटी उपभोग को कम करने के लिए ही लगाना आवश्यक होता है अन्यथा इनसे निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2. **बचत(saving)-** बचत पूँजी संचय के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। यह लाभ की दरों को बढ़ाकर, वस्तुओं के मूल्य कम करने व्यय एवं उत्पादन से की जाती है।

3. **मुक्त व्यापार(free trade)-** रिकार्डों मुक्त व्यापार के पक्ष में है। देश की आर्थिक उन्नति के लिए मुक्त व्यापार महत्वपूर्ण तत्व है।

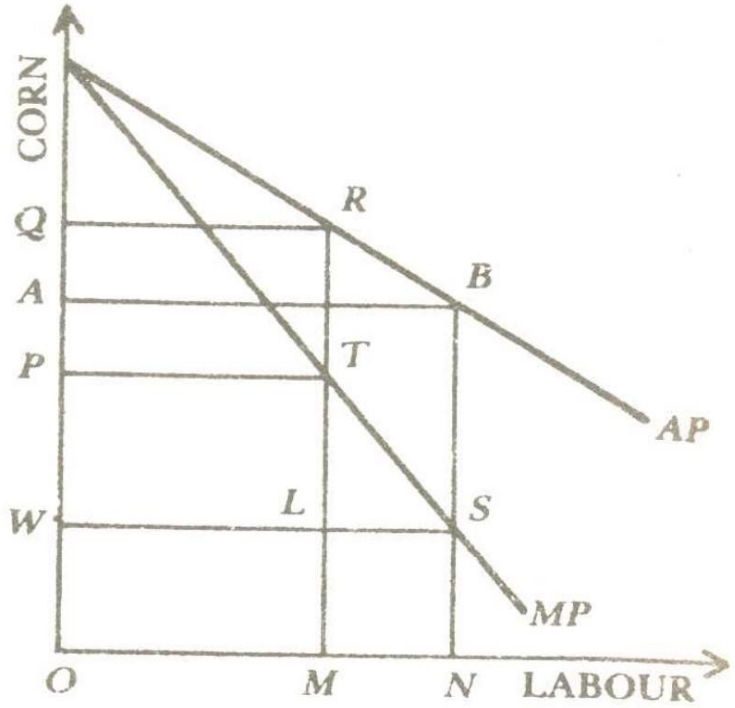

चित्र 8.2

रिकार्डों के मॉडल को रेखाचित्र में व्यक्त किया गया है अनाज की मात्रा अनुलम्ब अक्ष कृषि में लगाई गई श्रम की मात्रा को क्षैतिज अक्ष पर मापते है। श्रम के औसत उत्पादन को AP वक्र द्वारा

सीमान्त उत्पादन को MP वक्र श्रम की OM मात्रा से OQRM अनाज का कुल उत्पादन होता है। आयताकार क्षेत्र PQRT लगान को व्यक्त करता है। जो AP एवं MP का अन्तर है। निर्वाह मजदूरी दर OW पर श्रम की पूर्ति वक्र WL लोचदार है कुल मजदूरी बिल OMLW है कुल लाभ WPTL है जो कुल उत्पादन (OQRM)- मजदूरी लगान (OQRT+OWLM) से प्राप्त होता है।

आर्थिक विकास होने पर कुल उत्पादन बढ़ता है अनाज की माँग एवं कीमत बढ़ती है भूमि पर बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होने से लगान बढ़ता जता है और लाभ कम होता है। अतः में बढ़ी श्रम की मात्रा एवं लगान लाभ समाप्त कर देते है। चित्र में यह स्थिति ON श्रम लगाने पर कुल उत्पादन OABN है जिसमें OWSN मजदूरी कोष एवं WABS लगान है एवं लाभ शून्य है।

8.4.5 स्थिर अवस्था (steady state)

जिस अवस्था में लाभ शून्य होता है = पूँजी संचय रूक जाता है = जनसंख्या स्थिर होती है = मजदूरी निर्वाह स्तर पर होती है = लगान ऊँचा होता है आर्थिक विकास रूक जाता है। इस अवस्था को **रिकार्डो ने स्थिर अवस्था** का नाम दिया है।

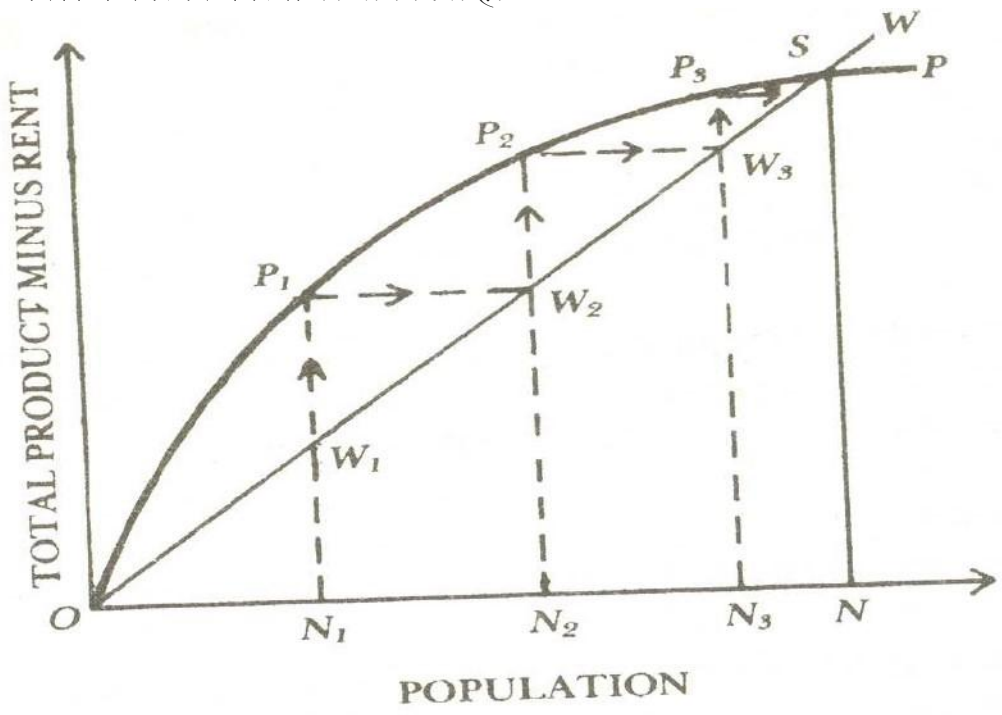

चित्र 8.3

रिकार्डो ने चित्र में स्थिर अवस्था की गति को बताया है जो उसकी वितरण की धारणा को स्पष्ट करता है। जनसंख्या क्षैतिज अक्ष पर और कुल उत्पादन घटा लगान को अनुलम्ब अक्ष पर वक्र OP जनसंख्या फलन है जो TP- किराया (rent) को जनसंख्या फलन प्रदर्शित करता है।

जनसंख्या बढ़ने के साथ साथ OP वक्र घटते प्रतिफल का नियम लागू होने से चपटा होता जाता है। किरण OW वास्तविक मजदूरी (Real Wage) को मापती है। जनसंख्या और OW रेखा का अन्तर कुल मजदूरी बिल मापता है। इस प्रकार ON_1, ON_2 एवं ON_3 जनसंख्या स्तरों पर W_1N_1, W_2N_2 और W_3N_2 क्रमश कुल मजदूरी बिल है। एवं W_1N_1 मजदूरी बिल पर लाभ P_1W_1 है जो कुल उत्पादन घटाया मजदूरी बिल से प्राप्त होता है P_1W_1 से निवेश बढ़ता है श्रम की माँग ON_2 हो जाती है तो

मजदूरी बिल W_2N_2 अब लाभ घटकर P_2W_2 हो जाता है अब निवेश बढ़ने पर श्रम की माँग ON_2 पर बढ़ने से मजदूरी बिल बढ़ता है लाभ घटकर P_2W_3 हो जाता है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था जब तक S बिन्दु पर नही पहुँच जाती और स्थिर अवस्था प्रारम्भ हो जाती है लाभ बिल्कुल समाप्त हो जाते है और समस्त उत्पादन लगान मजदूरी में वितरित हो जाता है।

8.5 विकास प्रारुप की गणितीय व्याख्या(Mathematical Interpretation of Growth Pattern)

बैजमीन हिगीन्ज (Benjamin Higgins) ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विकास मॉडल की विभिन्न कड़ियों को समीकरणों के माध्यम से भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है-

1. उत्पादन फलन (Production Function) -

कुल उत्पादन भूमि, श्रम व पूँजी की उपलब्ध मात्रा और इन साधनों के उपयोग के अनुपात व तकनीक के स्तर पर निर्भर करता है। अर्थात्

$$O = F (L, K, Q, T) .....(1)$$

जहाँ

O= कुल उत्पादन

F = फलन अथवा निर्भर करता है

L = श्रम शक्ति की मात्रा, K उपलब्ध भूमि की मात्रा

Q = पूँजी का स्टाक

T = प्रयुक्त तकनीक का स्तर

2. पूँजी संचय से प्राविधिक प्रगति को बढ़ावा मिलता है। (Capital accumulation promotes technological progress)

पूँजी संचय के बढ़ने के साथ प्राविधिक प्रगति का स्तर बढ़ता है अर्थात् दोनों परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित है। अर्थात्

$$T= T (I) ..... (ii)$$

यहाँ

T = प्राविधिक प्रगति, I = विनियोग

3. निवेश लाभ की मात्रा पर निर्भर करता है। (Investment depends on profits)

देश में निवेश की मात्रा पूँजी पति को प्राप्त होने वाले लाभ की मात्रा पर निर्भर करती है। लाभ जितने अधिक होगे विनियोग भी उतने ही अधिक होते चले जायेगें। यहाँ निवेश से अभिप्रायः पूँजी में वास्तविक शुद्ध वृद्धि (net addition to the stock of capital) से है। अर्थात्

$$I=DQ=I(R).....(iii)$$

4. लाभ श्रम की पूर्ति और तकनीकी स्तर पर निर्भर करता है। (Profit depends on the supply and technical level of labor.)

$$R=R(T,L).....(iv)$$

यहाँ; R= लाभ, T = तकनीकी का स्तर, L = श्रम शक्ति का आकार

5. श्रम बल का आकार वेतन निधि के आकार पर निर्भर करता है (The size of the labor force

depends on the size of wage fund)

L=L(W).....(V)

यहाँ

L = श्रम शक्ति की मात्रा, W = मजदूरी कोष

6. **मजदूरी कोष, विनियोग की मात्रा पर निर्भर करता है। (The wage fund depends on the level of investments)**

w = W (I).....(vi)

यहाँ

W = मजदूरी कोष, I = विनियोग की मात्रा

7. कुल उत्पादन, कुल लाभ एवं मजदूरी कोष का योग होता है। (Total output equals to profits plus wages)

O=R+W.....(vii)

यहाँ

O = कुल उत्पादन, R = कुल लाभ, W = मजदूरी कोष

8.6 प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचनाएं(Criticisms of the Classical Theory)

1. **अवास्तविक विकास प्रक्रिया-** प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा विकास प्रक्रिया को स्थैतिक माना है अर्थात् जिससे सन्तुलन के आस पास ही परिवर्तन होता है एवं एक रूपता युक्त नियमित निरन्तर प्रगति होती है, जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक विकास एकरुप व निरन्तरनाहोकर रूक-रूक का झटकों में होती है।
2. **अवास्तविक मान्यताएँ-** प्रतिष्ठित विकास सिद्धान्त माल्थस के जनसंख्या एवं उत्पत्ति ह्रास नियम पर आधारित है, जबकि ये दोनों ही सिद्धान्त दोषपूर्ण है।
3. सार्वजनिक क्षेत्र के महत्व को ना समझ पाना एक बड़ी भूल है।
4. मध्यम वर्ग की उपेक्षा इनके द्वारा की गई और बचतों का सम्पूर्ण श्रेय पूँजी पतियों व भूमिपतियों को प्रदान किया जबकि पूँजी संचय के लिए बचतों में माध्यम वर्ग के वेतनभोगी वर्ग का बड़ा योगदान रहता है।
5. सरकारी हस्तक्षेप की इनके द्वारा उपेक्षा की गई जबकि 1936 के बाद निर्बाधावादी नीति का परित्याग कर दिया गया और सरकारी हस्तक्षेप नीति को अर्थव्यवस्था के विकास में लागू किया जाने लगा है।
6. इस विचारधारा के प्रारूप में परिवर्तित उत्पादन तकनीकों व उन्नत प्रौद्योगिकी को कम महत्व दिया गया जो उचित नहीं है।

8.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. The Principles of Political economy and Taxation पुस्तक.....ने लिखी। (रिकार्डो **या** माल्थस)
2. रिकार्डो ने स्थैतिक या स्थिर दशा को.....के रुप में माना है।(निराशा **या** खुशी)
3. मजदूरी कोष,.....की मात्रा पर निर्भर करता है। (विनियोग **या** बचत)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. एडम स्मिथ, रिकार्डो एवं माल्थस प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री हैं।
2. पूँजी संचयन की व्यवस्था होने से श्रम विभाजन का उदय होता है।

8.8 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान चुके हैं कि प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के अर्थशास्त्री एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत आर्थिक विकास से सम्बन्धित विचारों में बहुत सीमा तक समानता पाई जाती है। इनके सम्मिलित विचारों को ही आर्थिक विकास का प्रतिष्ठित सिद्धान्त कहा जाता है। आर्थिक विकास के इस प्रतिष्ठित सिद्धान्त को विकास का प्रारम्भिक सिद्धान्त भी कह सकते है।

8.9 शब्दावली (Glossary)

- **प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री (Classical Economists):** एडम स्मिथ और उनके अनुयायी जैसे- रिकार्डो, जे. एस. मिल आदि।
- **विकास दूत (Development Ambassador) :** (1) भूमिपति (2) पूँजीपति एवं (3) श्रमिक जिनमें भूमि की समस्त उपज बाँटी जाती है।
- **स्थिर अवस्था (Steady State):** अर्थव्यवस्था एक ऐसी स्थिति जहाँ लाभ शून्य तक गिर जाए और पूँजी-संचय बिल्कुल रुक जाएगा।
- **पूँजीपति (Capitalist):** वह व्यक्ति जो पूंजीवाद के सिद्धांतों के अनुसार लाभ के लिए अपने धन का उपयोग व्यापार और उद्योग में निवेश करने के लिए करता है।
- **पूँजी संचय (Capital Accumulation):** पूंजी संचय का तात्पर्य निवेश या लाभ से परिसंपत्तियों में वृद्धि से है और यह पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण खंडों में से एक है। इसका लक्ष्य निवेश पर प्रतिफल के रूप में प्रारंभिक निवेश के मूल्य को बढ़ाना है, चाहे वह मूल्यवृद्धि, किराया, पूंजीगत लाभ या ब्याज के माध्यम से हो।
- **लगान (Rent):** उत्पादन के एक कारक (जैसे भूमि, श्रम या पूंजी) द्वारा अपनी अद्वितीय या सीमित आपूर्ति के कारण अर्जित आय को संदर्भित करता है। यह केवल किराये के भुगतान के बारे में नहीं है इसमें किसी कारक द्वारा अर्जित कोई भी अतिरिक्त आय भी शामिल है जो उसके अवसर लागत से अधिक है।

8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. रिकार्डो 2.खुशी 3. विनियोग

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. सत्य 2. सत्य

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- वी.सी. सिन्हा (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिहं (2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन (2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
- आई. सी. धींगरा (1987), इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया, एस. चन्द्र नई दिल्ली।
- अग्रवाल ए. एन., (2006) "इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग)" आशीष

पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

- अहलूवालिया, आई. जे. (1985), "इन्डस्ट्रियल ग्रोथ इन इंडिया", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- अहलूवालिया, आई. जे. एवं लिटिल, आई. एम. डी. (2002), "इण्डियास इकोनॉमिक रिफार्म एण्ड डेवलपमेन्ट", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली ।

8.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- Agarwal, R. C.: "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
- Taneja, M. L. & Myer R. M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co., Delhi, 2010
- Adelman, I. (1961) ***Theories of Economic Growth and Development***, Stanford University Press, Stanford
- Galbraith, J.K (1969) ***Economic Development***, Oxford University Press, London
- Hollis Chenery and T.N. Srinivasan (2007) ***Handbook of Development Economics***, Vols. 1 & 2, Elsevier North Holland, UK
- Kindleberger, C. P. (1977) ***Economic Development***, (3rd Edition), McGraw Hill, New York.
- Kuznets, Simon (1969) ***Economic Growth & Structure***, Oxford & IBH Publishing Co., New Delhi
- Meier, G. M. (1995) ***Leading Issues in Economic Development***, (6th Edition), Oxford University Press, New Delhi
- Mishra and Puri (2006) ***Economic of Growth and Development***, Himalaya Publishing House, New Delhi
- Meier, G. M. and D. Seers (Eds.) (1987) ***Pioneers in Development***, Oxford University Press, New York.
- Philip Arestis (1996) ***Employment, Economic Growth and the Tyranny of the Market***, Edward Elgar Publishing Ltd, UK
- Taneja, M. L. and R. M. Myer (2013) ***Economics of Development and Planning***, Vishal Publishing Co., Jalandhar
- Thirlwall, A P. (2003) ***Growth and Development***, Palgrave Macmillan Press Ltd., New York

- Todaro, Michael P. and Stephen C. Smith (2014) *Economic Development*, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd., New Delhi.
- Vaidyanathan, A. (2005) *India's Economic Reforms and Development*, Academic Foundation, New Delhi.

8.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. आर्थिक विकास के प्रतिष्ठित प्रारुप की विवेचना कीजिए एवं इसके मुख्य कमियों को इंगित कीजिए।
2. आर्थिक विकास के प्रतिष्ठित प्रारुप की गणितीय विवेचना कीजिए?
3. एडम स्मिथ और रिकार्डों के आर्थिक विकास के प्रारुप की विवेचना कीजिए?

इकाई 9 - कार्ल मार्क्स का विकास सिद्धान्त
(The Development Theory of Karl Marx)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)
9.2 उद्देश्य (Objectives)
9.3 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप (Marxian Model of Economic Development)
9.3.1 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या (Materialist interpretation of History)
9.3.2 उत्पादन की विधि एवं उसके प्रभाव (Method of Production and its Effects)
9.3.3 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप की विशेषताएं (Characteristics of Marxian Model of Economic Development)
9.3.4 अतिरेक मूल्य का सिद्धांत (Theory of Surplus Value)
9.3.5 पूँजीवादी संकट (Capitalist Crisis)
9.4 विकास के चरण (Stages of Development)
9.5 गणितीय रुप में मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप (Marx's Economic Development Model in Mathematical Form)
9.6 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप की आलोचना (Criticism of Karl Marx's Development Model)
9.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
9.8 सारांश (Summary)
9.9 शब्दावली (Glossary)
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to practice questions)
9.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
9.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)
9.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि विकास क्या है? विकास का मापन की विधियाँ कौन-कौन सी है। अल्पविकसित देशों की विशेषताएँ और विकास के निर्धारक घटक क्या-क्या है। इस इकाई में कार्ल मार्क्स विकास प्रारूप के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है, इसके अर्न्तगत विकास का निर्धारण किस प्रकार होता है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत इकाई में कार्ल मार्क्स विकास प्रारुप के सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कार्ल मार्क्स विकास प्रारुप के महत्व को समझा सकेगें, एवं एक अर्थव्यवस्था के विकास में इसके योगदान का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेगें।

9.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- ✓ कार्ल मार्क्स का विकास प्रारुप(अतिरेक मूल्य का सिद्धांत) को समझ सकेंगे।
- ✓ कार्ल मार्क्स के विकास प्रारुप की प्रमुख विशेषताएं को जान सकेगें।
- ✓ इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या से अवगत हो पाएंगे
- ✓ मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप का गणितीय रुप जान पाएंगे

9.3 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप (Marxian Model of Economic Development)

कार्ल मार्क्स उन प्रभावशाली विचारकों में से एक है जिसने स्वंय जो कुछ लिखा उससे कही अधिक उनके विचार को द्वारा लिखा गया है। मार्क्स को पूँजी के पतन एवं साम्यवाद के उदय का देवता कहा जाता है। मार्क्स ने समस्त विषयो से सम्बन्धित अपने विचार सम्मिलित रूप से अपनी पुस्तक के **Das Capital** में दिये। यहाँ पर हम मार्क्स के उन्ही विचारों का विश्लेषण करेगें जो आर्थिक विकास प्रक्रिया से सम्बद्ध है। इनका अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अर्न्तगत करते है।

9.3.1 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या (Materialist interpretation of History)

मार्क्स ने यह विचार प्रस्तुत किया कि मानव की चेतना से उसके अस्तित्व का निर्धारण नहीं होता बल्कि उसके सामाजिक अस्तित्व से उसकी चेतना का निर्धारण होता है। ***"It is not the consciousness of men that determines their existence, but on the country their social existence determines their consciousness"*** मार्क्स अनुसार ऐतिहासिक घटनाए समाज के विभिन्न वर्गो के बीच लगातार आर्थिक संघर्ष का परिणाम है और इस संघर्ष का मुख्य कारण **'उत्पादन की विधि'** और **'उत्पादन के सम्बन्धों'** के बीच विरोध का पाया जाना है। मार्क्स के अपने शब्दों में ***"सामाजिक परिवर्तनों का कारण उत्पादन एवं विनिमय की रीतियों में निहित है। संसार की समस्त राजनीतिक क्रियाँए एवं घटनाये जैसे युद्ध आन्दोलन उपद्रव आदि आर्थिक कारणों से उत्पन्न होता है।"*** मार्क्स द्वारा आर्थिक कारणों को समाज का सर्वोपरि तत्व माना गया है जो अन्य सभी तत्वों को नियन्त्रित करता है।

9.3.2 उत्पादन की विधि एवं उसके प्रभाव (Method of Production and its Effects)

उत्पादन सम्बन्धों द्वारा समाज की वर्ग संरचना (Class Structure) का प्रकार निर्धारित होता है। मार्क्स के अनुसार यह वर्ग संरचना सभी समाजो (केवल समाजवाद के अर्न्तगत स्थापित

वर्गहीन समाज को छोड़कर) में दो वर्गो से बनती है प्रबल एवं निर्देश देने वाला वर्ग और मजदूर वर्ग जो पीडित वर्ग होता है। जैसे उत्पादन सम्बन्ध परिपक्व एवं कठोर होते जाते है और उत्पादन शक्तियों का विकास होता जाता है, प्रबल एवं पीड़ित वर्ग में गम्भीर एवं गहन संघर्ष होता जाता है इससे वर्तमान जायदा सम्बन्धों में कुछ सुधार होता है और पीड़ित वर्ग को कुछ लाभ होता जाता है इससे नवीन उत्पादन शक्तियों का विस्तार जिससे नवीन उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना होती है इससे अधिसंरचना द्रुतिगति से बदल जाती है। मार्क्स के अनुसार समस्त इतिहास में इस चक्र का अनुसरण होता रहता है।

9.3.3 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप की विशेषताएं (Characteristics of Marxian Model of Economic Development)

मार्क्स के पूँजीवादी सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है-

1. **उत्पादन के साधन (Factors of Production) -** मार्क्स ने श्रम को उत्पत्ति का सर्वोपरि साधन माना इन्होने पूँजी एवं साहस को भी मान्यता दी। पूँजी के अधिक प्रयोग से तकनीकी प्रगति सम्भव है जिससे लाभ बढ़ेगा फिर यही अधिक विनियोग उत्प्रेरणाओं को जन्म देगा।
2. **निवेश (Investment) -** निवेश पर और यह लाभ अतिरेक मूल्य पर निर्भर करता है। एक तरफ निवेश वृद्धि से लाभ बढेगा तो दूसरी तरफ अतिरेक मूल्य बढ़ने लगता है।
3. **संवृद्धि और गिरावट (Growth and Downfall) -** लाभों के बढ़ने की इस रीति से जहाँ पूँजीपति अधिक समृद्धि वही श्रमिको का निरन्तर शोषण से उनकी गरीबी और भी व्यापक होने लगती है। **मार्क्स** के शब्दों में ***"पूँजीपति एक बड़ी चमकादड़ (vampire) है जो दूसरे के खून पर जिन्दा रहता है और जितना अधिक खून चूसता है उतना ही और अधिक खून चूसने के लिए उतावला होता जाता है।"***

   अन्त में यह पूँजीपति छोटे-छोटे पूँजीपतियों (उत्पादको) का अन्त करके प्रतिस्पर्धात्मक पूँजीवाद के स्थान पर एकाधिकारात्मक पूँजीवाद (Monopolistic Capitalism) की स्थापना करते है। मार्क्स का कहना है कि **पूँजीवाद अपनी कब्र स्वयं खोदता है।**
4. **चक्रीय उच्चावचन (Cyclic oscillations)-** मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में चक्रीय उच्चावचन (आर्थिक संकट) अवश्यम्भावी है यह तीन कारणों से है। **पहला, लाभों के गिरने की प्रवृत्ति (Falling trend of profits)-** लाभ अतिरेक बढ़ने के लिए पूँजीपति श्रम बचत उपाय अपनाते है जिससे उत्पादन की मात्रा एवं उत्पादन लागत दोनों शुरू में ही बढ़ते है परन्तु बढ़ी मात्रा की माँग कम होती है क्योकि जनसंख्या का अधिकत्म भाग श्रमिक है जो मजदूरी जीवन निर्वाह के स्तर के बराबर पाता है जिससे लाभ की मात्रा गिरने लगती है। **दूसरा, असन्तुलन उत्पादन वृद्वि (Unbalanced production Growth) -** उत्पादन प्रक्रिया में असन्तुलन के कारण अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पन्न हो जाता है। **मार्क्स** ने **जे. बी. से** के प्रसिद्ध नियम ***"पूर्ति अपनी माँग स्वंय पैदा कर लेती है"*** को स्वीकार नहीं किया। **तीसरा, अल्पोपभोग (Under Consumption) -** मार्क्स ने पूँजीवादी व्यवस्था में जिन दो वर्गों को बताया प्रथम पूँजीपति जिनकी संख्या कम एवं उपभोग प्रवृत्ति न्यून दूसरा श्रमिक वर्ग जो उच्च उपभोग प्रवृत्ति होने के बावजूद कम मजदूरी के कारण उपभोग कम करता है इससे राष्ट्रीय उत्पादन से कम होता है और आर्थिक संकट उत्पन्न हो जाता है।

9.3.4 अतिरेक मूल्य का सिद्धांत (Theory of Surplus Value)

मार्क्स का अतिरेक मूल्य का सिद्धान्त पूँजीवाद के अर्न्तगत होने वाली आर्थिक विकास प्रक्रिया का आधार है मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद अर्थव्यवस्था में जनसंख्या दो वर्गों में विभक्त रहती है पूँजीपति जो उत्पादन के समस्त साधनों (प्रसाधन एवं प्राकृतिक साधन) पर अधिकार रखता है एवं श्रमिक वर्ग जो अपनी श्रम शक्ति को बेचकर अपना जीवन निर्वाह करता है। मार्क्स के अनुसार पूँजीपति श्रम को उसकी उत्पादन क्षमता से कम मूल्य देता है।

उदाहरणार्थ यदि श्रमिक 10 घण्टे कार्य करता है और पूँजीपति केवल 6 घण्टे के श्रम के बराबर मजदूरी दी जाती है। इन 4 घण्टों के श्रम के मूल्य को पूँजीपति लाभ लगान और ब्याज के रूप में हड़प लेता है। **मार्क्स** ने इस अदत्त (Unpaid) राशि को ही **'अतिरेक मूल्य'** का नाम दिया।

पूँजीपति का प्रमख उद्देश्य इस अतिरेक मुल्य को अधिकतम करना इसके लिए वह (1) श्रमिको से अधिक घण्टे कार्य लेना (2) मशीनों के प्रयोग को बढ़ाना (3) कम मजदूरी देना (4) श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि करना। सम्मिलित है। वह इससे सफल भी हो जाता है क्योंकि उसके पास बड़ी मात्रा में ***सुरक्षित औद्योगिक सेना (Industrial reserve army or surplus manpower)*** उपलब्ध है जिसका नाजायज फायदा वह श्रमिको के शोषण के रुप में उठाता है।

पूँजी की मात्रा भी लाभों को निर्धारित करती है। जैसा कि **मार्क्स** का कहना है, ***"पूँजी वह मृत श्रम है, जो एक मांसखोर जन्तु की भाँति जीवित श्रम का खून चूसकर ही जीवित रहती है और वह जितना अधिक श्रम को चूसती है उतना ही अधिक जीवित रहती है।"*** लाभ की उत्पत्ति को समझाने एवं मजदूरी एवं लाभ के सम्बन्ध का विश्लेषण करने के लिए मार्क्स ने पूँजी को स्थिर पूँजी एवं परिवर्ती पूँजी में विभक्त किया है। स्टॉक या कच्चे माल या उपकरण में निवेश पूँजी को जो श्रम की उत्पादकता बढ़ाने में प्रत्यक्ष रूप से सहायक होती है, मार्क्स **स्थिर पूँजी (c)** कहते है। मजदूरी या प्रत्यक्ष निर्वाह के रूप में श्रम शक्ति को खरीदने में लगी पूँजी को वह **परिवर्ती पूँजी (v)** कहता है। परिवर्ती पूँजी ही अतिरेक मूल्य का प्रमुख स्रोत है, जबकि मशीनों का मूल्य धीरे-धीरे वस्तु में चला जाता है। **अतिरेक मूल्य को (s)** द्वारा दिखाया गया है।

इस प्रकार वस्तु का **कुल मूल्य = स्थिर पूँजी (c) + परिवर्ती पूँजी (v) अतिरेक मूल्य (s),** या **(c + v) + s** । स्थिर पूँजी का परिवर्ती पूँजी से अनुपात **c/v** पूँजी की संगठित संरचना कहा गया है। **अतिरेक मूल्य की दर (शोषण की कोटि) को s/v** के रुप में परिभाषित किया गया है अर्थात् अतिरेक मूल्य का परिवर्ती पूँजी से अथवा लाभों का मजदूरी से अनुपात की दर और पूँजी की संगठित संरचना का एक दूसरे के साथ उलटा तकनीकी प्रगति का प्रभाव सामान्य रुप से स्थिर पूँजी से परिवर्ती पूँजी का अनुपात बढ़ाने की दशा में पूँजी की संगठित संरचना को बदलने के लिए होती है। इसलिए प्रौद्योगिकीय प्रगति की प्रवृति लाभ की दर (r) को घटाने की होती है क्योंकि c/v बढ़ती है, भले ही अतिरेक मूल्य की दर में कोई कमी ना हो।

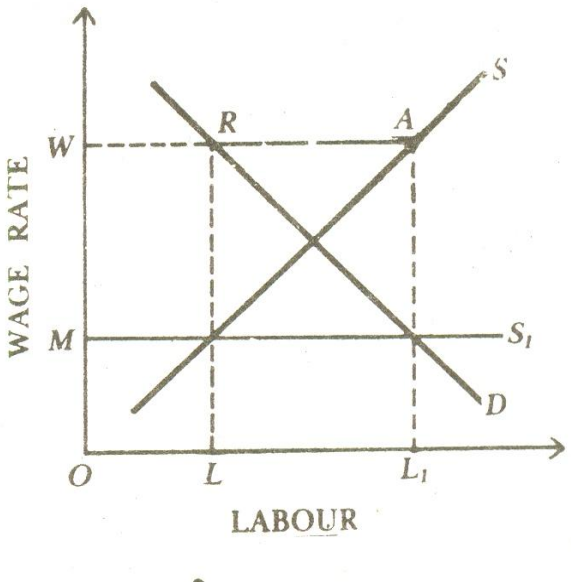

चित्र 9.1

मार्क्स के अनुसार परन्तु सक्रिय श्रम सेना के अनुपात में यह रक्षित सेना जितनी अधिक होगी, उतना ही अधिक इकट्ठा अतिरेक जनसंख्या का समूह होगा जिसकी विपत्ति श्रम की यन्त्रणा के उलट अनुपात में होगी। पूँजीपति संचय का यह निरपेक्ष सामान्य नियम है। औद्योगिक रक्षित सेना जितनी अधिक बड़ी होती है, रोजगार पर लगे श्रमिकों की स्थिति उतनी अधिक खराब होती है, पूँजीपति असन्तुष्ट एवं झगड़ालू श्रमिकों को हटा सकता है क्योंकि उनके स्थान पर वह भी ला सकते है और अधिकाधिक अतिरेक मूल्य का निवेश कर सकते है। यह पूँजीवाद के अन्तर्गत जनसाधारण की बढ़ती विपत्ति का नियम है।

इसे चित्र में दिखाया गया है जहाँ श्रम शक्ति क्षैतिज अक्ष पर और मजदूरी दर अनुलम्ब अक्ष पर लिए गए है। D श्रम का मांग वक्र है एवं S श्रम का पूर्ति वक्र OW मजदूरी दर पर औद्योगिक रक्षित सेना में RA (= L L_1) के के बराबर वृद्धि होती है क्योंकि श्रम की पूर्ति श्रम की मांग से अधिक है। जब औद्योगिक रक्षित सेना बढ़ती है तो पूँजीपति श्रम बचतकारी मशीनें लगाना प्रारंभ कर देते है एवं मजदूरी दर को कम करके न्यूनतम निर्वाह स्तर OM पर ले आते है ताकि वे अधिक अतिरेक मूल्य प्राप्त कर सकें।

परन्तु जब पूँजीपति श्रमिकों के स्थान पर मशीनों को स्थानापन्न करता है तो वह सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी का वध करता है। अतिरेक मूल्य लगातार घटता चला जाता है। मार्क्स का विश्वास है कि प्रौद्योगिकीय प्रगति से पूँजी की संगठित संरचना (c/v) बढ़ने लगती है। क्योंकि लाभों की दर का पूँजी की संगठित संरचना के साथ उलट सम्बन्ध है, इसलिए संचय के साथ लाभों की दर घटने लगती है। मार्क्स ने लाभों की घटती दर की इस प्रवृत्ति की व्याख्या निम्नलिखित समीकरण के द्वारा की है।

$$r = s/c + v = s/v\ /c/v + 1$$

लाभों की दर (r) पूँजी की संगठित संरचना (c/v) के साथ विपरित बदलती है और अतिरेक मूल्य की दर (शोषण की दर s/v) के साथ सीधा बदलती है, इसलिए लाभों की दर (r) अतिरेक मूल्य की दर s/v के साथ बढ़ती और पूँजी की संगठित संरचना c/v के साथ गिरती है। हम मार्क्स के लाभों की घटती दर के नियम की व्याख्या करते है। मार्क्स यह मानकर चलता है कि ज्यों ज्यों उद्यमी अधिक पूँजी लगाते है श्रम की पूर्ति को स्थिर रखते है।

चित्र में, पूँजी की मात्रा को क्षैतिज अक्ष पर जबकि कुल उत्पादन को अनुलम्ब अक्ष पर दर्शाया गया है। कुल उत्पादन वक्र OP को प्रारंभिक बिन्दु से खीचा गया है जिसकी ढाल यह बताती है कि कुल उत्पादन बिन्दु A तक बढ़ती हुई दर से है और उसके पश्चात उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है। दूसरे शब्दों में, अधिक पूँजी लगाने से एवं श्रम की पूर्ति स्थिर रख कर, घटता प्रतिफल नियम लागू होने लग जाता है। कुल मजदूरी OT के बराबर स्थिर मानी गई है और इसी कारण रेखा TW क्षैतिज अक्ष के समानान्तर खींची गई है जो कि यह बताती है कि अधिक पूँजी लगाने से श्रम की मात्रा स्थिर रहती है।

बिन्दु T से एक रेखा TT_1 खींची गई है जो कि कुल उत्पादन वक्र OP को बिन्दु A पर स्पर्श करती है जबकि बिन्दु A से एक लम्ब AK_1 खीचा गया है जो रेखा TW का S_1 पर काटता है। इसी प्रकार, बिन्दु T से एक अन्य रेखा TT_2 खींची गई है जो कुल उत्पादन वक्र को बिन्दु B पर नीचे से काटती है और बिन्दु B से लम्ब BK_2 खींचा गया है जो रेखा TW को S_2 पर काटता है।

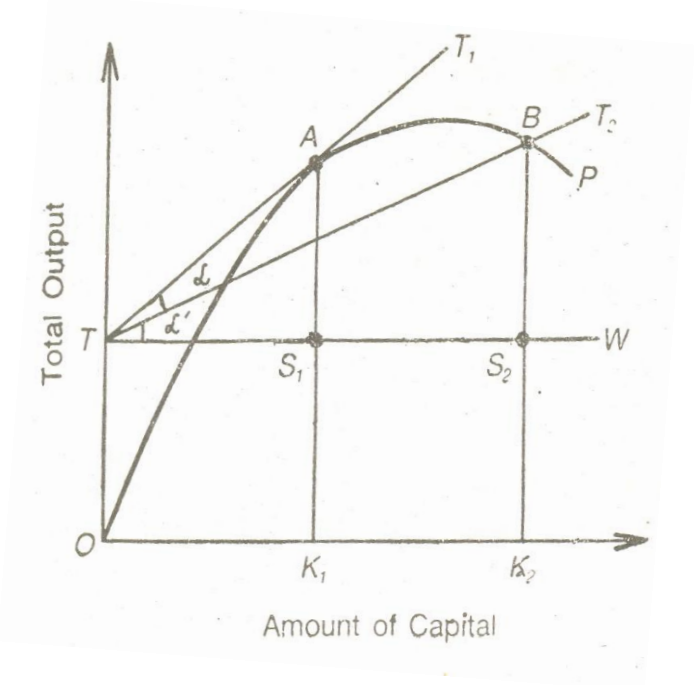

चित्र 9.2

जब पूँजी की मात्रा OK मशीनों पर लगाई जाती है तब कुल उत्पादन AK_1 के बराबर होता है और उद्यमियों को कुल लाभ AS_1 के बराबर प्राप्त होता है जबकि लाभ की दर $\tan\alpha = {}^{AS_1}/_{TS_1}$ है।

यदि उद्यमी लाभ को बढ़ाने की आशा से OK_1 से अधिक मात्रा पूँजी पर व्यय करते है तब लाभ की दर कम हो जाती है। स्पष्ट है कि OK_2 पूँजी लगाने से लाभ की दर $\tan\alpha' = {}^{BS_2}/_{TS_2}$ रह जाती है जो कि पहली लाभ दर ${}^{AS_1}/_{TS_1}$ की अपेक्षा कम है। अतः अधिक पूँजी को मशीनों पर लगाने से लाभ की दर कम हो जाती है।

इस प्रकार श्रम शोषण की उतनी ही कोटि के साथ, अतिरेक मूल्य की उतनी दर, अपने लाभों को घटती दर में प्रकट करती है क्योंकि ***"जैसे-जैसे तकनीकी प्रगति सजीव श्रम के स्थान पर एकत्रित श्रम को स्थानापन्न करती जाएगी, वैसे-वैसे अतिरेक मूल्य की दी हुई दर द्वारा प्रदान की***

गई लाभों की दर घटती जाएगी, अर्थात् यदि सजीव श्रम की शोषण दर में तद्नुरूप वृद्धि नहीं होती तो लाभों की दर घटती जाएगी।"

9.3.5 पूँजीवादी संकट (Capitalist Crisis)

लाभों की घटती दर की इस प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए पूँजीपति मजदूरी घटाकर, कार्यकारी दिन को लम्बा करके और त्वरण इत्यादि के द्वारा शोषण की कोटी बढ़ाते है। परन्तु क्योंकि प्रत्येक पूँजीपति नई श्रम बचत एवं लागत घटाने की युक्तियों का प्रचलन करने में लगा रहता है, इसलिए कुल उत्पादन से श्रम का (अतः अतिरेक मूल्य का) अनुपात और भी कम हो जात है। लाभों की दर भी और घट जाती है। तब उत्पादन लाभदायक नहीं रह जाता। ज्यों ज्यों मनुष्यों का स्थान मशीनें लेती है, त्यों त्यों उपभोग कम होता जाता है और औद्योगिक रक्षित सेना बढ़ जाती है। दिवाले निकलते है। प्रत्येक पूँजीपति मार्किट में वस्तुओं के ढेर बेचने का प्रयत्न करता है और इस प्रक्रिया में छोटी फर्मे गायब हो जाती है। पूँजीवादी संकट प्रारम्भ हो जाता है।

मार्क्स ने बताया है कि समस्त आर्थिक संकट का कारण जन साधारण की दरिद्रता एवं सीमित क्रय शक्ति है। वस्तुओं के अति उत्पादन, मार्किट खोजने में अत्यधिक कठिनाइयों, कीमतों में कमी और उत्पादन की तीव्र कटौती के रूप में आर्थिक संकट प्रकट होते है। संकट के समय में बेरोजगारी बहुत बढ़ जाती है, श्रमिकों की मजदूरी और घटा दी जाती है, ऋण की सुविधाएँ समाप्त हो जाती है और छोटे पूँजीपति तबाह हो जाते है। ऐसा सदैव नहीं होता रहता। जल्दी ही पुनः प्रवर्तन प्रारम्भ हो जात है। कीमतों का निम्न स्तर, मजदूरी में कटौती, सट्टा संकटों की समाप्ति एवं पूँजी का नाश लाभों की दर को बढ़ाने लगते है जिसके परिणामस्वरूप नए निवेश होते है

जैसा कि **मार्क्स** ने लिखा है, ***"संकट सदा ही बड़े नए निवेशों का प्रारम्भ बिन्दु होता है। इसलिए समस्त समाज के दृष्टिकोण से संकट थोड़ा बहुत, अगले प्रस्थापिता चक्र का नया भौतिक आधार है"*** परन्तु इसका वही विध्वंसात्मक परिणाम निकलता है। श्रम के लिए प्रतियोगिता अधिक मजदूरी श्रम बचतकारी मशीनें अतिरेक मूल्य में कमी लाभ की दरों में कमी और अधिक प्रतियोगिता एवं पतन। संकट से मन्दी और उसके बाद पुनरुत्थान एवं तेजी और फिर संकट का यह चक्र पूँजीवादी उत्पादेन के विकास का साक्षी है।

संकट की प्रत्येक अवधि में अधिक शक्तिशाली पूँजीपति कमजोर पूँजीपतियों का अधिकार छीन लेते है और इसके साथ ही मजदूर वर्ग का क्रोध बढ़ता है। और तब अनत में पूँजीवाद का प्रलय का दिन आ पहुँचता है जिसे सबसे अच्छे ढंग से मार्क्स के ही शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है, रूपानतरण की इस प्रक्रिया के लाभों को हड़पने और उन पर एकाधिकार जमाने वाले पूँजीपतियों की निरन्तर घटती संख्या के साथ-साथ जनसाधारण की विपत्ति, दमन, दास्ता, अपमान एवं शोषण बढ़ते जाते है। परन्तु इसके साथ ही मजदूर वर्ग का विद्रोह भी बढ़ता है, जोकि ऐसा वर्ग है जिसकी संख्या बढ़ती रहती है और जोकि स्वंय पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया के ही ढाँचे द्वारा अधिक अनुशासित, संयुक्त एवं संगठित होता है।

पूँजी का एकाधिकार उत्पादन की विधि के लिए बन्धन बन जाता है। उत्पादन के साधनों कर केन्द्रीकरण एवं श्रम का समाजीकरण अन्त में ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाते है, जहाँ वे अपने पूँजीवादी आवरण के अनुरूप नहीं रहते। पूँजीवाद का पर्दाफाश हो जाता है। पूँजीवादी निजी सम्पत्ति के नाश के अशुभ सूचक घण्टे बज उठते है। अधिकार छीनने वालों के अपने ही अधिकार छिन जाते है।

पूँजीवादी संचय की यह ऐतिहासिक प्रवृत्ति है। दरिद्रता समाप्त हो जाएगी। राज्य नष्ट हो जाएगा और प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार योगदान देगा एवं अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ग्रहण करेगा। पूँजीवाद के स्थान पर समाजवाद आ जाएगा।

9.4 विकास के चरण (Stages of Development)

मार्क्स द्वारा आर्थिक विकास कि अवस्थाओं की जो परिकल्पना की गयी है वे निम्न है-

मौलिक अवस्था	आदिम अवस्था (Primitive Communication)
दूसरी अवस्था	दास समाज (Slave Society)
तीसरी अवस्था	सामन्तवादी समाज (Feudal Society)
चौथी अवस्था	पूँजीवाद (Capitalism)
पाँचवी अवस्था	साम्राज्यवाद (Imperialism)
छठी अवस्था	समाजवाद (Socialism)
अन्तिम	साम्यवाद (Communism)

9.5 गणितीय रुप में मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप (Marx's Economic Development Model in Mathematical Form)

मार्क्स के मॉडल का समीकरण रुप इस प्रकार है।

1. मार्क्स ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की भाँति कुल उत्पादन को भूमि, श्रम पूँजी और इन साधनों के उपयोग के अनुपात व तकनीक के स्तर का परिणाम माना है। अर्थात्

$$O= F (L, K, Q, T) .....(i)$$

2. प्राविधिक प्रगति विनियोग पर निर्भर करती है। अर्थात्

$$T= T (I)..... (ii)$$

3. निवेश लाभ दर पर निर्भर करता है। अर्थात्

$$I = I (R^1)$$

जहाँ

I = निवेश, R^1 = पूँजी पर प्रतिफल की दर

जहाँ प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने निवेश को लाभ के बराबर अर्थात् पूँजीपति की आय के बराबर माना वही मार्क्स ने निवेश को पूँजी की प्रतिफल की दर पर निर्भर करता है बताया।

4. लाभ की दर वास्तव में लाभ पूँजी लागत का अनुपात है।

$$\boldsymbol{R^1 = \frac{O - W}{W + Q^1} = \frac{R}{W + Q^1} \ldots\ldots\ldots (iv)}$$

जहाँ

O = उत्पादन की मात्रा, Q = पूँजीगत वस्तुएँ, W = चल पूँजी

O - W = लाभ की मात्रा

5. मजदूरी निवेश के स्तर पर निर्भर करती है। अर्थात्

$$w = W (I).....(v)$$

6. रोजगार का स्तर निवेश की मात्रा पर निर्भर करता है। अर्थात्

$$L= L (I/Q) .....(vi)$$

7. उपभोग मजदूरी कोष पर निर्भर करता है। अर्थात्

$$C= C(W).....(vii)$$

8. लाभ, तकनीक के स्वरूप और व्यय के स्तर पर निर्भर करता है। अर्थात्

$$R =R .....(viii)$$

9. उत्पादन की मात्रा लाभ और व्यय के स्तर पर निर्भर करता है। अर्थात्

$$O= R+W.....(ix)$$

10. अत: कुल उत्पादन, उपभोग और विनियोग के बराबर होगा। अर्थात्

$$O= C+ I.....(x)$$

अन्त में यह माना जा सकता है कि चल पूँजी की लागत का पूँजी के कुल स्टॉक से एक निश्चित सम्बन्ध (अनुपात) है। जिसे यदि U (User Cost) से प्रदर्शित किया जाए और यह मानते हुए कि 'U' का मूल्य दिया हुआ है तो समीकरण इस प्रकार होगा। इसमें तीन समानताएँ (and the three ideates)

$$O= R+W$$

$$O= C+I$$

$$O=U.Q$$

प्रतिष्ठित एवं मार्क्स के विकास मॉडल में समानताये समीकरण नंबर (i) (ii) एवं (v) है। समीकरण (vi) देखने में समान है परन्तु प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का 'L' से अभिप्राय श्रम शक्ति की कुल मात्रा से जबकि मार्क्स ने इसे रोजगार प्राप्त श्रम शक्ति माना है। समीकरण नंबर (iii) में मार्क्स के अनुसार विनियोग लाभ के स्तर पर नहीं लाभ की दर पर निर्भर करता है। दोनों विकास मॉडल तकनीकी प्रगति को लाभ में वृद्धि करने के लिए आवश्यक तत्व मानते है।

9.6 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप की आलोचना (Criticism of Karl Marx's Development Model)

मार्क्स के विकास सम्बन्धी विचारों की आलोचना अग्रलिखित आधारों पर की जाती है।

1. **झूठा पैगम्बर (False Prophet)**
   - क. वृद्धि - मार्क्स का यह विचार कि पूँजी वादी अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि की दर जीवन निर्वाह स्तर के बराबर रखी जाती है सत्य सिद्ध नहीं हुआ वास्तविक वृद्धि आर्थिक विकास के साथ बढ़ा।
   - ख. समाजवाद का विकास मार्क्स के बताए गए ढंग के अनुसार नही हुआ।
   - ग. पूँजीवाद के शीध्र पतन की धारणा गलत सिद्ध हुई।
   - घ. मार्क्सवाद का अनुकरण उन्ही देशों ने किया जो पूँजीवादी देशों से बहुत पीछे थे।
2. **अतिरेक मूल्य- अवास्तविक धारणा (Surplus value – unrealistic assumption) –** पूँजीपति श्रमिकों से अतिरेक मूल्य के रूप में सम्पूर्ण लाभ हडप लेता है एक विरोधाभास लिए हुए है जैसा मार्क्स ने स्वीकार किया है कि पूँजीपति श्रम बचत उपाय कभी स्वीकार नहीं करता। यही नही मार्क्स ने निरपेक्ष अवास्तविक मूल्यों पर जोर दिया जबकि व्यवहार में हमारा सम्बन्ध वास्तविक कीमतों से होता है।
3. **गिरती हुई लाभ दर (Falling profit rate) –** मार्क्स के अनुसार जैसे विकास होता है वैसे ही वैसे पूँजी की प्रासंरिक (Organic) संरचना में वृद्धि होती है जो लाभ की दर को घटा देगी। परन्तु वह भूल गये तकनीकी नव प्रवर्तनों से पूँजी की बचत होती है। जिससे पूँजी उत्पाद अनुपातों में कमी

उत्पादकता में वृद्धि के साथ मजदूरी एवं लाभ दोनों बढ़ता है।

4. **तकनीकी प्रगति से रोजगार को बढ़ावा (Technological progress boosts employment)-** तकनीकी प्रगति होने पर शुरू में बेरोजगारी होगी परन्तु दीर्घकाल में कुल माँग एवं आय स्तर को बढ़ाकर अपेक्षाकृत अधिक रोजगार उत्पन्न होगा।
5. बैजमीन हिगीन्ज के अनुसार मार्क्स का यह कथन कि समाजवाद सर्वप्रथम उन देशों में आयेगा जहाँ पूँजीवाद चरम सीमा पर होगा सर्वथा गलत सिद्ध हुआ।
6. **सम्पूर्ण चक्रीय सिद्धान्त (Complete cyclical theory)–** मार्क्स की यह मान्यता गलत सिद्ध हुई कि पूँजी संचय से उपभोक्ता वस्तुओ की माँग और लाभों में कमी आती है। आर्थिक विकास तेज होने से कुल आय बढ़ाने के साथ मजदूरी बढ़ती है जिससे वस्तुओ की माँग बढ़ेगी।
7. मार्क्स पूँजीवाद के लचीलेपन को समझने में असफल रहें।
8. राज्य के योगदान की उपेक्षा करते है।

9.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. मार्क्स के अनुसार वस्तु के मूल्य का आधार .....है। (पूँजी **या** श्रम)
2. Das Capital पुस्तक के लेखक ..... हैं। (मार्क्स **या** रिकार्डो)
3. मार्क्स ने इतिहास की .....व्याख्या की है। (भौतिकवादी **या** व्यवहारवादी)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. अतिरेक मूल्य का सिद्वांत मार्क्स ने दिया था।
2. मार्क्स ने पूँजीवाद के पतन का कारण स्वंय पूंजीवाद को ही माना है।

9.8 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि मार्क्स ने समस्त विषयों से सम्बन्धित अपने विचार सम्मिलित रूप से अपनी पुस्तक के चपजंस में दिये। मार्क्स ने यह विचार प्रस्तुत किया कि मानव की चेतना से उसके अस्तित्व का निर्धारण नहीं होता बल्कि उसके सामाजिक अस्तित्व से उसकी चेतना का निर्धारण होता है।मार्क्स के अनुसार यह वर्ग संरचना सभी समाजो में दो वर्गो से बनती है प्रबल एवं निदेश देने वाला वर्ग और मजदूर वर्ग जो पीडित वर्ग होता है। जैसे उत्पादन सम्बन्ध परिपक्व एवं कठोर होते जाते है और उत्पादन शक्तियों का विकास होता जाता है, प्रबल एवं पीडित वर्ग में गम्भीर एवं गहन संघर्ष होता जाता है।

इससे वर्तमान जायदा सम्बन्धों में कुछ सुधार होता है और पीड़ित वर्ग को कुछ लाभ होता जाता है इससे नवीन उत्पादन शक्तियों का विस्तार जिससे नवीन उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना होती है। इससे अधिसंरचना द्रुतिगति से बदल जाती है। प्रबल एवं निर्देश देने वाला वर्ग का प्रमुख उद्देश्य अतिरेक मूल्य को अधिकतम करना इसके लिए वह ***पहला*** श्रमिको से अधिक घण्टे कार्य लेना ***दूसरा*** मशीनों के प्रयोग को बढ़ाना ***तीसरा*** कम मजदूरी देना ***चौथा*** श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि करना। जो अतिरिक्त श्रमिकों के कारण होता है, पूँजीपति असन्तुष्ट एवं झगड़ालू श्रमिकों को हटा सकता है क्योंकि उनके स्थान पर वह नये श्रमिकों भी ला सकते है और अधिकाधिक अतिरेक मूल्य का निवेश कर सकते है।

इस प्रकार श्रम शोषण की उतनी ही कोटि के साथ, अतिरेक मूल्य की उतनी दर, अपने लाभों को घटती दर में प्रकट करती है क्योंकि ***"जैसे-जैसे तकनीकी प्रगति सजीव श्रम के स्थान पर एकत्रित श्रम को स्थानापन्न करती जाएगी, वैसे-वैसे अतिरेक मूल्य की दी हुई दर द्वारा प्रदान की गई लाभों की दर घटती जाएगी, अर्थात् यदि सजीव श्रम की शोषण दर में तद्नुरूप वृद्धि नहीं होती तो लाभों की दर घटती जाएगी।"***

मार्क्स ने बताया है कि समस्त आर्थिक संकट का कारण जन साधारण की दरिद्रता एवं सीमित क्रय

शक्ति है। वस्तुओं के अति उत्पादन, मार्किट खोजने में अत्यधिक कठिनाइयों, कीमतों में कमी और उत्पादन की तीव्र कटौती के रूप में आर्थिक संकट प्रकट होते है। संकट के समय में बेरोजगारी बहुत बढ़ जाती है, श्रमिकों की मजदूरी और घटा दी जाती है, ऋण की सुविधाएँ समाप्त हो जाती है और छोटे पूँजीपति तबाह हो जाते है ।ऐसा सदैव नहीं होता रहता। ***"संकट सदा ही बड़े नए निवेशों का प्रारम्भ बिन्दु होता है। इसलिए समस्त समाज के दृष्टिकोण से संकट थोड़ा बहुत, अगले प्रस्थापिता चक्र का नया भौतिक आधार है।"***परन्तु इसका वही विध्वंसात्मक परिणाम निकलता है।

श्रम के लिए प्रतियोगिता अधिक मजदूरी श्रम बचतकारी मशीनें अतिरेक मूल्य में कमी लाभ की दरों में कमी और अधिक प्रतियोगिता एवं पतन। संकट से मन्दी और उसके बाद पुनरुत्थान एवं तेजी और फिर संकट का यह चक्र पूँजीवादी उत्पादेन के विकास का साक्षी है। उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण एवं श्रम का समाजीकरण अन्त में ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाते है, जहाँ वे अपने पूँजीवादी आवरण के अनुरूप नहीं रहते। पूँजीवाद का पर्दाफाश हो जाता है। पूँजीवादी निजी सम्पत्ति के नाश के अशुभ सूचक घण्टे बज उठते है। अधिकार छीनने वालों के अपने ही अधिकार छिन जाते है।

पूँजीवादी संचय की यह ऐतिहासिक प्रवृत्ति है। दरिद्रता समाप्त हो जाएगी। राज्य नष्ट हो जाएगा और प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार योगदान देगा एवं अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ग्रहण करेगा। पूँजीवाद के स्थान पर समाजवाद आ जाएगा।

9.9 शब्दावली (Glossary)

- **प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री (classical economist):** एडम स्मिथ और उनके अनुयायी जैसे- रिकार्डो ,जे. एस. मिल आदि।
- **अतिरेक मूल्य (Surplus value):** अतिरेक मूल्य, श्रमिक के श्रम द्वारा बनायी गयी वस्तुओं के मूल्य एवं श्रमिक के मजदूरी के अन्तर के बराबर होता है।

$$v = d - e$$

यहाँ v= अतिरेक मूल्य, d=वस्तुओं की कीमत जो पूँजीपति को प्राप्त होती है, e=मजदूरी।

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to practice questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. श्रम 2. मार्क्स 3 भौतिकवादी।

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1.सत्य 2. सत्य

9.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- वी.सी. सिन्हा (2010) ***विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र***, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिहं (2001) ***आर्थिक विकास एवं नियोजन***, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन (2002) ***आर्थिक विकास एवं नियोजन***,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
- आई. सी. धींगरा (1987), ***इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया***, एस. चन्द्र नई दिल्ली।

9.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- अग्रवाल ए. एन., (2006) ***इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग)*** आशीष पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

- अहलूवालिया, आई. जे. (1985), ***इन्डस्ट्रियल ग्रोथ इन इंडिया***, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- अहलूवालिया, आई. जे. एवं लिटिल, आई. एम. डी. (2002), ***इण्डियास इकोनॉमिक रिफार्म एण्ड डेवलपमेन्ट***, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- Agarwal, R. C.: *Economics of Development and Planning*, Lakshmi Narayan Agarwal, Agra 2007.
- Taneja, M. L. & Myer R. M.: *Economics of Development and Planning* Vishal Publishing Co., Delhi, 2010.

9.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. मार्क्स के विकास प्रारुप की विवेचना कीजिए एवं इसके मुख्य कमियों को इंगित कीजिए।
2. "मार्क्स के विकास प्रारुप पश्चिमी पूँजीवाद के उदभव एवं विकास को स्पष्ट करने का प्रयास करता है।"व्याख्या कीजिए?
3. मार्क्स के विकास प्रारुप गणितीय व्याख्या की विवेचना कीजिए?

इकाई 10 - शुम्पीटर का विकास सिद्धान्त
(The Development Theory of Schumpeter)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)
10.2 उद्देश्य (Objectives)
10.3 शुम्पीटर के विकास प्रारूप (Schumpeter's Development Model)
10.4 शुम्पीटर का विकास प्रारूप की विवेचना (Discussion of Schumpeter's Development Model)
10.4.1 आर्थिक विकास से तात्पर्य (Meaning of economic development)
10.4.2 आर्थिक जीवन का चक्रीय उच्चावचन (Cyclical Fluctuations of Economic Life)
10.4.3 आर्थिक विकास एक असतत प्रकिया (Economic Development is a Discontinuous Process)
10.4.4 नवप्रवर्तनों की भूमिका (The role of Innovations)
10.4.5 उद्यमी की भूमिका, एवं प्रेरित करने वाले तत्व (The Role of The Entrepreneur and The Motivating Factors)
10.4.6 पूँजी, लाभ एंव ब्याज (Capital Profit and interest)
10.4.7 पूँजीवादी विकास की चक्रीय प्रकिया (Cyclical Process of Capitalist Development)
10.4.8 पूँजीवाद के विनाश की प्रकिया (The process of destruction of capitalism)
10.5 शुम्पीटर का मॉडल एवं अल्पविकसित देश (Schumpeter's Model and Underdeveloped Countries)
10.6 शुम्पीटर के विकास मॉडल का अर्थव्यवस्था में महत्व (Importance of Schumpeter's Development model in the economy)
10.7 शुम्पीटर के मॉडल का बेंजामिन हिगिन्स द्वारा प्रस्तुत समीकरणों की सहायता से स्पष्टीकरण (Schumpeter's Model Explained Using Equations Presented by Benjamin Higgins)
10.8 शुम्पीटर के विकास प्रारूप की आलोचनाएं (Criticisms of Schumpeter's Development Model)
10.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
10.10 सारांश (Summary)
10.11 शब्दावली (Glossary)
10.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)
10.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
10.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)
10.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

इससे पहले की इकाई में आपने मार्क्स के विकास प्रारूप के विषय में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त की है। इस इकाई में हम आर्थिक विकास के प्रारूप से संबंधित शुम्पीटर के विकास प्रारूप का अध्ययन करेंगे। परम्परावादी विचारधारा एवं कार्ल मार्क्स का विचार विकास सिद्धान्त को निराशावादिता की ओर ले जाता है। यदि एक ओर समान नियम एवं जनसंख्या की वृद्धि स्थिर अवस्था पर पहुंचाती है तो दूसरी तरफ अर्न्तर्निहित विरोधाभाषों के कारण पूँजीवाद का विकास एक स्थिति पर आने के बाद ठप्प हो जाता है। शुम्पीटर का विश्लेषण इन निराशावादी चिन्ताओं से मुक्त हैं। इस प्रकार शुम्पीटर मॉडल के अध्ययन से आप समझ सकेंगें कि इसमें सहज रूप से एक आशावादी झलक मिलती है। शुम्पीटर ने अपने विकास प्रारूप में नवप्रवर्तन को महत्वपूर्ण माना है। प्रस्तुत मॉडल के अध्ययन से आप विकास के शुम्पीटर मॉडल को भली भांति समझ सकेंगें।

10.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप-

- ✓ अर्थिक विकास का अर्थ समझ सकेगें।
- ✓ शुम्पीटर का विकास प्रारूप एवं उसके तत्वों को जान सकेंगे।
- ✓ चक्रीय उच्चावचन की धारणा से अवगत हो पायेंगे।
- ✓ आर्थिक विकास की असतत प्रकिया का क्या अर्थ यह जान सकेंगे।
- ✓ नवप्रवर्तनों की क्या भूमिका को जान सकेंगे।
- ✓ पूँजी, लाभ एंव ब्याज की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- ✓ पूँजीवादी विकास की चक्रीय प्रक्रिया को जान सकेंगे।

10.3 शुम्पीटर के विकास प्रारूप

शुम्पीटर ऑस्ट्रेलिया के मोराविया प्रान्त (जो आजकल जैकोस्लोवेकिया में है) में पैदा हुये थे। उन्होंने रूस ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, कोलाम्बिया व अमेरिका के हावर्ड विश्वविद्यालयों में पढ़ाया उनके विकास के सिद्वान्तों को हम तीन पुस्तकों से लेते है।

1. The Theory of Economic Development (आर्थिक विकास का सिद्धांत - 1912)

2. Business cycles (व्यापार चक्र (2 खंड, 1939))

3. Capitalism, socialism and democracy (पूंजीवाद, समाजवाद और लोकतंत्र)

बेन्जामिन हिगिन्स के अनुसार शुम्पीटर 20वीं सदी में विकास मॉडल देने वाले **प्रथम अर्थशास्त्री** थे। आर्थिक विकास के ऐतिहासिक क्रम में शुम्पीटर का महत्वपूर्ण स्थान हैं। परम्परावादी विचारधारा एवं कार्ल मार्क्स का विचार विकास सिद्वान्त को निराशावादिता की ओर ले जाता है। यदि एक ओर ह्रासमान नियम एवं जनसंख्या की वृद्धि स्थिर अवस्था पर पहुंचाती है तो दूसरी तरफ अंतर्निहित विरोधाभाषों के कारण पूँजीवाद का विकास एक स्थिति पर आने के बाद ठप्प हो जाता है। शुम्पीटर का विश्लेषण इन निराशावादी चिन्ताओं से मुक्त हैं। इस प्रकार शुम्पीटर मॉडल के अध्ययन से समझ सकेंगें कि इसमें सहज रूप से एक आशावादी झलक मिलती है।

शुम्पीटर के अनुसार ***"आर्थिक विकास वृत्तीय प्रवाह में होने वाला एक आकास्मिक एवं असतत परिवर्तन हैं। अर्थात् संतुलन की एक ऐसी हलचल है जो पूर्व स्थापित साम्य की स्थिति को सदा के लिए बदल देती है।"***

शुम्पीटर के विकास प्रारूप का इतिहास (History of Schumpeter's growth model)

जोसेफ एलोइ शुम्पीटर (Josepn Alois Schumpiter) ने पहली बार **1911** में जर्मनी भाषा में

प्रकाशित 'The Theory of Economic Development' में अपना सिद्धांत प्रस्तुत किया। इसका अंग्रेजी संस्करण 1934 में प्रकाशित हुआ। बाद में 'Business cycles' (1939) और 'Capitalism, Socialism and Democracy' (1942) में इस सिद्धान्त को परिष्कृत एंव परिवर्धित किया गया। इन्होंने विकास के सम्बन्ध में पूर्ण विचार प्रस्तुत किये है। शुम्पीटर के विकास प्रारूप का आर्थिक जगत में महत्वपूर्ण स्थान है। शुम्पीटर के मॉडल में प्रतिष्ठित मॉडलों से भिन्नता हैं परन्तु यह प्रतिष्ठित माडलों से ज्यादा प्रभावपूर्ण है। इन्होंने साहसी को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

शुम्पीटर के विकास प्रारूप की मान्यताएं (Assumptions of Schumpeter's Growth Model)

शुम्पीटर का मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है-

1. शुम्पीटर ने ऐसी अर्थव्यवस्था की परिकल्पना की है जहां पूर्ण प्रतियोगिता हैं जो स्थिर साम्य की अवस्था है।
2. स्थिरावस्था साम्य जहां, ना तो अधिक लाभ की स्थिति है और ना तो हानि की स्थिति हैं ना बचत है ना निवेश है और ना ही बेरोजगारी की स्थिति है। इन सारी चीजों को शुम्पीटर ने एक आर्थिक चक्र से बताया है। जो क्रमिक रूप से चलता रहता है। चक्रीय प्रकिया में एक समान उत्पादन होता रहता है।
3. शुम्पीटर के अनुसार अर्थव्यवस्था का विकास नवप्रवर्तनों पर निर्भर करता है। और नवप्रर्वतन का कार्य उद्यमी के ऊपर निर्भर करता है।
4. शुम्पीटर ने आर्थिक विकास को एक असतत चलने वाली प्रकिया माना है।

10.4 शुम्पीटर का विकास प्रारूप की विवेचना (Discussion of Schumpeter's Development Model)

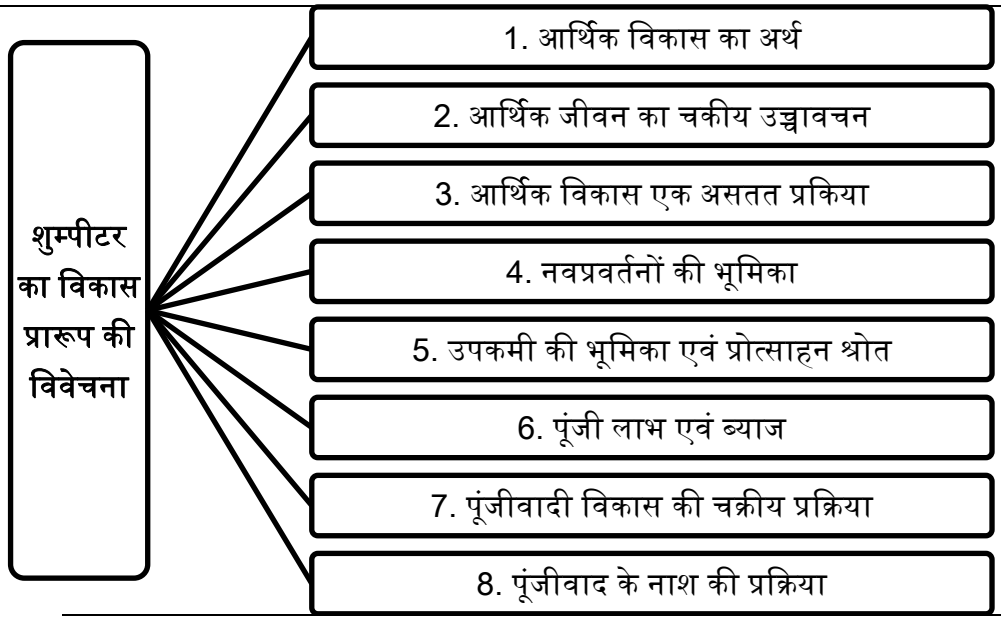

10.4.1 आर्थिक विकास से तात्पर्य (Meaning of economic development)

आपको शुम्पीटर के विकास प्रारूप का अध्ययन करने के लिए आर्थिक विकास के अर्थ को जानना आवश्यक शुम्पीटर के अनुसार आर्थिक विकास से हमारा अभिप्राय आर्थिक जीवन में घटित होने वाले केवल उन्ही परिवर्तनों से हैं जिनको उपर से लादा नहीं जाता हैं। बल्कि वे स्वयंभूत प्रेरणाओं से भीतर से ही प्रकट होते है।

10.4.2 आर्थिक जीवन का चक्रीय उच्चावचन (Cyclical Fluctuations of Economic Life)

शुम्पीटर आर्थिक विकास की प्रक्रिया की व्याख्या चक्रीय प्रवाह (Circular flow) से प्रारम्भ करते है। जो बिना विनाश के निरंतर चलती रहती हैं। अर्थात् जो प्रति वर्ण एक ही तरह से उसी प्रकार अपनी पुनरावृत्ति करता रहता है। जिस प्रकार जीवों में रक्त का संचरण होता है। इस वृत्तीय प्रवाह में प्रत्येक वर्ष उसी ढंग से वहीं वस्तुएँ उत्पादित होती है। आर्थिक प्रणाली में कहीं प्रत्येक पूर्ति के समान मांग प्रतीक्षा करती हैं एवं प्रत्येक मांग के लिए समान पूर्ति। दूसरे शब्दों में, समस्त आर्थिक क्रियाएं एक समय समस्त अर्थव्यवस्था में पुनरावृत्ति करती है।

शुम्पीटर के लिए वृत्तीय प्रवाह एक सरिता है। जो कि श्रम शक्ति और भूमि पर निरन्तर प्रवाह हो रहे झरनों की संतुष्टि में रूपान्तरण किया जाये। उनके अनुसार विकास वृत्तीय प्रवाह की दिशाएँ में आकस्मिक एवं अनिरन्तर परिर्वतन संतुलन की फलन है जो पहले की विद्यमान संतुलन स्थिति को सदा के लिए परिवर्तित एवं विस्थापित कर देती है। शुम्पीटर के अनुसार ***"अर्थव्यवस्था स्थिर संतुलन में रहती है एवं स्थिर संतुलन में अर्थव्यवस्था पूर्ण प्रतियोगिता मूलक संतुलन में रहती है। अर्थात् निम्नलिखित स्थितियां पायी जाती है।"***

1. उत्पादन की मांग उत्पादन की पूर्ति, D=S
2. कीमत = औसत लागत, P=AC
3. लाभ = शून्य, P=O
4. ब्याज की दर =लगभग शून्य, Ri=Just O
5. बेरोजगारी = नहीं के बराबर,

D = Demand, S= Supply, P= Profit

R= Rate of interest, N= unemployed

10.4.3 आर्थिक विकास एक असतत प्रकिया (Economic Development is a Discontinuous Process)

उपरोक्त अध्ययन से आप समझ गए होंगे कि आर्थिक विकास एक चक्रिय प्रक्रिया है। शुम्पीटर ने आर्थिक विकास को वृत्तीय प्रवाह काअसततविचलन माना है। उनका विकास प्रारूप यह है कि - आर्थिक विकास इस वृत्तीय प्रवाह में होने वाला एक आकास्मिक एवं असत्त परिवर्तन है अर्थात् सन्तुलन की एक ऐसी हलचल है जो पूर्व स्थापित साम्य की स्थिति को सदा के लिए बदल देती है। तो वृत्तीय प्रवाह में बाधा या विचलन किस रूप में होता है शुम्पीटर के अनुसार यह बाधा या विचलन नव प्रवर्तनों के रूप में आती है।

10.4.4 नवप्रवर्तनों की भूमिका (The role of Innovations)

अब आप यह समझ चुके हैं कि शुम्पीटर ने अपने मॉडल में आर्थिक विकास को अससत प्रक्रिया माना है, अब हम नवप्रवर्तनों की भूमिका का अध्ययन करेंगें।

नवप्रवर्तनों के रूप शुम्पीटर के अनुसार नवप्रवर्तन निम्न प्रकार हो सकता है।

1. किसी नवीन वस्तु का उत्पादन करना।
2. उत्पादन की किसी नवीन प्रविधि का प्रचलन होना नये बाजारों की खोज होना।
3. कच्चे माल के लिए नये पूर्ति स्रोतों का पता लगाना।
4. एकाधिकार स्थापित करने की तरह किसी उद्योग के नये संगठन को कार्यान्वित करना।

नवप्रवर्तनों के कार्य (Role of Innovator)-

शुम्पीटर के अनुसार आर्थिक विकास का कार्य स्वतः नहीं होता बल्कि इस कार्य को विशेष प्रयास व जोखिम के साथ शुरू करना होता है। यह कार्य नवप्रवर्तक अर्थात् उद्यमी करता है। पूँजीपति नहीं। पूँजीपति केवल पूँजी प्रदान करता है जबकि उद्यमी उसके प्रयोग का निदेशन करता है। शुम्पीटर का कहना है कि साहसी के सम्बन्ध में स्वामित्व नहीं बल्कि नेतृत्व अधिक महत्वपूर्ण होता है। अतः साधारण प्रबन्धकीय योग्यता वाले व्यक्ति में जोखिम उठाने व अनिश्चतता वहन करने की योग्यता नहीं होती। यह कार्य उद्यमी द्वारा किया जाता हैं इस प्रकार उद्यमी शुम्पीटर के विकास सिद्वान्त की केन्द्रीय शक्ति है। साहसी विकास का मुख्य प्रेरक श्रोत हैं। वह नवीनताओं का सृजनकर्ता है उत्पादन की तकनीक में कान्ति का अधिष्ठाता है और बाजारों के विस्तार का श्रेय भी उसे ही दिया जाता है। ***"साहसी अथवा उद्यमी की तुलना युद्व की व्यूह रचना करने वाले उस निडर व कुशाग्र बुद्वि वाले कमाण्डर से की जा सकती है, जो लड़ाकू फौज में प्रतिक्षण साहस, रणकौशल व उत्साह की भावना भरता रहता है।"*** **शुम्पीटर** के शब्दों में ***"स्थिर अर्थव्यवस्था में साहसी बहाव के साथ तैरता हैं, गतिशील अर्थव्यवस्था में उसे बहाव के विपरीत तैरना होता है। साहसी विकास मंच का नेता है अन्य उसके अनुगामी होते है। वह स्वाभिमानी एवं विवकेशील होता है। उसमें जूझने की प्रवृत्ति होती है। वह जीतने का संकल्प रखता है। और उसमें अपने आपको जीतने दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने की प्रबल इच्छा होती है। वह केवल लाभ के लिए ही जोखिम नहीं उठाता बल्कि सफलता प्राप्त करना भी उसका एक लक्ष्य होता है।"***

10.4.5 उद्यमी की भूमिका, एवं प्रेरित करने वाले तत्व (The Role of The Entrepreneur and The Motivating Factors)

अब तक के अध्ययन से आप उद्यमी के भूमिका एवं कार्यों से परिचित हो गए है। अब आप उद्यमी की भूमिका को प्रेरित करने वाले तत्व के विषय में अध्ययन करेंगें। उद्यमी को मुख्य रूप से तीन बातें प्रेरित करती है -

1. नवीन वाणिज्य साम्राज्य की स्थापना करने की लालसा।
2. अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने की इच्छा
3. अपनी शक्ति एवं प्रवीणता के प्रयोग करने की प्रसन्नता।

उद्योगों को अपना आर्थिक कार्य करने के लिए दो चीजों की आवश्यकता है। **प्रथम**- नई वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए आवश्यक तकनीकी ज्ञान की उपलब्धता। **द्वितीय**- ऋण के रूप में उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण की शक्ति अर्थात् बैंक साख की सुविधा। शुम्पीटर की धारणा थी की समाज में तकनीकी ज्ञान का एक ऐसा भंडार विद्यमान रहता है। जिसे अभी तक खोला नहीं गया है। और इसका प्रयोग पहले उद्यमी द्वारा किया जाता है।

इस तरह, संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विकास की दर समाज में तकनीकी ज्ञान भण्डार में परिवर्तन का फलन है। तकनीकी परिर्वतन की दर उद्यमियों के सक्रिय होने के स्तर पर निर्भर करती है और यह सक्रियता स्तर नये उद्यमियों के प्रकट होने एवं शाखा निर्माण की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है।

10.4.6 पूँजी, लाभ एंव ब्याज (Capital Profit and Interest)

शुम्पीटर के अनुसार पूँजी केवल वह स्तर है जिसके द्वारा उद्यमी जिन वस्तुओं को चाहता है। उनको अपने नियंत्रण में रखता है। अन्य शब्दों में पूँजी उत्पादन के साधनों को नये प्रयोगो की ओर ले जाने अर्थात् उत्पादन को नया मोड़ देने का साधन हैं। उनके अनुसार लाभ लागतों का अन्तर है।

शुम्पीटर के अनुसार-प्रतियोगी संतुलन में प्रत्येक वस्तु की कीमत उसकी उत्पादन लागत के

बराबर होती है। अतः लाभ नहीं उत्पन्न होते। नवप्रर्वतन से होने वाले गत्यात्मक परिवर्तनों के कारण लाभ उत्पन्न होते है। वे उतनी देर तक बने रहते है। जब तक कि नवप्रर्वतन सामान्य नहीं हो जाते। पूँजी और लाभ की तरह शुम्पीटर ब्याज को भी विकास की देन मानता है।

यह वर्तमान उपभोग का भविष्य के उपभोग पर अधिमान हैं। परन्तु लाभ की तरह यह विकास की सफलताओं का प्रतिफल नहीं है अर्थात् यह विकास की सफलताओं का प्रतिफल नहीं है बल्कि यह विकास पर रूकावट की तरह है। यह उद्यमीय लाभ पर एक कर की तरह हैं।

वृत्तीय प्रवाह को तोड़ना (Breaking The Circular Flow)- शुम्पीटर का मॉडल वृत्तीय प्रवाह को एक नवप्रवर्तन से भंग करने से प्रारम्भ होता है। जो एक उद्यमी लाभ कमाने के लिए एक नई वस्तु के रूप में करता है। शुम्पीटर की धारणा के अनुसार चूँकि एक पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पत्ति के साधनों के नये व अच्छे संयोग की सम्भावनायें सदा विद्यमान रहती है। अतः साहसी इन लाभ सम्भावनाओं का फायदा उठाने के लिए नये प्रयोग अर्थात् नवप्रवर्तन करते है जिनके लिए बैंको से ऋण लिया जाता है। चूँकि नवप्रवर्तनों में निवेश में जोखिम होती है। अतः उन्हे ऋण पर ब्याज देना होगा। नवप्रवर्तन जब एक बार सफल हो जाता है। और लाभ देने लगता है तब अधिक संख्या में अन्य उद्यमी उसका अनुकरण करने लगते है। एक क्षेत्र में नवप्रवर्तन सम्बन्ध क्षेत्रों में नवप्रवर्तनों को प्रोत्साहन दे सकता है। मोटरकार उद्यमी प्रारम्भ होने के परिणाम स्वरूप सड़कों रबर टायरों एवं पेट्रोल इत्यादि के उत्पादन में नये निवेशों की लहर फैला सकता है। परन्तु एक नव प्रवर्तन कभी शत-प्रतिशत नहीं होता है।

नवप्रवर्तन का चित्र द्वारा स्पष्टीकरण- रेखाचित्र में एक विशेष नवप्रवर्तन अपना रही फर्मों के प्रतिशत को अनुलम्ब अक्ष पर एवं समय को क्षतिज अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है।

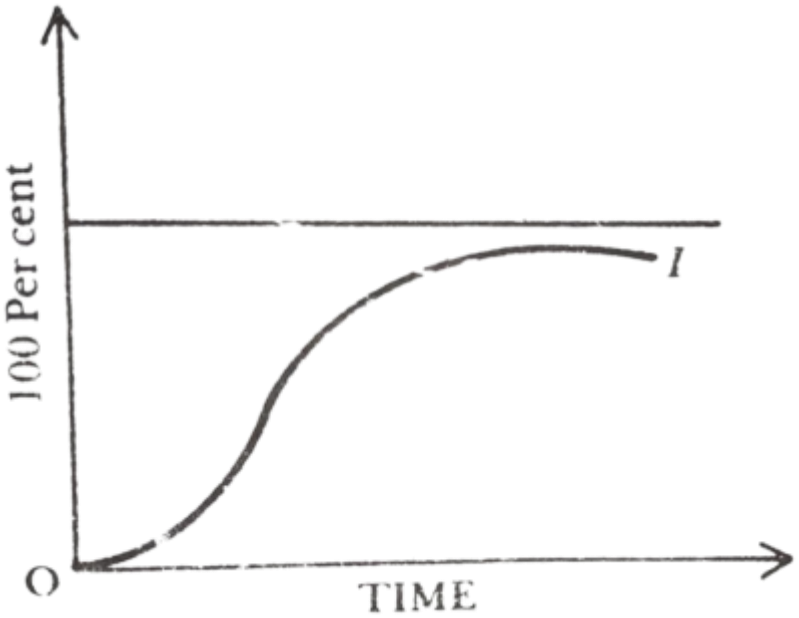

चित्र 10.1

वक्र प्रदर्शित करता है कि प्रारम्भ में फर्मे एक नवप्रवर्तन को धीरे-धीरे अपनाती है। शीघ्र नवप्रवर्तन अपना जोर पकड़ता है। परन्तु शत-प्रतिशत फर्मे इसे नहीं अपना पाती है।

10.4.7 पूँजीवादी विकास की चक्रीय प्रकिया (Cyclical Process of Capitalist Development)

प्रो. शुम्पीटर ने नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्री **प्रो. वॉलरस** के सामान्य संस्थिति के सिद्धान्त के आधार पर विकास में चक्रीय प्रवाह की कल्पना की।

शुम्पीटर ने पूँजीवादी विकास की चक्रीय प्रक्रिया की तीन अवस्थाओं को स्वीकार किया है-

1. **प्राथमिक लहर-** शुम्पीटर का विचार था कि नवप्रवर्तन हेतु जब बैंको से ऋण लिया जाता है तो साख का विस्तार होता है। नवप्रवर्तन हेतु किए गए निवेश में वृद्धि से मौद्रिक आय और कीमतें बढ़ने लगती है। जो आगे चलकर समस्त अर्थ समस्याओं के संचयी विस्तार की दशाएं उत्पन्न कर देती है। शुम्पीटर ने इस आर्थिक चेतना को उद्यमी ने नवप्रवर्तन की **प्राथमिक लहर** की संज्ञा दी है।
2. **द्वितीयक लहर-** बढ़ती हुई कीमतें लाभ को बढ़ाती है इससे उत्साहित होकर उद्यमी बैंको से ऋण लेकर निवेश को बढ़ाते है इससे उत्पादन का और अधिक विस्तार होता है लाभ की प्रवृत्तिया जहां से फर्म को प्रोत्साहन देती हे वहां आय व लाभ की सम्भावना नये विनियोगी को जन्म देने लगती है। फलस्वरूप बैंको से अधिक मात्रा में ऋण लिये जाते है। इससे साख-स्फीति की द्वितीयक लहर प्रेरित होती है। जो नवप्रवर्तन की प्राथमिक लहर पर अध्यारोपित हो जाती है। शुम्पीटर ने इसे **समृद्वि की आवश्यक दर** कहा है।
3. **तृतीयक लहर-** तृतीयक लहर में जब कुछ समय पश्चात नई वस्तुयें बाजार में आना शुरू हो जाती है जो पुरानी वस्तुओं को विस्थापित करती है। और दिवालियापन पुनः समायोजन एवं खपत की प्रक्रिया शुरू होती है। बाजार में नई वस्तुओं एवं फर्म के प्रवेश से उत्पादन इकाईयों में परस्पर प्रतिस्पर्धा होती है। शुम्पीटर ने इसे **सृजनात्मक विनाश की प्रक्रिया का प्रथम चरण कहा** है। पुरानी वस्तुओं की मांग घट जाती है। उनकी कीमते घट जाती है। लाभ के कम होने से पुरानी फर्मे जमा उद्यमी घटाती है और कुछ का तो दीवाला भी निकल जाता है। इस तरह नई फर्मो के सामने पुरानी फर्में बाजार में ठहर नहीं पाती। जब नवप्रवर्तक लाभों में से बैंक ऋण वापस करना शुरू कर देते है तो मुद्रा की मात्रा घट जाती है। और कीमते गिरने लगती है। लाभ कम हो जाते है अनिश्चितता एवं जोखिम बढ़ जाती हैं नवप्रवर्तक की प्ररेणा घटती है। और अन्त में समाप्त हो जाती है। असंतुलन एवं असामान्य की प्रक्रिया के फलस्वरूप बैंक अपना रूपया वापस लेने लगते है। जिससे मुद्रा विस्फीति की दशा उत्पन्न होती है। प्रवर्तन क्रियाओं से शिथिलता आती है। फलस्वरूप कीमतों व मौद्रिक आय में ह्रास होना शुरू हो जाता है। शुम्पीटर ने इस समस्या को **प्रतिसार अवस्था** कहा है।

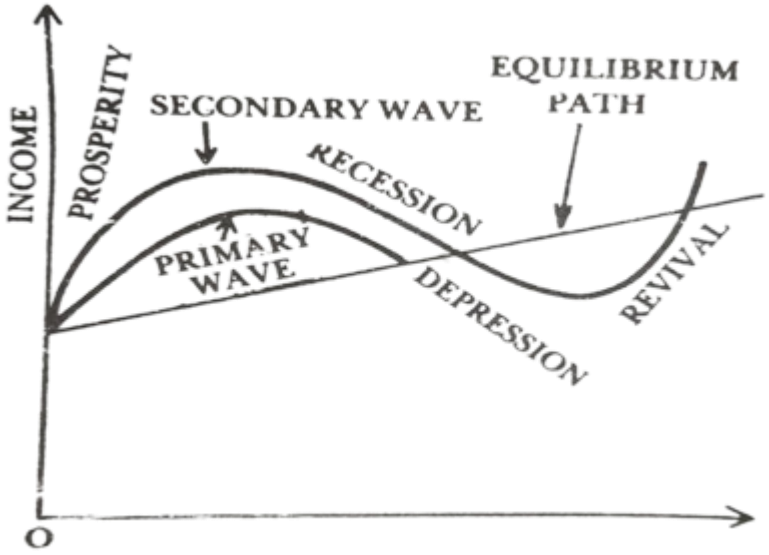

इस अवस्था के पश्चात नये सिरे से एवं नये ढ़ंग से नवप्रवर्तन किये जाते है। इससे नई तेजी प्रारम्भ हो जाती है। शुम्पीटर ने इसे **पुनरूत्थान की अवस्था** कहा है। इस तरह विकास की यह पूरी

प्रक्रिया अपने को पूर्व की भाँति दोहराती है। और अंततः देश की आर्थिक प्रणाली पुनः साम्य की स्थिति प्राप्त कर लेती है मन्दी के बाद का यह संतुलन बिन्दु पुराने संतुलन बिन्दु से ऊँचा होता है। शुम्पीटर के अनुसार- इस चक्रों की निश्चित अवधि नहीं होती और इन चक्रो को गम-खुशी के चक्र कहतें है।

शुम्पीटर के विकास प्रक्रिया का चित्र द्वारा प्रदर्शन-

क्षैतिज अक्ष पर समय एवं अनुलम्ब अक्ष पर राष्ट्रीय उत्पादन दर्शाया गया है। वक्र YPT दीर्घकालीन चक्रीय उतार-चढावो को दर्शाता है जब एक नवप्रर्वतन होता है तो अर्थव्यवस्था Y से ऊपर की ओर गति करती है। और वस्तुओं का उत्पादन बिन्दु P तक बढ़ता जाता है। कुछ समय पश्चात् जब यह नवप्रवर्तन समाप्त होना प्रारम्भ होता है। और नया नव प्रवर्तन इसका स्थान लेना शुरू कर देता है तो अर्थव्यवस्था P से खिसकर T पर आ जाती है। इस प्रकार सृजनात्मक विकास की प्रक्रिया के कारण अर्थव्यवस्था का नया संतुलन बिन्दु T पूर्व बिन्दु P से ऊपर है। जो अर्थव्यवस्था के विकास को प्रदर्शित करता है। शुम्पीटर के आर्थिक विकास की समस्त चक्रीय प्रक्रिया को चित्र 10.3 में दिखाया गया है।

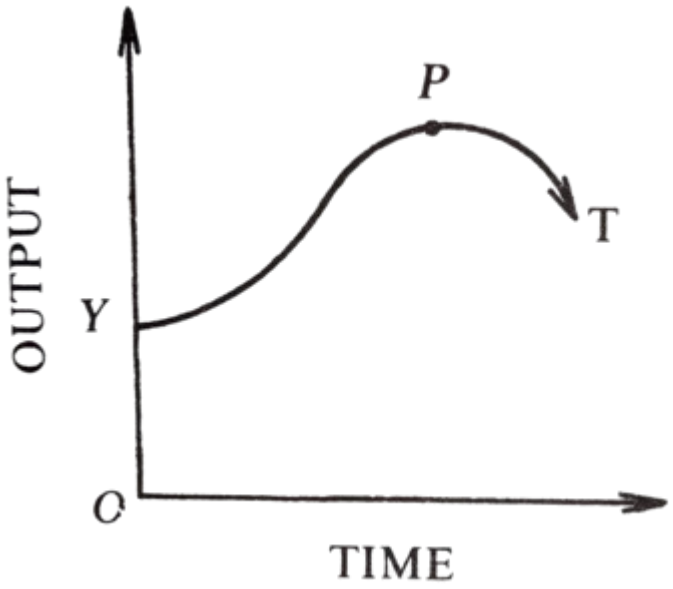

चित्र 10.3

जहां नवप्रवर्तन की द्वितीयक लहर को प्राथमिक लहर पर अध्यारोपित किया गया है। अति आशावादिता और सट्टे से समृद्धि की अवस्था में विकास तीव्र गति से होता है। जब सुस्ती प्रारम्भ होती है तो व्यापार चक्र संतुलन से नीचे मंदी की अवस्था में चलता है। अन्ततः एक अन्य नवप्रवर्तन आता है।

10.4.8 पूँजीवाद के विनाश की प्रकिया (The process of destruction of capitalism)

शुम्पीटर के विश्लेषण में उद्यमी ही प्रमुख व्यक्ति है। वह आकास्मिक एवं असतत ढ़ग से आर्थिक विकास करते है। ***"चक्रीय उतार-चढाव पूँजीवाद के अन्तर्गत आर्थिक विकास की कीमत है।"*** जो उसके गत्यात्मक समय मार्ग की स्थायी विशेषता है। दीर्घकाल में निरंतर प्रोद्योगिकीय प्रगति का परिणाम होगा कि कुल एवं प्रति व्यक्ति उत्पादन में असीम वृद्धि हो जायेगी क्योंकि ऐतिहासिकता से प्रौद्योगिकीय प्रगति के घटते प्रतिफल नही होते। जब तक प्रौद्योगिकीय प्रगति होती रहेगी तब तक लाभों दर की धनात्मक रहेगी इसलिए ना तो निवेश योग्य कोणों के श्रोत ही

सूख सकते है। और ना ही निवेश के अवसर ही समाप्त हो सकते है। परन्तु पूँजीवाद पद्वति के इस गुणगान का यह कदायि अर्थ नही है कि पूँजीवाद पद्वति को रहने दिया जाये, यह पद्वति मानव जाति के कन्धे से गरीबी का बोझ दूर नही कर सकती। इसलिए पूँजीवादी समाज में प्रति व्यक्ति आय के स्तर पर कोई ऊंची सीमा नहीं होती है। फिर भी पूँजीवाद की आर्थिक सफलता का परिणाम अंत में उसकी तबाही होगी। पूँजीवाद के भविष्य पर अंतिम टिप्पणी देते हुये शुम्पीटरनालिखा था ***"क्या पूँजीवाद क्या रहेगा? नहीं, मै समझता हूँ कि वह बच नहीं पायेगा। उनके अनुसार- पूँजीवाद की सफलता ही, इन सामाजिक संस्थाओं की जड़ खोदती है। और उसकी रक्षा करती है, और अनिवार्य रूप से ऐसी परिस्थितिया उत्पन्न करती है, जिसमें पूँजीवाद नहीं जी सकता, और प्रबलता से समाजवाद के स्पष्ट वारिस होने का संकेत करता हैं।"*** कार्ल मार्क्स की ही भांति शुम्पीटर भी इस धारणा के समर्थक थे कि पूँजीवाद का अन्त सुनिश्चित है। अन्य शब्दों को पूँजीवाद व्यवस्था अपने विनाश की दशाए स्वयं उत्पन्न करती है। शुम्पीटर ने पूँजीवाद के पतन के लिए तीन प्रमुख कारणों को उत्तरदायी बताया है। उद्यमीय कार्य का हास, बुर्जुआ परिवार का विखराव और पूँजीवादी समाज के संस्थानिक ढांचे का विघटन।

1. **उद्यमी कार्य का महत्व समाप्त होना (The entrepreneurial function loses its importance) -**प्रारम्भ में उद्यमी चक्रीय प्रवाह में व्यवधान उत्पन्न करके विकास क्रम को चालू करता है लेकिन धीरे-धीरे चक एक प्रकार से दैनिक कार्य हो जाता है। बड़े-बड़े उद्योगों में यह उनकी कार्य प्रणाली का ही एक आवश्यक अंग हो जाता है और इस प्रकार के उद्यमियों को अलग से कोई विशिष्ट महत्व नहीं रह जाता है। शुम्पीटर के शब्दों में - उद्यमियों के लिए कुछ भी करने को नहीं रह जाता लाभ गिरने लगता है। ब्याज शून्य हो जाता है उद्योग और व्यापार का प्रबन्ध एक सामान्य प्रशासन का रूप ले लेता है। और प्रबन्धक अन्ततोगत्वा नौकरशाही (मैनेजर) का रूप धारण कर लेते है।
2. **बुर्जुआ परिवार का बिखरना (The disintegration of the bourgeois family)-** धीरे-धीरे बुर्जुआ परिवार बिखरने लगता है। तर्क और बुद्धिमान पारिवारिक जीवन में प्रवेश कर जाते है। परिवार का भी लाभ, लागत के अनुसार लोग विचार करते है। फलस्वरूप घर का विचार ध्वस्त हो जाता है। और इसमें संग्रह की प्रवृति नष्ट हो जाती है जो कि पूँजीवाद की प्रेरक शक्ति है।
3. **पूँजीवादी समाज के संस्थानिक ढांचे का विघटन (Disintegration of the institutional structure of capitalist society)-** उद्यमी केनाकेवल आर्थिक एवं समाजिक कार्य समाप्त हो जाते है वरन् धन के एकत्रीकरण एवं बड़े-बड़े औद्योगिक संस्याओं के स्थापित हो जाने से निजी सम्पति एवं प्रसंविदा की स्वतन्त्रता आदि महत्वहीन होने हो जाती है जो पूँजीवादी की प्रमुख संस्थायें है। शुम्पीटर का कहना है कि पूँजीवाद की मौत का घंटा बजाने के लिए उपर्युक्त शक्तिया ही काफी नहीं है पूँजीवाद एक ऐसे असंतुष्ट बुद्धिजीवी वर्ग को जन्म देता है। जो बेरोजगार हैं एवं जिसके पास विचार स्वतन्त्रता जीवन के प्रति साहसी रहा है (नवप्रवर्तन) ये बुद्धिजीवी वर्तमान सामाजिक ढांचे के प्रति असंतोष को संगठित करके उसे नेतृत्व प्रदान करता है। जो पूँजीवाद की धारणा का विरोध करते है चूंकि बुद्धिजीवी स्वतः के संगठन द्वारा पूँजीवाद को समाप्त नहीं कर सकता अतः वह श्रमिको को संगठित करके इसका सहारा लेता है। धीरे-धीरे पूँजीवाद रूपी किला रक्षाहीन हो जाता है।

10.5 शुम्पीटर का सिद्धान्त एवं अल्प विकसित देश (Schumpeter's Model and Underdeveloped Countries)

अल्पविकसित देशों के साथ भी शुम्पीटर के सिद्धान्त की व्यवहार्थता सीमित है -

1. **भिन्न सामाजिक आर्थिक व्यवस्था (Different socioeconomic system)-** शुम्पीटर का सिद्धान्त उस विशेष सामाजिकआर्थिक व्यवस्था के अनुरूप है जो 18वीं एवं 19वीं,,21 शताब्दयों में अमेरिका एवं पश्चिमी यूरोप में वर्तमान थी। उस अवधि में वृद्धि की कुछ प्रत्याशंसाए पहले से विद्यमान थीं। परन्तु अल्पविकसित देशों में सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों बिल्कुल भिन्न होती है और सामाजिक एवं आर्थिक उपरिसुविधाओं के रूप में विकास की प्रत्याशंसाएं नहीं होती है। इस प्रकार उद्यमी के लिए प्रेरणा नहीं होती है।
2. **उद्यमिता का अभाव (Lack of entrepreneurship)-** शुम्पीटर का विकास वर्ग के अस्तिव पर निर्भर करता है परन्तु अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की बाधाओं में से एक यह हैं कि उनमें समुचित उद्यमता का अभाव होता है। ऐसे देशों में तकनीकी ज्ञान और लाभ की संभावनायें कम होने के कारण नये प्लांट एंव उपकरण में निवेश की प्रेरणा नहीं पाई जाती है। इसके अतिरिक्त पर्याप्त विद्यत यातायात प्रषिक्षित सेवावर्ग की कमी उद्यमी कार्य को हतोत्सहित करती है।
3. **समाजवादी देशों पर लागू नहीं (Not applicable to socialist countries)-** शुम्पीटर का विश्लेषण अधिकांश अल्पविकसित देशों पर व्यवहार्य नहीं है जिनकी प्रवृत्ति समाजवाद की और है। उदाहर के लिए सामजिक सुरक्षा के तरीकों का प्रवर्तन एवं उंचे आरोही आयकर उद्यमी वर्ग के विकास के शत्रु है क्यांकि वे लाभों को कम करते है।
4. **मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं पर लागू नहीं (Not applicable to mixed economies)-** शुम्पीटर का नवप्रवर्तन निजी उद्यमी हैं जो आज की मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं के उपयुक्त नहीं है। अल्पविकसित देशों में सरकार सबसे बड़ा उद्यमी होता है। विकास के लिए प्रमुख प्रेरणा सार्वजनिक एवं अर्द्ध सार्वजनिक क्षेत्रों से मिलती है। इस प्रकार शुम्पीटर का नवप्रवर्तक अल्पविकसित देशों में सीमित कार्य ही कर सकता है।
5. **नवप्रर्वतन नहीं बल्कि संस्थानिक परिर्वतन चाहिए (We need institutional change, not innovation)-** विकास प्रकिया को षुरू करने और उसे आत्म निर्भर बनाने के लिए केवल नवप्रर्वतन ही नहीं बल्कि संगठनात्मक ढॉचों व्यापार प्रथओं कुशल श्रम एवं उचित मूल्यों, वृत्तियों और प्रेरणाओं जैसे अनके साधनों का संयोग आवश्यक होता है।
6. **नवप्रर्वतन नहीं उनका परिपाचन चाहिए (We need digestion, not innovation)- हैनरी बालिच** के अनुसार- अल्पविकसित देशों में आर्थिक प्रकिया नवप्रर्वतन पर नहीं बल्कि वर्तमान नवप्रर्वतन की खपत पर आधारित होती है। क्योंकि अल्पविकसित देशों में उद्यमी नवप्रवर्तन करने की स्थिति में नहीं होते बल्कि वो उन्नत देशों में होने वाले नवप्रर्वतनों को अपनाते है।
7. **उपभोग की अवहेलना (Disregard for consumption)-** शुम्पीटर की प्रक्रिया उत्पादन की ओर झुकी है जबकि विकास प्रक्रिया उपयोग की ओर झुकी होती है। यह मूल्यांकन कल्याणकारी राज्य के प्रति वर्तमान समय के रूझान में लागू किया जाता है जिसमें मांग एवं उपभोग प्रमुख काम करते है। इसलिए शुम्पीटर का सिद्धान्त अल्पविकसित देशों पर लागू नहीं होता है।
8. **बचतों की अवहेलना (Disregard of savings)-** शुम्पीटर का बैंक ऋण पर एकमात्र बल निवेश में वास्तविक बचतों के भाग की अवहेलना कर देता है। यह आर्थिक विकास में घाटे के वित्त प्रबन्ध

बजट की बचतों, सार्वजनिक ऋण एवं अन्य राजकोषीय तरीकों के महत्व को क्षति पहुंचाता है।

9. **बाहरी प्रभावों की अवहेलना करता है (Disregards external influences)-** शुम्पीटर के अनुसार विकास उन प्रवर्तनों का परिणाम है जो अर्थव्यवस्था के अपने भीतर से उत्पन्न होते है। परन्तु अल्पविकसित देशों में परिवर्तन, अर्थव्यवस्था के भीतर से नहीं उत्पन्न होते बल्कि वे आयातित विचारों, औद्योगिकी एवं पूँजी का परिणाम होते है। अल्पविकसित देशों में पिछड़ी हुई प्रौद्योगिकी निम्न बचत संभाव्यता और पुरानी सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक संस्थाएं अर्थव्यवस्था के भीतर से विकास लाने की क्षमता नहीं रखती है।
10. **जनसंख्या एवं धन वृद्धि के प्रभाव की अवहेलना (Ignoring the effect of population and wealth growth)-** शुम्पीटर किसी देश के आर्थिक विकास पर जनसंख्या एवं धन की वृद्धि के प्रभाव को आंकने में असफल रहा। जनसंख्या वृद्धि की ऊंची दर विकासशील अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर घटा देती है। जबकि प्राकृतिक साधनों के नये श्रोत या उनका अधिक अच्छा प्रयोग विकास की गति को बढ़ा देता है।
11. **स्फीतिकारी शक्तियों का असन्तोषजनक विवेचना (Unsatisfactory analysis of inflationary forces) -** शुम्पीटर की पद्वति में विस्फितिकारी प्रेरणाएं विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग होती है। परन्तु इनमें दीर्घकालीन स्फीति नहीं होती है। दीर्घकालीन कीमत स्तर स्थिर रहता है पर अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी शक्तियां बहुत प्रबल होती है। राजनैतिक एवं श्रमसंघ मार्गो के माध्यम से सामाजिक मांग अर्थव्यवस्था से उतने की अपेक्षा अधिक खींच लेना चाहती हैं। जितना घरेलू उत्पादन एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से उससे प्राप्त किया जा सकता है। केवल विकास एवं सम्बन्ध निवेश नही बल्कि मांग अनुस्थापित अर्थव्यवस्था का समस्त सामाजिक वातारण ही स्फीतिकारी प्रवृत्तियों के लिए उत्तरदायी है।

10.6 शुम्पीटर के विकास मॉडल का अर्थव्यवस्था में महत्व (Importance of Schumpeter's Development model in the economy)

अब तक के अध्ययन से आप शुम्पीटर के विकास प्रक्रिया से भली प्रकार परिचित हो गए होगें अब हम शुम्पीटर मॉडल के महत्व का अध्ययन करेंगें-

शुम्पीटर का सिद्धान्त आर्थिक विकास के मुख्य साधन के रूप में स्फीतिकारी वित्त एंव नवप्रवर्तनों के महत्व को रेखांकित करता है। स्फीतिकारक वित्त व्यवस्था उन शक्तिशाली ढंगों में से एक मानी पाती है जिसे प्रत्येक अल्पविकसित देश किसीनाकिसी समय अपनाने का अवश्य प्रयास करता है। नवप्रवर्तनों से एक ओर उत्पादकता व दूसरी ओर से रोजगार में वृद्धि में होती है। यद्यपि यह पाश्चात्य पूँजीवाद की समस्याओं में सम्बन्ध रखता है। फिर भी जब एक बार औद्योगिकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाये तो यह निश्चित रूप से उन समस्याओं की ओर संकेत दे सकता है कि व्यर्थ एवं अतिरिक्त कठिनाईयों से कैसे बचा पाए जो आयोजनाओं एवं असमन्वित विकास में रहती है। व्यापार चक्रों को पैदा करने के सम्बन्ध में शुम्पीटर नव प्रवर्तनों के महत्व पर प्रकाश डाला हैं।

Benjamin Higgins, *"Tautological though the theory may be, there can be little doubt of its relevance (To under developed countries)"*

Henry c. Wallich इन्होने अपने एक लेख *'Some Notes Towards a theory of Derived development'* में शुम्पीटर मॉडल कर अध्ययन किया इनके अनुसार- "*It is full of internal unity"*

10.7 शुम्पीटर के मॉडल का बेंजामिन हिगिन्स द्वारा प्रस्तुत समीकरणों की सहायता से स्पष्टीकरण (Schumpeter's Model Explained Using Equations Presented by Benjamin Higgins)

1. उत्पादन फलन (Producition function)

$$= F (L, K, Q, T) \ldots\ldots\ldots (1)$$

जहाँ

O = उत्पादन स्तर L = श्रम शक्ति के आकार K = ज्ञात साधनों की पूर्ति को

Q= पूँजी की मात्रा का T = तकनीकी स्तर

2. बचत, मजदूरी, लाभ और ब्याज दर पर निर्भर होती है। (Saving Depends upon wages, profits and interest rate.)

$$S = \Delta (W, R, r) \ldots\ldots\ldots\ldots (2)$$

जहाँ

S= बचत W = मजदूरी दर R = लाभ की दर r = ब्याज की दर

3. कुल विनियोग को प्रेरित विनियोग एवं स्वतः विनियोग में बाँटा जा सकता है।

$$I = I_A + I_I \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (3)$$

जहाँ

I = कुल निवेश (Total investment)

I_I = प्रेरित निवेश (induced investment)

I_A = स्वायत निवेश (Automous investment)

4. प्रेरित विनियोग लाभ के स्तर एवं ब्याज की दर पर निर्भर होता है।

$$I_I = 1(R, r, Q) \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (4)$$

जहाँ

R = लाभ का स्तर r = ब्याज की दर Q = पूँजी का स्टॉक

5. स्वत: विनियोग साधनों की खोज एवं तकनीकी प्रगति पर निर्भर होता है

$$I_A = I_a (K, T) \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (5)$$

जहाँ

K = साधनों की खोज की दर T = तकनीकी प्रगति की दर

6. तकनीकी प्रगति और साधनों की खोज की दर साहसियों की पूर्ति पर निर्भर होती है।

$$T = T (E) \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (6)$$

$$K = K (E) \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (7)$$

जहाँ E = साहसियों की पूर्ति

7. साहसियों की पूर्ति लाभ की दर और सामाजिक वातावरण पर निर्भर करती है।

$$E = E (R, X) ………… (8)$$

8. कुल राष्ट्रीय उपज बचत और विनियोग के सम्बन्ध एवं अति गुणक पर निर्भर होती है।

$$= K (I-S) ……………… (9)$$

जहाँ

I = विनियोग S = cpr K = अति गुणक

9. मजदूरी बिल विनियोग के स्तर पर निर्भर होता है।

$$W = W (I) ……….. (10)$$

10. सामाजिक वातावरण आय के वितरण से निर्धारित होता है।

$$X = X (R/W) .... (11)$$

जहाँ

X = सामाजिक वातावरण R = लाभ W = मजदूरी

11. कुल राष्ट्रीय उपज लाभ एवं मजदूरी के बराबर होती है।

$$= R+W............. (12)$$

10.8 शुम्पीटर के विकास प्रारूप की आलोचना (Criticisms of Schumpeter's Development model)

मॉयर एवं **वाल्डविन** के अनुसार शुम्पीटर के सिद्धान्त को एक ऐसा प्रमुख कार्य कहना चाहिये जिसे निष्चय से स्मिथ, रिकार्डो मिल, मार्क्स, मार्शल एवं कीन्स जैसे अर्थशास्त्रियों के योग्य एवं समकक्ष माना जा सकता है। यह शानदार तर्क एक बड़े सैद्वान्तिक की अंतर्दृष्टि से आपूरित है। फिर भी वे इस सिद्वान्त की कटु आलोचनायें करते है।

1. **नवप्रवर्तन उद्यमी का कार्य नहीं (Innovation is not the work of an entrepreneur)-** शुम्पीटर के सिद्वान्त की समाप्त प्रक्रिया उद्यमी व नवप्रर्वतन पर आधारित है जिसे वह एक आर्दश व्यक्ति मानता है। यह भी 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में सम्भवस्तः जब नवप्रर्वतक उद्यमी या आविष्कारों द्वारा किये जाते है। परन्तु वर्तमान में सभी प्रकार के नवप्रर्वतन कम्पनियों के कार्य कम का एक आय है। इनके लिए किसी विशेष प्रकार की व्यक्ति आवश्यकता नहीं समझा गया है।
2. **आर्थिक विकास के लिए चक्रीय प्रकिया आवश्यक नहीं (Cyclical process is not necessary for economic development) -** शुम्पीटर के अनुसार नवप्रवर्तनों से आर्थिक विकास चक्रीय प्रक्रिया में होता है। परतुं यह सही नही। आर्थिक विकास के लिए मंदी वेतन का चक आवश्यकता नहीं। इसका सम्बन्ध निंरतर परिवर्तनों से होता है। जैसा कि नर्कसे में कहा है।
3. **नवप्रवर्तन ही विकास का मुख्य कारण नही (Innovation is not the main reason for development)-** शुम्पीटर नवप्रवर्तन को ही विकास का मुख्य कारण मानता है पंरतु यह वास्तविकता से दूर है, क्योंकि आर्थिक विकास केवल नवप्रवर्तनों पर निर्भर नहीं करता बल्कि कई अन्य आर्थिक एवं सामाजिक तत्वों पर निर्भर करता है।
4. **चर्कीय परिवर्तन नवप्रवर्तनों के कारण नहीं (Cyclical changes are not due to innovations)-** फिर मंदी व तेजी नवप्रवर्तनों के ही कारण नहीं होती इसके कई मनोविज्ञानिक, प्राकृतिक, वित्तिय आदि कारण भी होते है।
5. **बैंक साख को अधिक महत्व (More importance to bank credit)-** शुम्पीटर पूँजी निर्माण में

बैंक साख को आवश्यकता से अधिक महत्व देता है। बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थान अल्पकाल में तो बैंक से साख ऋण प्राप्त कर सकते है। परन्तु दीर्घकालीन नवप्रवर्तनों के लिए जिसमें पूँजी की अधिक आवश्यकता होती है। बैंक ऋण अपर्याप्त होते है। इसके लिए ऋण पत्र एवं नये शेयरो को बेचकर ही पूँजी प्राप्त की जा सकती है।

6. पूँजीवाद से समाजवाद की प्रक्रिया सही नही (The process from capitalism to socialism is not correct)- शुम्पीटर का पूँजीवादी से समाजवादाकी ओर जाने का विश्लेषण सही नहीं, वह इस बात का विश्लेषण नहीं करता कि पूँजीवाद समाज समाजवाद की ओर कैसे अग्रसर होता है। वह केवल यह बताता है कि उद्यमी के कार्यों में परिवर्तन होने से पूँजीवादी समाज का संस्थानिक ढांचा परिवर्तित हो रहा है। उसका पूँजीवाद के नाश का विश्लेषण भावुक है ना कि वास्तविक।

अन्त में, **मायर** एवं **बाल्डविन** के शब्दों में ***"शुम्पीटर विकास का बृहत सामाजिक आर्थिक विश्लेषण किया हैं उसकी सर्वत्र प्रशंसा की जाती है परंतु बहुत कम लोग उसके निष्कर्णो को स्वीकार करने के लिए तैयार है। उसका तर्क उत्तेजक है। उसका विश्लेषण उद्धयिक है पर वह पूर्ण रूपेण विश्वनीय नहीं है। उसका विश्लेषण एक तरफा है एवं उसने कई बातों पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया।"***

10.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. कार्ल मार्क्स का विचार ..... की ओर ले जाता है। (साम्यवाद **या** समाजवाद)
2. पूँजीवाद के पतन का अन्तिम कारण ..... है। (पूँजीवाद **या** समाजवाद)
3. शुम्पीटर आर्थिक विकास की प्रक्रिया की व्याख्या ..... से प्रारम्भ करते है। (चक्रीय प्रवाह **या** क्षैतिज प्रवाह)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. आर्थिक विकास एक सतत प्रकिया है।
2. शुम्पीटर के अनुसार अर्थव्यवस्था का विकास नवप्रवर्तन पर निर्भर करता है।

10.10 सारांश (Summary)

शुम्पीटर के विकास प्रारूप का अध्ययन करने के पश्चात् आप स्पष्ट रूप से इस बात से परिचित हो गए हैं कि शुम्पीटर एक ऐसी अर्थव्यवस्था की कल्पना करते है जो स्थिर संतुलन में हैं। अर्थात् जहाँ पूर्ण प्रतियोगी संतुलन होता है, जहाँ ना कोई लाभ ना कोई बचत की दर और ना कोई निवेश होते हैं, और ना ही कोई अनैच्छिक बेरोजगारी होती है। इसे शुम्पीटर ने वृत्तिय प्रवाह की संज्ञा दी है। शुम्पीटर कहते हैं कि कोई भी परिवर्तन बाहर से नही होता है बल्कि स्वयंभूत प्रेरणाओं से उत्पन्न होता है। शुम्पीटर ने अपने प्रारूप में स्पष्ट रूप से बताया है कि आर्थिक विकास एक असतत प्रकिया है, अर्थात् संतुलन की ऐसी हलचल है जो पूर्व स्थापित साम्य की स्थिति को सदा के लिए बदल देती है, और यह हलचल या बाधा नवप्रवर्तन के रूप में उत्पन्न होती है।

आप नवप्रवर्तनों की भूमिका से भली प्रकार से परिचित हैं और यह ठीक प्रकार से जानते हैं कि शुम्पीटर ने नवप्रर्वतनों के किन-किन कारणों को बताया है, जैसे- नई वस्तु का प्रचलन, उत्पादन की नई विधि का प्रचलन, नए बाजार खोजना आदि।

इस प्रकार शुम्पीटर ने अपने विकास प्रारूप में उपकमी की भूमिका एवं उसे प्रोत्साहित करने वाले श्रोतो का भी वर्णन किया है। उनके अनुसार **"विकास की दर समाज में तकनीकी ज्ञान के भण्डार में परिवर्तन का फलन है। तकनीकी परिवर्तन की दर उद्यमियों के सक्रिय होने के स्तर पर निर्भर करती है, और यह सकियता स्तर नए उद्यमियों के प्रकट होने एवं साख निर्माण की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है।"**

शुम्पीटर ने अपने प्रारूप में साख के महत्व को भी बताया है। आप जानते हैं कि शुम्पीटर अपने विकास प्रारूप में पूँजीवाद के विकास प्रकिया को तीन अवस्थाओं में बताते हैं। और इस प्रक्रिया के बाद शुम्पीटर ने

पूँजीवाद के विनाश की भी बात कही है। **शुम्पीटर** के शब्दों में ***"पूँजीवाद का अन्त सुनिश्चित है, जिसके पश्चात् समाजवाद का जन्म होना अनिवार्य है।"***

10.11 शब्दावली (Glossary)

- **वृद्धि (Growth):** वृद्धि से तात्पर्य कुछ समयावधि में पहले समयावधि की तुलना में उत्पादन में हुई मात्रा वृद्धि से हैं। वृद्धि विकसित देशों से सम्बन्धित है। यह नियमित घटनाओं का परिणाम है। एवं स्थैतिक साम्य से सम्बन्धित है। संवृद्धि से अर्थ, अधिक उत्पादन से है। यहे स्वाभाविक कृमिक व स्थिर गतिवाला परिवर्तन होता है।
- **विकास (Development):** विकास एक व्यापक संकल्पना है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय व प्रतिव्यक्ति आय में निरंतर व दीर्घकालीन वृद्धि होती है। आर्थिक विकास, अधिक उत्पादन, नवीन तकनीक व संस्थागत सुधारों के समन्वय से है। यह प्रेरित एंव असतत प्रकृति का परिवर्तन होता है। विकास के लिए संरचनात्मक परिवर्तनों का होना आवश्यक है। **रिचर्डसन** के अनुसार ***"आर्थिक विकास से तार्पय वस्तुओं एवं सेवाओं को अधिक से अधिक मात्रा में उपलब्ध करने से है जिसमें की जनसामान्य के भौतिक कल्याण में निरंतर एवं दीर्घकालीन वृद्धि हो सके।"***
- **वृत्तीय प्रवाह (Circular flow):** शुम्पीटर ने अपने विकास मॉडल में वृत्तीय प्रवाह का महत्वपूर्ण माना है। यह एक क्रम में चलता रहता है और यह नवप्रवर्तनों के कारण भय होता है।
- **नवप्रवर्तन (Innovation):** नवप्रवर्तन से तार्पय विकास धीरे-धीरे न होकर एक साथ बड़े प्रयत्न के कारण होता है। नवीन प्रवर्तनों से प्रेरित होकर अन्य विनियोजक भी प्रोत्साहित सट्टे की क्रियाओं को बढाते है। पूँजीगत उद्योगों का विकास होता है। प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि होकर लाभ की सम्भावनाये बढती है।
- **पूँजीवाद (Capitalism):** पूँजीपति वह व्यक्ति होता है जो आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में निवेश करने का साहस रखता है। एक प्रकार से पूँजीपति नवप्रवर्तनों के लिए मार्ग दर्शक होता है।
- **सृजनात्मक विनाश (Creative destruction):** शुम्पीटर के अनुसार जो नवप्रवर्तन होता है। वह चक्रीय प्रक्रिया से होता है। और सृजनात्मक विनाश की प्रक्रिया शुरू होती है। जब नई वस्तुयें बाजार में आना शुरू होती है जो पुरानी वस्तुओं को विस्थापित करती है। बाजार में नई वस्तुओं के प्रयोग से उत्पादन इकाईयों में परस्पर प्रतिस्पर्धा होती है जिसे सृजनात्मक विनाश की प्रक्रिया का प्रथम चरण कहा है।
- **मंदी (Recession):** मंदी से तात्पर्य मुद्रा विस्फीति से है शुम्पीटर के विकास प्रारूप में मंदी की स्थिति तब दृष्टिगोचर होती है। जब बैंक अपना रूपया वापस लेने लगती है। फलस्वरूप कीमतों व मौद्रिक आय में हास होना शुरू हो जाता है।
- **पुनरूत्थान (Resurgence):** पुनरूत्थान से तात्पर्य नई तेजी से है। मंदी की स्थिति के बाद जब अर्थव्यवस्था इस दुष्चक से धीरे-धीरे निकलने का प्रयास करती है। तो यह पुनरूत्थान की अवस्था कहलाती है।
- **स्फीति (Inflation):** स्फीति से तार्पय तेजी से है स्फीति मंदी से विपरीत स्थिति है। स्फीति की स्थिति में मुद्रा का मूल्य दिए रहा होता है। एवं कीमतों में तेजी से वृद्धि होती है। इसमें अर्थव्यवस्था का तेजी का समय भी कहा जाता है।
- **अल्पविकसित देश (Underdeveloped countries):** अल्पविकसित देश से तात्पर्य उन देशों से है जो विकास के स्तर पर नहीं पहुंच पाये है। और पिछड़े हुये है। अधिक जनसंख्या, बेरोजगारी आदि मूल्य विकसित देशों में सर्वाधिक पाये जाते है।

10.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to practice questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1.साम्यवाद 2.पूँजीवाद 3.चक्रीय प्रवाह

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. सत्य 2. सत्य

10.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- कुलवन्त राय गुप्त 2009-***विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन इतिहास***, सिद्धान्त।
- टी. आर. जैन, वी. के. ओरी-2006-07 "***डेवलेपमेन्ट इकोनोमिक्स'*** वी. के. पब्लिकेशन।
- ***Development Studies***, Vols 1&2, Ed. Robin Gnosh, K.R. Gupta and Premjit Malti.
- Kenneth K. Kurihava, ***the Keynesion theory of Economic Development*** (London-1961) P. 79-80.

10.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- अग्रवाल ए. एन., (2006) '***इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग)***' आशीष पब्लिशिंग हाऊस
- वी.सी. सिन्हा (2010) ***विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र***, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिहं (2001) ***आर्थिक विकास एवं नियोजन***, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम. एल. झिंगन (2002) ***आर्थिक विकास एवं नियोजन***, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., नई दिल्ली।
- आई. सी. धींगरा (1987), "***इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया'***, एस.चन्द्र, नई दिल्ली।

10.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type questions)

1. आर्थिक विकास के सम्बन्ध में शुम्पीटर के मत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए?
2. शुम्पीटर के इस दृष्टिकोण की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए कि "आर्थिक विकास आर्थिक जीवन के चक्राकार प्रवाह की दिशा में एक अचानक और असंतत परिवर्तन है" जो पहले से मौजूद संतुलन की स्थिति को हमेशा के लिए बदल देता है और विस्थापित कर देता है।
3. इस कथन के आलोक में विस्तार से चर्चा करें कि अल्पविकसित देशों में शुम्पीटर के सिद्धांत की प्रयोज्यता (Applicability) सीमित है।

इकाई 11- रोस्टोव की आर्थिक वृद्धि की अवस्थाएं
(Rostow's Stages of Economic Growth)

11.1 प्रस्तावना (Introduction)
11.2 उदेश्य (Objectives)
11.3 रोस्टोव की आर्थिक वृद्धि की अवस्थाएं (Rostow's Stages of Economic Growth)
11.3.1 पारंपरिक समाज (The Traditional Society)
11.3.2. उत्कर्ष की पूर्व शर्ते (The Pre-Conditions of Take off)
11.3.3. उत्कर्ष (Take off)
11.3.4. परिपक्वता की ओर अग्रसर (Drive to Maturity)
11.3.5. उच्च जन उपभोग का चरण (The Stage of High Mass Consumption)
11.4 रोस्टोव के सिद्धांत की सूक्ष्म समीक्षा (Critical Appraisal of Rostow's Theory)
11.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
11.6 सांराश (Summary)
11.7 शब्दावली (Glossary)
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
11.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Text)
11.11 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

इससे पहले की इकाई में आपनें मार्क्स के सिद्धांत एवं शुम्पीटर के सिद्धांत के बारें में पढ़ा एवं दोनों अर्थशास्त्रीयों के विकास से सम्बंधित विचारों को जाना। प्रस्तुत इकाई में आप रोस्टोव की आर्थिक वृद्धि की पाँच अवस्थाओं के बारे में पढ़ेंगे और जानेंगे की किसी भी देश में विकास किस प्रकार पाँच अलग-अलग अवस्थाओं में होता हैं। इकाई में आप मुख्य तरह से इन्हीं अवस्थाओं को विस्तार से एक-एक कर पढ़ेंगे एवं साथ ही इन सभी अवस्थाओं की विशेषताओं के बारे में भी आप जानेंगे। रोस्टोव के इस सिद्धांत को समझने के बाद आप इकाई में आगे इस सिद्धांत की आलोचनाओं के बारे में भी जानेंगे।

11.2 उदेश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़नें के बाद आप:

- ✓ रोस्टोव की आर्थिक वृद्धि की पाँच अवस्थाओं के बारे में पढ़ेंगे।
- ✓ पारंपरिक समाज के अर्थ को समझेंगे।
- ✓ उत्कर्ष की पूर्व शर्ते के बारे में जानेंगे।
- ✓ कोई भी देश उत्कर्ष किस प्रकार से करता हैं यह समझ सकेंगे।
- ✓ परिपक्वता की ओर अग्रसर के बारे में जानेंगे।
- ✓ उच्च जन उपभोग के चरण से क्या तात्पर्य हैं यह भी समझ सकेंगे।
- ✓ रोस्टोव के इस सिद्धांत की आलोचनाओं के बारे में जानेंगे।

11.3 रोस्टोव की आर्थिक वृद्धि की अवस्थाएं (Rostow's Stages of Economic Growth)

रोस्टोव के अनुसार किसी भी देश को आर्थिक वृद्धि तक पहुँचने के लिए इन पाँच अवस्थाओं से गुज़ारना पड़ता हैं, किसी भी देश में विकास इन्हीं चरणों के द्वारा संभव होता हैं। रोस्टोव ने अपने सिद्धांत में आर्थिक वृद्धि की पाँच अवस्थाओं का विवरण किया हैं। आर्थिक वृद्धि की इन पाँच अवस्थाओं को आप एक-एक कर विस्तार से पढ़ेंगे।

11.3.1. पारंपरिक समाज (The Traditional Society)

पारंपरिक समाज का चरण आर्थिक विकास की प्रक्रिया में प्रथम या आरंभिक चरण होता हैं। यह एक प्राचीन समाज हैं जहाँ आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उपयोग के लिए कोई रास्ता खुला नहीं हैं। यह प्राचीन तकनीक और भौतिक जगत के प्रति प्राचीन दृष्टिकोण पर आधारित समाज हैं।

प्रोफेसर रोस्टोव (Prof. Rostow) के अनुसार, ***"एक पारंपरिक समाज वह हैं जिसकी संरचना न्यूटोनियन-पूर्व विज्ञान और प्रौद्योगिकी और भौतिक दुनिया के प्रति-न्यूटोनियन-पूर्व दृष्टिकोण के आधार पर सीमित उत्पादन कार्यों के भीतर विकसित होती हैं। (A traditional society is one whose structure is developed within limited production functions based on Pre-Newtonian science and technology and on Pre-Newtonian attitute towards the physical world.)"***

इस परिभाषा के अनुसार पारंपरिक समाज की संरचना प्राचीन प्रौद्योगिकी और लोगों के रूढ़िवादी विचारों पर आधारित थी। आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की सुविधाएँ सर्वथा अनुपस्थित थीं। ऐसे समाजों में आर्थिक गतिविधियाँ सरल औजारों से चलती थीं और केवल घरेलू जरूरतों को पूरा करने तक ही सीमित थीं। वास्तव में, सभी पूर्व-औद्योगिक क्रांति समाजों को

पारंपरिक समाजों के रूप में लेबल किया जा सकता है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं था कि पारंपरिक समाज चरित्र में स्थिर था या ऐसे समाज में कोई आर्थिक परिवर्तन नहीं हो सकता था। इस समाज में भी अधिक भूमि को खेती के अंतर्गत लाकर कृषि उत्पादन बढ़ाया जा सकता है, परन्तु कृषि उत्पादन में वृद्धि घटते प्रतिफल के आधार पर होती हैं इसका मतलब यह हैं कि कृषि उत्पादन में वृद्धि घटते प्रतिफल के आधार पर थी। अत: कृषि उत्पादन घटती दर से बढ़ता हैं। कृषि के क्षेत्र में घटते प्रतिफल के अनुप्रयोग का कारण यह था कि आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ना तो उपलब्ध थी और ना ही इसे नियमित एवं व्यवस्थित ढंग से लागू किया जाता था। आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की अनुपलब्धता ने प्रति व्यक्ति प्राप्य उत्पादन के स्तर पर एक सीमा लगा दी है। इसके अलावा, पारंपरिक समाज भौतिक दुनिया के प्रति उत्साही नहीं था। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पारंपरिक समाज में पूरी अर्थव्यवस्था कृषि के इर्द-गिर्द घूमती थी और इस प्रकार, पारंपरिक समाज में कृषि मुख्य व्यवसाय था।

ऐसे समाज की संरचना चरित्र में पदानुक्रमित थी जिसमें परिवार, जाति, वंश और पंथ संबंध प्रमुख भूमिका निभाते हैं। इसकी कार्यप्रणाली अमीर कुलीनों और बड़े जमींदारों की सनक और इच्छाओं से बहुत प्रभावित थी। ऐसे व्यक्तियों का पारंपरिक समाज के पूरे क्षेत्र पर प्रभाव था। यह व्यक्ति वस्तुतः शासक थे और राजनीतिक शक्ति उनके हाथों में केंद्रित थी। वह राजस्व एकत्र करते थे और इसे अनुत्पादक मदों जैसे मंदिरों और स्मारकों के निर्माण, महंगी अंत्येष्टि (expensive funerals) और शादियों आदि पर खर्च करते थे। इस तरह के खर्च को फिजूलखर्ची नहीं माना जाता था क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य अपनी महिमा को बनाए रखना था। बल्कि उन्हें इस तरह के फिजूलखर्च करने में आनंद आता था।

विशेषताएँ (Features) :

पारंपरिक समाज की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं:

1. **कृषि की प्रधानता (Pre dominance of Agriculture):** इस अवस्था में कृषि लोगों का प्रमुख व्यवसाय हैं। अधिकतर लोग कृषि पर निर्भर हैं। हालाँकि, कृषि अपने पिछड़े चरण में है।
2. **परिवार एवं जाति व्यवस्था का महत्व (Significance of Family and Caste system):** इस चरण में सामाजिक व्यवस्था परिवार और जाति व्यवस्था पर आधारित हैं। व्यक्ति का परिवार और जाति उसकी सामाजिक स्वीकार्यता के साथ-साथ स्थिति भी निर्धारित करते हैं। व्यक्ति की योग्यता अपेक्षाकृत कम महत्व रखती हैं। भाग्यवादी रवैया तर्कसंगत निर्णयों और आर्थिक प्रगति के रास्ते में हमेशा बाधक होता हैं।
3. **राजनीतिक शक्ति (Political Power):** राजनीतिक शक्ति समाज में कुछ पारंपरिक रूप से प्रभावशाली सामाजिक समूहों के पास केंद्रित रहती है। आम तौर पर, इस समूह में जागीरदार, प्रशासक और योद्धा शामिल होते हैं। स्वार्थी उद्देश्यों के लिए देश की संसाधन क्षमता का दोहन किया जाता है।
4. **प्रौद्योगिकी (Technique):** आर्थिक विकास के इस चरण में विज्ञान और प्रौद्योगिकी लगभग अज्ञात हैं। इसे प्री-न्यूटोनियन चरण क्यों कहा जाता है के अंतर्गत।
5. **उच्च जन्म और मृत्यु दर (High birth and death rates):** जन्म दर और मृत्यु दर काफी ऊंची हुआ करती थी। यह सातत्य तब तक बना रहा जब तक कि इसे किसी कृत्रिम तंत्र द्वारा छेड़ा नहीं गया।

6. **विकास के मार्गों के बारे में अज्ञानता (Ignorance about development activities):** पारंपरिक समाज में लोग विकास के रास्तों से अनभिज्ञ रहते हैं।
7. **ह्रासमान प्रतिफल का नियम (Law of Dimnishing Returns):** पारंपरिक समाज में कृषि में घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है। इसका मतलब है कि कृषि उत्पादन घटती दर से बढ़ा हैं।
8. **आर्थिक गतिविधियाँ (Economic Activities):** पारंपरिक समाजों में आर्थिक गतिविधियाँ सरल औजारों से चलती थीं और केवल घरेलू जरूरतों को पूरा करने तक ही सीमित थीं।
9. **व्यय राज्य (Expenditure State):** उत्पन्न आय का बड़ा हिस्सा स्मारकों, धार्मिक स्थानों, युद्धों, महंगे अंत्येष्टि के निर्माण और शासकों की महिमा को बनाए रखने पर खर्च किया गया था।
10. **विकास की सीमा (Limit of Development):** प्रति व्यक्ति उत्पादन एक सीमा से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता। व्यापार की मात्रा और दिशा प्रमुख सामाजिक और राजनीतिक समूहों की इच्छा पर निर्भर करती है।

11.3.2. उत्कर्ष की पूर्व शर्तें (The Pre-Conditions of Take off)

आर्थिक विकास का दूसरा चरण उत्कर्ष के लिए पूर्व शर्त है, जिसमें अर्थव्यवस्था में निरंतर विकास के लिए पूर्व शर्त बनाई जाती है। इसे एक संक्रमणकालीन चरण कहा जा सकता है जो उत्कर्ष चरण के लिए पूर्व शर्तें बनाने के लिए जिम्मेदार है।

प्रो. रोस्टोव (Prof. Rostow) के अनुसार, ***"आर्थिक विकास का दूसरा चरण संक्रमण की प्रक्रिया में समाजों को शामिल करता है, यह अवधि तब होती है जब उत्कर्ष के लिए पूर्व शर्तें विकसित होती हैं।" (The second stage of economic development involves societies in a process of transition, a period when the precondition for take-off develop.)***

पूर्वापेक्षाएँ उत्कर्ष चरण वास्तव में उस चरण को संदर्भित करता है जिसमें उत्पादन के सभी महत्वपूर्ण कारक; भूमि, श्रम, पूंजी और उद्यम एकत्र किए जाते हैं। तकनीकी कारकों में सुधार और विकास किया जाता है। उद्यमी बचत जुटाने के लिए उभरते हैं। वह मुनाफ़े के लिए जोखिम उठाने को तैयार रहते हैं। अर्थव्यवस्था के औद्योगिक अभिविन्यास और देश के एकीकरण में प्रमुख राजनीतिक बाधाएँ दूर हो जाती हैं। इससे एकीकृत अर्थव्यवस्था की दिशा में रास्ते खुलते हैं। कृषि गतिविधियों में उत्पादक क्रांति आती है। हालाँकि, इस चरण में दृष्टिकोण और संगठनात्मक पैटर्न में धीमा बदलाव शामिल है। आर्थिक विकास की अवधारणा तब साकार होनी शुरू होती है जब पारंपरिक कठोरताएँ और रुकावटें टूटती हैं।

प्रो. रोस्टोव (Prof. Rostow) के शब्दों का उपयोग करें, यह विचार फैलता है कि आर्थिक प्रगति संभव है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए एक आवश्यक शर्त है, जिसे अच्छा माना जाता है, चाहे वह राष्ट्रीय गरिमा हो, निजी लाभ हो, सामान्य कल्याण हो या बच्चों के लिए बेहतर जीवन हो। शिक्षा कम से कम कुछ के लिए, आधुनिक गतिविधि की आवश्यकताओं के अनुरूप विस्तार और परिवर्तन। निजी अर्थव्यवस्था, सरकार या दोनों में नए प्रकार के उद्यमशील व्यक्ति आगे आते हैं, जो बचत जुटाने और लाभ आधुनिकीकरण की खोज में जोखिम लेने के इच्छुक होते हैं। पूंजी जुटाने के

लिए बैंक और अन्य संस्थाएँ सामने आती हैं। निवेश बढ़ता है, विशेष रूप से परिवहन, संचार और कच्चे माल में जिसमें अन्य देशों के आर्थिक हित हो सकते हैं। वाणिज्य का दायरा, आंतरिक और बाह्य विस्तृत होता है और यहाँ-वहाँ, नए तरीकों का उपयोग करते हुए, आधुनिक विनिर्माण उद्यम प्रकट होता है। रोस्टोव के अनुसार निरंतर औद्योगिक विकास के लिए पूर्व शर्तों में आम तौर पर तीन गैर-औद्योगिक क्षेत्रों में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता होती है, पहला, बाजार का आकार बढ़ाने, प्राकृतिक संसाधनों का उत्पादक रूप से दोहन करने और देश को अधिक प्रभावी ढंग से प्रशासित करने में राज्य की मदद करने के लिए विशेष रूप से परिवहन संचार, सड़कों आदि में सामाजिक उपरि पूंजी का विस्तार। दूसरा, कृषि में एक तकनीकी क्रांति ताकि ग्रामीण और शहरी दोनों ही बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि उपज बढ़े। तीसरा, निर्यात के लिए प्राकृतिक संसाधनों के कुशल उत्पादन और विपणन द्वारा वित्तपोषित पूंजीगत आयात सहित आयात से युक्त विदेशी व्यापार का विस्तार।

विशेषताएँ (Features):

उत्कर्ष चरण की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. **कृषि पर कम निर्भरता (Less Dependence on Agriculture):** पारंपरिक अर्थव्यवस्था की तुलना में, विकास के इस चरण में कृषि पर निर्भरता बहुत कम है। उद्योग, व्यापार, परिवहन तथा अन्य सेवाओं का विकास होने लगता है।
2. **अभिवर्धित दृष्टिकोण (Enlarged Outlook):** जनता का दृष्टिकोण बढ़ा हुआ है। लोग खुद को केवल स्थानीय मुद्दों तक सीमित रखने के बजाय राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विकास को महत्व देना शुरू कर देते हैं। आर्थिक गतिविधियों का क्षेत्र काफी विविध है।
3. **बचत और निवेश की दर (Rate of Savings and Investment):** इस चरण के दौरान बचत और निवेश की दरें अर्थव्यवस्था में शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद के 5% से कम होने की संभावना है।
4. **परिवहन के विकास पर बल (Stress on Development of Transport):** परिवहन एवं संचार के विकास एवं विस्तार पर अधिक बल दिया गया हैं।
5. **आर्थिक और सामाजिक लागत (Economic and Social Cost):** सरकारी राजस्व का एक हिस्सा स्कूलों के अलावा सड़कों, बांधों और पुलों के निर्माण के लिए समर्पित है। अस्पताल और अनुसंधान संस्थान। जिससे जीवनयापन की आर्थिक एवं सामाजिक लागत बढ़ने लगती है।
6. **जन्म दर में गिरावट (Decline in Birth Rate):** इस अवस्था में जन्म दर में गिरावट होने लगती है। ऐसा इसलिए होता हैं क्योंकि श्रमिकों की माँग कम होने लगती है, लोग अपने परिवार का आकार बढ़ाने के प्रति कम इच्छुक हैं।
7. **दृश्यों में परिवर्तन (Changes in Views):** लोगों के विचारों में स्पष्ट परिवर्तन आ रहा है। वह संसाधनों के उचित उपयोग से उत्पादन में वृद्धि के प्रति आश्वस्त हो जाते हैं।
8. **व्यक्तिगत कौशल का महत्व (Importance of Personal Skill):** व्यक्ति का महत्व अब उसकी सामाजिक या धार्मिक स्थिति पर निर्भर नहीं करता, बल्कि यह उसके व्यक्तिगत कौशल और क्षमताओं पर निर्भर करता है।
9. **रूढ़िवादिता का अंत (End of Conservatism):** रूढ़िवादिता समाप्त होती है और अर्थव्यवस्था आधुनिकीकरण के पथ पर आगे बढ़ती है।

10. विदेश व्यापार (Foreign Trade): इस चरण में, देश विदेशों से तैयार और पूंजीगत सामान का आयात करना शुरू कर देते हैं। कच्चे माल, खनिज और अर्ध-तैयार माल का निर्यात किया जाता है।

11.3.3. उत्कर्ष (Take off)

टेक-ऑफ़ किसी भी समाज के विकास में एक निर्णायक चरण है। यही वह काल है जिसमें विकास समाज की एक सामान्य स्थिति बन जाती है। उत्कर्ष प्रक्रिया आम तौर पर कुछ तीव्र उत्तेजनाओं से शुरू होती है जो राजनीतिक क्रांति, तकनीकी नवाचार या यहाँ तक कि एक अनुकूल अंतरराष्ट्रीय वातावरण से भी आ सकती है। विभिन्न क्षेत्रों के विस्तार से अर्थव्यवस्था की संरचना बदल जाती है जो आत्मनिर्भर विकास पर आगे बढ़ने लगती है। रोस्टोव (Rostow) के अनुसार, आत्मनिर्भर विकास उत्कर्ष चरण है।

रोस्टोव (Rostow) उत्कर्ष चरण को इस प्रकार परिभाषित करते हैं, "एक अंतराल के रूप में जिसके दौरान निवेश की दर इस तरह बढ़ जाती है कि प्रति व्यक्ति वास्तविक उत्पादन बढ़ जाता है और यह प्रारंभिक विकास चालक अपने साथ उत्पादन तकनीकों और आय प्रवाह की प्रकृति में मूलभूत परिवर्तन लाता है जो निवेश के नए पैमाने को बनाए रखता है और इसके कारण, प्रवृत्ति प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि जारी है।" दुसरे शब्दों में रोस्टोव ने टेकऑफ़ को, "एक औद्योगिक क्रांति के रूप में वर्णित किया, जो सीधे उत्पादन की पद्धति में मूलभूत परिवर्तनों से जुड़ी थी, जिसके अपेक्षाकृत कम समय में निर्णायक परिणाम हुए।" वह इसे "आधुनिक समाज के जीवन में एक महान परिवर्तन" कहते हैं। उत्कर्ष चरण की अवधि के दौरान, स्थिर विकास की बाधाएं और प्रतिरोध दूर हो जाते हैं एवं आर्थिक विकास की ताकतें विस्तारित होती हैं और समाज पर हावी हो जाती हैं। इस अवस्था में अर्थव्यवस्था बिना बाहरी सहायता के भी प्रगति कर सकती है। नए उद्योग स्थापित होते हैं जो अधिशेष उत्पन्न करने लगते हैं।

उत्कर्ष चरण की शर्तें :

रोस्टोव ने आर्थिक विकास प्रक्रिया को आत्मनिर्भर बनाने के लिए निम्नलिखित तीन संबंधित शर्तों का सुझाव दिया था:

1. निवेश की दर दस प्रतिशत से अधिक (Rate of Investment over Ten Percent): इस चरण में, राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर उस जनसंख्या की प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर से अधिक होनी चाहिए, जो कि उच्च स्तर पर स्थिर हो। इस दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि निवेश की दर जीएनपी (GNP) के दस प्रतिशत से अधिक हो।

2. अग्रणी क्षेत्रों का विकास (Development of Leading Sectors): इस चरण में, अर्थव्यवस्था में कुछ प्रमुख क्षेत्रों का विकास होता है। रोस्टोव ने अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को इस प्रकार विभाजित किया है:-

i. **प्राथमिक विकास क्षेत्र (Primary Growth Sector):** विकास की उच्च दर का वादा करने वाले उत्पादन के नए नवाचार और तकनीक इन क्षेत्रों की प्रमुख विशेषता है। जैसे, कपड़ा उद्योग इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था में प्राथमिक विकास क्षेत्र था। ग्रेट ब्रिटेन में औद्योगीकरण का क्रम इस क्षेत्र में विकास के बाद आया।

ii. **अनुपूरक विकास क्षेत्र (Supplementary Growth Sector):** इस क्षेत्र में विकास अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में विकास से जुड़ा हुआ है। उदाहरण के लिए, रेलवे के विकास ने कोयला, लोहा और इंजीनियरिंग उद्यमों के विकास को सुविधाजनक बनाया।

iii. **व्युत्पन्न विकास क्षेत्र (Derived Growth Sector):** यह वह क्षेत्र है जो अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों से अपनी विकास क्षमता प्राप्त करता है। उदाहरण के लिए, बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय से रेफ्रिजरेटर, टीवी आदि की माँग में वृद्धि होती है जिससे इन उद्योगों का विकास होता है।

3. **सामाजिक, राजनीतिक ढाँचा (Social, Political Framework):** उत्कर्ष चरण की एक और शर्त यह है कि देश का सामाजिक और राजनीतिक ढांचा आधुनिक और भारी उद्योगों के विकास के लिए अनुकूल हो जाए। इससे विकास प्रक्रिया के स्थिरीकरण के साथ-साथ घरेलू पूंजी निर्माण में भी मदद मिलती है।

उत्कर्ष चरण की विशेषताएँ (Features of Take off Stage):

उत्कर्ष चरण की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं:

1. **उत्पादक उद्यमों के लिए नई संभावनाएँ (New Possibilities for Productive Enterprises):** इसमें राजनीतिक, सामाजिक और संस्थागत परिवर्तनों की आवश्यकता है जो निवेश के पैमाने में प्रारंभिक वृद्धि को कायम रखेगा और परिणामस्वरूप नवाचारों की नियमित स्वीकृति और अवशोषण होगा। उत्कर्ष में जीएनपी के पाँच प्रतिशत से दस प्रतिशत तक निवेश में वृद्धि की कल्पना की गई है और उसके बाद, सामाजिक-संस्थागत परिवर्तन के माध्यम से, निवेश की यह दस प्रतिशत दर अर्थव्यवस्था की एक विशेषता बन जाती है। रोस्टोव का तर्क है कि यदि जनसंख्या वृद्धि प्रति वर्ष 1.5 प्रतिशत से ऊपर है या पूंजी-उत्पादन अनुपात 3.1 से अधिक है तो जीएनपी (GNP) का 12.5 प्रतिशत तक भी निवेश किया जाना चाहिए।
2. **उद्यमिता और पूंजी निर्माण (Entrepreneurship and Capital Formation):** सामाजिक-राजनीतिक क्रांति होती है, परिणामस्वरूप, पूंजी संचय की दर बढ़ जाती है। नवप्रवर्तन प्रारम्भ होता हैं। अर्थव्यवस्था में औद्योगिक विकास एवं विस्तार होता है तथा लाभ अर्जित होने लगता है इन्हें नई उत्पादन तकनीकों के अनुप्रयोग के साथ-साथ कृषि और उद्योग में पुनर्निवेशित किया जाता है, जिससे अर्थव्यवस्था का विदेशी व्यापार पैटर्न बदल जाता है।
3. **विदेशी पूंजी सहायक है लेकिन आवश्यक शर्त नहीं है (Foreign Capital is Helpful but not an Essential Condition):** ब्रिटेन और जापान में, टेक-ऑफ़ विदेशी पूंजी के बिना हुआ। जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका, यूएसएसआर और कनाडा में विदेशी पूंजी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
4. **अग्रणी क्षेत्रों का उद्भव (Emergence of Leading Sectors):** रोस्टोव अग्रणी क्षेत्रों को ऐसे क्षेत्रों के रूप में परिभाषित करते हैं जिनमें उच्च उत्पादकता के नए उत्पादन कार्य होते हैं, जो अधिकतम या पुनर्निवेश योग्य अधिशेष उत्पन्न करते हैं जिन्हें उत्पादक निवेश में वापस लाया जा सकता है। यह औद्योगीकरण को एक स्वचालित और संचयी प्रक्रिया में बदल देगा और अन्य उत्पादों के लिए प्रभावी मांग का एक चक्र शुरू हो जाएगा।

5. विदेश व्यापार (Foreign Trade): विदेशी व्यापार भी इस चरण में निवेश की दर बढ़ाने में योगदान देता है। खनिजों और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के उत्पादों का निर्यात बढ़ाया जाता है और राजस्व संयंत्र और उपकरणों के आयात पर खर्च किया जाता है।

6. माँग में वृद्धि (Increase in Demand): इस चरण को विशेष रूप से उपभोक्ता वस्तुओं की माँग के स्तर में विशेष वृद्धि द्वारा चिह्नित किया जाता है। इससे निवेश करने की प्रेरणा मिलती है। अधिक रोजगार के अवसरों के साथ-साथ औद्योगिक विस्तार, बढ़े हुए निवेश का अपरिहार्य परिणाम है।

7. तकनीकी विकास (Technical Development): कृषि एवं औद्योगिक कार्यों में उत्पादन की नई तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। कृषि का व्यावसायीकरण हो गया है। किसान उत्पादन की नवीन तकनीक के अभ्यस्त हो जाते हैं। उत्पादन के सभी क्षेत्रों में विकास तकनीकों को व्यापक रूप से अपनाया जाता है।

8. सरकारी नीति (Government Policy): इस चरण में सरकारी नीति भी आर्थिक विकास के लिए अनुकूल हो जाती है। सरकार बेहतर उत्पादन विधियों के लिए तकनीकी अनुसंधान और प्रशिक्षण में मदद करती है। नए उद्यमियों को प्रोत्साहन मिलता है। निवेश को बढ़ावा मिलता है।

9. छोटी अवधि (Short Period): उत्कर्ष चरण की अवधि काफी छोटी होती है, जो लगभग दो या तीन दशकों तक चलती है।

10. आर्थिक क्रांति (Economic Revolution): वास्तव में, यह आर्थिक क्रांति का एक चरण है जिसमें एक अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर और स्व-उत्पादक आर्थिक विकास रखती है।

11.3.4. परिपक्वता की ओर अग्रसर (Drive to Maturity)

उत्कर्ष चरण के बाद परिपक्वता चरण की ओर प्रस्थान होता है। **रोस्टोव (Rostow)** के अनुसार, ***"परिपक्वता को उस चरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें एक अर्थव्यवस्था उन मूल उद्योगों से आगे बढ़ने की क्षमता प्रदर्शित करती है जो उत्कर्ष को संचालित करते हैं। इसकी तकनीक अपने संसाधनों की एक विस्तृत श्रृंखला में सबसे उन्नत फलों को अवशोषित करने और कुशलतापूर्वक लागू करने की क्षमता प्रदर्शित करती हैं।"*** **रोस्टोव** ने आगे परिपक्वता को ***"उस अवधि के रूप में परिभाषित किया है जब समाज ने अपने संसाधनों के बड़े पैमाने पर आधुनिक प्रौद्योगिकी की सीमा को प्रभावी ढंग से लागू किया है।"*** इस काल में अनेक तकनीकी परिवर्तन होते हैं तथा समाज तकनीकी परिपक्वता तक पहुँचता है। नई उत्पादन तकनीकें जन्म लेती हैं और पुरानी तकनीकें लुप्त हो जाती हैं। इस अवधि के दौरान बचत और निवेश की दर इतनी बढ़ जाती है कि आर्थिक विकास स्वचालित हो जाता है। निर्यात में तेजी से बढ़ोतरी होती हैं, जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था परिपक्वता की ओर बढ़ती है, प्रति व्यक्ति कुल पूंजी बढ़ती है। नई प्रौद्योगिकी के विविध अनुप्रयोगों के साथ-साथ औद्योगीकरण व्यापक हो गया है। देश तकनीकी के साथ-साथ आर्थिक विकास के संस्थागत-मापदंडों को लेकर भी आत्मनिर्भर बनता है। नए अग्रणी क्षेत्र बनाए गए हैं। ग्रामीण गतिविधियों में संलग्न जनसंख्या के अनुपात में गिरावट आ रही है। लोग शहरी क्षेत्रों में रहना पसंद करते हैं। कार्यबल तकनीकी रूप से कुशल हो जाता है। वास्तविक मजदूरी बढ़ती है, कार्यबल अधिक आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा पाने के लिए स्वयं को संगठित करता है।

परिपक्वता अवस्था की ओर बढ़ने की विशेषताएँ:

1. **श्रम शक्ति के चरित्र में परिवर्तन (Change in Character of Labour Force):** इस चरण के दौरान, प्रसव का चरित्र बदल जाता है। यह मुख्य रूप से कुशल हो जाता है। वास्तविक मजदूरी बढ़ने लगती है और मजदूर अधिक आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा पाने के लिए खुद को संगठित करते हैं।
2. **उद्यमिता के चरित्र में परिवर्तन (Change in the Character of Enterpreneurship):** इस चरण के दौरान, उद्यमिता का चरित्र बदल जाता है। मजबूत और कड़ी मेहनत करने वाले स्वामी, कुशल और विनम्र-कुशल प्रबंधकों को रास्ता देते हैं।
3. **निवेश दर में वृद्धि (Rise in Investment Rate):** इस अवधि के दौरान, निवेश दर 10% जीएनपी से बढ़कर जीएनपी के लगभग 20% तक पहुँच जाती है।
4. **तकनीकी परिवर्तन (Technical Changes):** इस अवधि के दौरान, तकनीकी परिवर्तन होते हैं और समाज तकनीकी परिपक्वता चरण तक पहुँच जाता है। नई उत्पादन तकनीकें जन्म लेती हैं और पुरानी तकनीकें लुप्त हो जाती हैं।
5. **निर्यात में वृद्धि (Increase in Exports):** इस दौरान लोगों को निर्यात में तेजी से बढ़ोतरी होती है।
6. जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर स्थानांतरण हो रहा है।
7. रोज़गार की स्थितियाँ काफी बदल जाती हैं। कृषि पर निर्भरता कम हो जाती है। श्रमिक अधिक आत्मनिर्भर और बेहतर स्थिति में बनते हैं।
8. आधुनिक तकनीकें उत्पादन की सभी लाइनों में व्यापक हो गई हैं।
9. अर्थव्यवस्था दुनिया के विकसित देशों के बीच महत्व का दर्जा अर्जित करती है।
10. देश में नई राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाओं की स्थापना हुई।
11. दूसरे देशों पर निर्भरता काफी कम हो गई है।
12. उत्पादन का संगठन कुशल कर्मियों द्वारा किया जाता है।
13. प्रति व्यक्ति आय और लोगों का जीवन स्तर काफी ऊंचे स्तर पर पहुँच गया।
14. नए अग्रणी क्षेत्र बनाए गए हैं।
15. परिपक्वता की अवस्था टेकऑफ़ अवस्था के 40-60 वर्षों के बाद पहुँचती है।

11.3.5. उच्च जन उपभोग का चरण (The Stage of High Mass Consumption)

उच्च जन उपभोग का चरण आर्थिक विकास का अंतिम और सबसे महत्वपूर्ण चरण है। इसमें उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है, सुख-सुविधा और विलासिता का उपभोग आम बात हो गई है। अर्थव्यवस्था का ध्यान उत्पादन से उपभोग और लोगों के कल्याण पर केंद्रित हो गया है। इस चरण में, जनसंख्या का गांवों से शहरों की ओर प्रवास एवं ऑटोमोबाइल और टिकाऊ उपभोग की वस्तुओं और घरेलू उपकरणों का व्यापक उपयोग होता है। रोस्टोव के अनुसार, इस चरण में, "समाज का ध्यान आपूर्ति से माँग की ओर, उत्पादन की समस्याओं से उपभोग की समस्याओं और व्यापक अर्थों

में कल्याण की समस्याओं की ओर स्थानांतरित हो जाता है।" रोस्टोव का मानना है कि निम्नलिखित दिशाओं में नियोजित संसाधन समाज के कल्याण को बढ़ा सकते हैं।

सबसे ***पहले***, अंतरराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त करने और बाहरी शक्ति और प्रभाव के संतुलन के लिए सैन्य और विदेशी नीतियों के लिए बढ़े हुए संसाधनों को आवंटित किया जाना चाहिए। कुछ देशों द्वारा इस नीति का अनुसरण किया गया। उनका मुख्य उद्देश्य नई दुनिया को जीतने और दुनिया की सर्वोच्च शक्ति बनने की इच्छा में अपनी सीमाओं से परे देखना था।

दूसरे, परिपक्व अर्थव्यवस्था के संसाधनों को समाज के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए। राष्ट्रिय आय का पुनर्वितरण करके, प्रगतिशील कराधान के माध्यम से, श्रमिक वर्ग को अधिक अवकाश और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करके इस उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है। समाज के कमजोर वर्गों को मुफ्त शिक्षा और मुफ्त चिकित्सा सहायता अन्य उपाय हैं जो सामाजिक कल्याण को बढ़ावा दे सकते हैं।

तीसरा, राज्य को अपने संसाधनों को भोजन, आश्रय और कपड़े जैसी जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं से परे उपभोग स्तर के विस्तार के लिए निर्देशित करना चाहिए। राज्य को बेहतर गुणवत्ता वाला भोजन, साफ सुथरा आवास, बेहतर किस्म के कपड़े उपलब्ध कराने चाहिए। इसके साथ ही, राज्य को टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं जैसे सस्ते ऑटोमोबाइल, बिजली के उपकरण और अन्य घरेलू गैजेट की खपत को प्रोत्साहित करना चाहिए।

रोस्टोव के विकास के चरणों की तुलना मनुष्य के जीवन के पाँच चरणों से की जा सकती है। विकास के चरणों में पारंपरिक समाज, आगे बढ़ने की पूर्व शर्तें, परिपक्वता और बड़े पैमाने पर उपभोग का एक क्रम होता है। इसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी बचपन, किशोरावस्था, युवावस्था, परिपक्वता और बुढ़ापे के क्रम से चलता है। जिस प्रकार मनुष्य वृद्धावस्था तक पहुँचने तक एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक यात्रा करता है ,उसी प्रकार समाज भी एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक चलता रहता है जब तक कि वह सामूहिक उपभोग की अवस्था तक नहीं पहुँच जाता। जिस प्रकार मनुष्य की मृत्यु के बाद भविष्यवाणी करना असंभव है, उसी प्रकार सामूहिक उपभोग के युग के बाद समाज के व्यवहार के बारे में भविष्यवाणी करना असंभव है।

उच्च जन उपभोग की विशेषताएँ:

1. आराम और विलासिता का उपभोग बढ़ता है।
2. निवेश की दर जीएनपी के 20% से काफी ऊपर बढ़ जाती है।
3. लोगों का जीवन स्तर बढ़ता है।
4. समाज एक कल्याणकारी राज्य की भूमिका निभाता है।
5. कुल और प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक हो जाती है।
6. यह उपभोक्ता संप्रभुता का काल है।
7. गाँव से शहरों की ओर जनसंख्या के प्रवास की प्रवृत्ति।
8. हर किसी के लिए वित्तीय सुरक्षा बढ़ रही है और पूर्ण रोज़गार का चरण जारी है।
9. यह एक प्रकार का समृद्ध और प्रगतिशील समाज है जिसमें "भूख एक ऐसी चीज़ है जिसके बारे में पढ़ा जाता है और गरीबी एक स्मृति है।"
10. ऑटोमोबाइल, टिकाऊ उपभोग वस्तुओं और घरेलू उपकरणों का व्यापक उपयोग।

आर्थिक विकास के पाँच चरणों में यह उच्च जन उपभोग का चरण है और अंतिम चरण अधिक उत्पादन और अधिक उपभोग के लक्ष्य की प्राप्ति का प्रतिनिधित्व करता है। रोस्टोव के अनुसार, आर्थिक विकास के इन पाँच चरणों से परे भविष्यवाणी करना कठिन है। हालाँकि, यह वर्गीकरण कोई स्थिर वर्गीकरण नहीं है, यह आर्थिक विकास के विभिन्न चरणों का एक गतिशील वर्गीकरण है।

11.4 रोस्टोव के सिद्धांत की सूक्ष्म समीक्षा (Critical Appraisal of Rostow's Theory)

1. **विकास के लिए परम्परागत समाज आवश्यक नहीं (Traditional Society Not Necessary for Development):** आलोचकों के अनुसार यह सत्य नहीं है कि प्रत्येक देश मूलत: पारंपरिक समाज के प्रथम चरण से गुजरता है। दुनिया में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया जैसे देश हैं जो पारंपरिक समाज से मुक्त पैदा हुए थे।
2. **पूर्व शर्ते उत्कर्ष से पहले नहीं हो सकतीं (Preconditions May not Precede the Take-off):** आलोचकों के अनुसार, पूर्व शर्तों का चरण भी उत्कर्ष चरण से पहले किया जाना आवश्यक नहीं है। उदाहरण के लिए, यह मानने का कोई कारण नहीं है कि कृषि क्रांति और परिवहन में सामाजिक उपरि पूंजी का संचय शुरू होने से पहले होना चाहिए।
3. **विभिन्न चरणों का ओवरलैप होना (Overlapping of Different Stages):** अधिकांश देशों के सामान्य अवलोकन से पता चलता है कि कृषि का विकास प्रारम्भिक अवस्था में भी जारी रहा। उदाहरण के लिए, न्यूजीलैंड और डेनमार्क के मामले में कृषि विकास प्रारंभिक चरण में भी जारी रहा। यह विभिन्न चरणों में काफी ओवरलैपिंग दिखाता है।
4. **आधार का अभाव (Lack of Basis):** रोस्टोव एक चरण को दूसरे से स्पष्ट रूप से अलग करने का कोई आधार प्रदान नहीं करता है। यह पता लगाना मुश्किल है कि एक विशेष चरण कब शुरू होता है और दूसरा कब समाप्त होता है। कुज़नेट्स के अनुसार, प्रथम दृष्टया पूर्व शर्तों और उत्कर्ष चरणों के ओवरलैप होने की उम्मीद करने का मामला बनता है।
5. **सभी देशों पर लागू नहीं (Not Applicable to All Countries):** प्रो. मेयर (Prof. Meir) के अनुसार, "रोस्टोव का चरणों का विश्लेषण सभी देशों पर लागू नहीं हो सकता है। कुछ देश वास्तव में, अपनी विकास प्रक्रिया के दौरान कुछ चरणों में छलांग लगा सकते हैं।"
6. **अनिश्चितता (Uncertainty):** रोस्टोव का चरण विश्लेषण केवल चरणों का क्रम बताता है। यह आर्थिक विकास के संबंध में घटनाओं की भविष्यवाणी करने में विफल रहता है। इसके अलावा, विकास के पाँचवें चरण के बाद क्या होगा, यह रोस्टोव के विकास विश्लेषण के दायरे से परे है।

11.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

1. पारंपरिक समाज का चरण आर्थिक विकास की प्रक्रिया में .....चरण होता हैं। (प्रथम या द्वितीय)
2. उत्कर्ष चरण की अवधि काफी.....होती हैं। (बड़ी या छोटी)
3. रोस्टोव (Rostow) के अनुसार, आत्मनिर्भर विकास .....चरण है। (परिपक्वता या उत्कर्ष)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए -

1. परिपक्वता की ओर अग्रसर के दौरान, उद्यमिता का चरित्र बदल जाता है।
2. रोस्टोव के विकास के चरणों की तुलना मनुष्य के जीवन के पाँच चरणों से नहीं की जा सकती है।

11.6 सांराश (Summary)

प्रस्तुत इकाई में आप रोस्टोव के आर्थिक वृद्धि के सिद्धांत के बारे में पढ़ चुके हैं, रोस्टोव नें अपने सिद्धांत में आर्थिक वृद्धि को प्राप्त करने की पाँच अवस्थाएं दी हैं, जोकि हर किसी देश या अर्थव्यवस्था में देखी जा सकती हैं। रोस्टोव के अनुसार हर एक देश आर्थिक वृद्धि को प्राप्त करने के लिए इन पाँच अवस्थाओं से गुज़रता हैं, विकशित देश आखिरी अवस्था हैं होते हैं और अविकशित देश शुरु की अवस्था में देखे जाते हैं।

इसमें सबसे ***पहली*** अवस्था हैं पारंपरिक समाज, यह एक प्राचीन समाज हैं जहाँ आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उपयोग के लिए कोई रास्ता खुला नहीं हैं। यह प्राचीन तकनीक और भौतिक जगत के प्रति प्राचीन दृष्टिकोण पर आधारित समाज हैं। ***दूसरी*** अवस्था हैं उत्कर्ष की पूर्व शर्ते, ईसमें अर्थव्यवस्था में निरंतर विकास के लिए पूर्व शर्त बनाई जाती है। इसे एक संक्रमणकालीन चरण कहा जा सकता है जो उत्कर्ष चरण के लिए पूर्व शर्ते बनाने के लिए जिम्मेदार है। उत्कर्ष चरण वास्तव में उस चरण को संदर्भित करता है जिसमें उत्पादन के सभी महत्वपूर्ण कारक; भूमि, श्रम, पूंजी और उद्यम एकत्र किए जाते हैं। ***तीसरी*** अवस्था हैं उत्कर्ष, यह वो काल है जिसमें विकास समाज की एक सामान्य स्थिति बन जाती है। उत्कर्ष प्रक्रिया आम तौर पर कुछ तीव्र उत्तेजनाओं से शुरू होती है जो राजनीतिक क्रांति, तकनीकी नवाचार या यहाँ तक कि एक अनुकूल अंतरराष्ट्रीय वातावरण से भी आ सकती है। ***चौथी*** अवस्था परिपक्वता की ओर अग्रसर, इसे उस अवधि के रूप में परिभाषित किया है जब समाज ने अपने संसाधनों के बड़े पैमाने पर आधुनिक प्रौद्योगिकी की सीमा को प्रभावी ढंग से लागू किया है। इस काल में अनेक तकनीकी परिवर्तन होते हैं तथा समाज तकनीकी परिपक्वता तक पहुँचता है। ***पाँचवीं*** अवस्था हैं उच्च जन उपभोग का चरण, यह आर्थिक विकास का अंतिम एवं सबसे महत्वपूर्ण चरण है। इसमें उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है, सुख-सुविधा और विलासिता का उपभोग आम बात हो गई है। अर्थव्यवस्था का ध्यान उत्पादन से उपभोग और लोगों के कल्याण पर केंद्रित हो गया है।

11.7 शब्दावली (Glossary)

- **प्रौद्योगिकी (Technology):** प्रौद्योगिकी, व्यावहारिक और औद्योगिक कलाओं और प्रयुक्त विज्ञानों से संबंधित अध्ययन या विज्ञान का समूह है। कई लोग तकनीकी और अभियान्त्रिकी शब्द एक दूसरे के लिए प्रयुक्त करते हैं।
- **ह्रासमान प्रतिफल का नियम (Law of Diminishing Returns):** घटते प्रतिफल का नियम अर्थशास्त्र का एक सिद्धांत है। यह कानून बताता है कि उत्पादन प्रक्रिया में, जब उत्पादन के किसी एक कारक की मात्रा बढ़ाई जाती है, तो उत्पादन में वृद्धि धीरे-धीरे कम हो जाएगी।
- **बचत (Savings):** बचत का मतलब है, आय का वह हिस्सा जो खर्च ना करके भविष्य के लिए अलग रखा जाए।
- **निवेश (Investment):** निवेश का अर्थ है उच्च रिटर्न की आशा में किसी विशेष क्षेत्र में धन या संसाधनों का उपयोग करना।
- **श्रम शक्ति (Labour Force):** श्रम शक्ति का मतलब है, किसी देश या समाज में काम करने की क्षमता रखने वाले लोगों का समूह, इसके अंतर्गत 15 वर्ष से 60 वर्ष तक के लोग सम्मलित होते हैं।

- **राष्ट्रीय आय (National Income):** राष्ट्रीय आय का अर्थ साधन आय का योग है। जिसमें किसी देश के सामान्य निवासियों द्वारा प्रदान की गई सामग्री सेवाओं के बदले में प्राप्त आय (किराया, ब्याज, लाभ, मजदूरी) का योग होता है।

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए -

1. प्रथम 2. छोटी 3. उत्कर्ष

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए -

1. सत्य 2. असत्य

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- वी.सी. सिन्हा (2010) ***विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र***, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिहं (2001) ***आर्थिक विकास एवं नियोजन***, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन (2002) ***आर्थिक विकास एवं नियोजन***,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
- आई. सी. धींगरा (1987), ***इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया***, एस. चन्द्र नई दिल्ली।

11.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Text)

- अग्रवाल ए. एन., (2006) ***इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग)*** आशीष पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- अहलूवालिया, आई. जे. (1985), ***इन्डस्ट्रियल ग्रोथ इन इंडिया***, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- अहलूवालिया, आई. जे. एवं लिटिल, आई. एम. डी. (2002), ***इण्डियास इकोनॉमिक रिफार्म एण्ड डेवलपमेन्ट***, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- Agarwal, R. C.: ***Economics of Development and Planning***, Lakshmi Narayan Agarwal, Agra 2007.
- Taneja, M. L. & Myer R. M.: ***Economics of Development and Planning*** Vishal Publishing Co., Delhi, 2010.

11.11 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. रोस्टोव की आर्थिक वृद्धि के सिद्धांत को विस्तार से समझाइए।
2. पारंपरिक समाज से आप क्या समझते हैं? रोस्टोव ने पारंपरिक समाज को पहली अवस्था क्यों कहा हैं?
3. रोस्टोव के सिद्धांत के अनुसार भारत अभी कौनसी अवस्था में हैं और क्यों? विस्तार से बताइए।

इकाई 12 - हार्वे लीबन्स्टीन का आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त (Critical Minimum Effort Theory of Harvey Leibenstein's)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)
12.2 उद्देश्य (Objectives)
12.3 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त (Critical Minimum Effort Theory)
12.3.1 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की अवधारणा (Concept of Critical Minimum Effort Theory)
12.3.2 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की मान्यतायें (Assumptions of Critical Minimum Effort Theory)
12.3.3 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of Critical Minimum Effort Theory)
12.3.4 विकास के दूत/प्रतिनिधि (Representatives of this Theory)
12.3.5 प्रजनन विलम्बना और आवश्यक न्यूनतम प्रयास (Reproductive Latency and Minimum Efforts Required)
12.3.6 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of Critical Minimum Effort Theory)
12.4 रोडान बनाम हार्वे लीबन्स्टीन का मत (Rodan versus Harvey Leibenstein's Opinion)
12.5 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)
12.6 सारांश (Summary)
12.7 शब्दावली (Glossary)
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
12.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)
12.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

1957 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **'Economic Backwardness and Economic Growth'** में **प्रो. एच. लीबन्स्टीन (Prof.H.Leibenstein)** ने **नेल्सन (Nelson)** की ही तरह **'अल्प प्रति व्यक्ति आय की संस्थिति पाश'** की चर्चा की जिसमें विकासशील एवं अल्प विकसित अर्थव्यवस्थायें निरन्तर फंसी रहती हैं। इस भंवर से निकालने के लिए लीबन्स्टीन (Leibenstein) ने **'आवश्यक न्यूनतम प्रयास' (Critical Minimum Effort)** की आवश्यकता पर बल दिया जिससे प्रति व्यक्ति आय में इतनी अधिक वृद्धि आ जाए कि आय की वृद्धि दर जन संख्या की वृद्धि दर से अधिक हो जाए इस **'निम्न संतुलन पाश' (Lower Balance Loop)** से किसी देश को बाहर निकालकर सतत विकास की स्थिति में लाना किसी वायुयान को भूमि की सतह से उड़ाकर ऊपर ले जाने के समान हैं किसी वायुयान को हवा में उड़ने वाला बनाने के पहले यह आवश्यक है कि उसे एक न्यूनतम आवश्यक गति प्रदान की जाए, ठीक उसी प्रकार जब तक आवश्यक न्यूनतम प्रयास न किया जाए, अर्थव्यवस्था इस जाल से मुक्त नहीं हो सकती हैं।

12.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम -

- ✓ अर्थव्यवस्था कैसे अपने न्यूनतम प्रयास द्वारा आर्थिक विकास को समझेंगे।
- ✓ किसी भी अर्थव्यवस्था के लिये आवश्यक न्यूनतम प्रयास का महत्व जानेंगे।
- ✓ किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास के दूतों को समझेंगे।
- ✓ शून्य राशि प्रेरणाओं से क्या तात्पर्य को जान सकेंगे।
- ✓ धनात्मक राशि प्रेरणायों का अध्ययन करेंगे।
- ✓ विनियोग कसौटी की नीति और विकास का संबंध जानेंगे।

12.3 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त (Critical Minimum Effort Theory)

12.3.1 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की अवधारणा (Concept of Critical Minimum Effort Theory)

यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि अल्प विकसित देशों में जन संख्या दबावों के कारण निर्धनता एव अल्प पूँजी निर्माण का दुश्चक्र पाया जाता है। ***"ये विषम वृत्त इसलिये अधिक विषम बने रहते हैं क्योंकि पर्याप्त मात्रा में विकास के लिए वांछित प्रोत्साहन (प्रयास) उपलब्ध नहीं किये जा सकते हैं।"*** जब निवेश आवश्यक न्यूनतम मात्रा में कम किया जाता है तो उससे आय में वृद्धि तो होती है लेकिन बढ़ी हुई आय, बड़ी हुई जनसंख्या द्वारा हड़प कर ली जाती है और फलस्वरूप विकास का क्रम स्थिर बना रहता है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि निवेश **'आवश्यक न्यूनतम मात्रा' (Critical Minimum Amount)** में किया जाए ताकि अल्प बचत व अल्प पूँजी निर्माण के रिसते हुए घावों को एक बारगी सुखाया जा सके अर्थात आर्थिक दुश्चक्र तोड़ा जा सके।

12.3.2 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की मान्यतायें (Assumptions of Critical Minimum Effort Theory)

1. जनसंख्या आय का फलन है P = f(Y)। आय के एक निश्चित स्तर तक यह बढ़ती हुयी फलन होती है, पर एक निश्चित स्तर के बाद यह घटती हुयी फलन होती है। जब अर्थव्यवस्था में प्रति व्यक्ति

आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर उठती है तो इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि होती है और जनसंख्या की वृद्धि इस स्थिति में बहुत तेज होती है पर प्रति व्यक्ति आय की एक सीमा के बाद जनसंख्या में गिरावट होगी।

जनसंख्या की वृद्धि दर एवं प्रति व्यक्ति आय के बीच सम्बन्ध के आधार पर विकास प्रक्रिया को तीन अवस्थाओं में बॉटा जा सकता है। ***प्रथम*** अवस्था वह अवस्था है जिसमें जन्मदर मृत्युदर के बराबर है एवं दोनों ही दरें ऊंची हैं। इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धिदर शून्य है। प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त ही कम है और अर्थव्यवस्था जीवन निर्वाह स्तर की आय पर संतुलन की स्थिति में है। ***दूसरी*** अवस्था इसके बाद प्रारम्भ होती है। यदि प्रति व्यक्ति आय में इतनी वृद्धि हो जिससे यह जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर हो जाए तो मृत्यु दर में कमी होगी पर जन्मदर में कोई कमी नहीं होगी। जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या की वृद्धिदर में वृद्धि होगी। स्पष्ट है कि शुरू मे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि कुछ सीमा तक जनसंख्या की वृद्धि की दर मे वृद्धि लायेगी। ***तीसरी*** अवस्था इस बिन्दु के बाद प्रारम्भ होती है। इस बिन्दु के बाद यदि प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है तो जन्मदर में कमी होगी एवं मृत्युदर मे या तो कमी होगी अथवा यह स्थिर होगी।

इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी होगी। आर्थिक विकास की प्रक्रिया तेज होगी। इस अवस्था में जनसंख्या की वृद्धि आय वृद्धि की घटती हुई फलन होगी क्योंकि इस अवस्था में लोग यह अनुभव करने लगते हैं कि सामाजिक दृष्टि से ऊपर उठने को सम्भावना कम संख्या में बच्चों के साथ अधिक है। अल्प विकसित अर्थव्यवस्था आय की दृष्टि से या तो ***प्रथम*** अवस्था में है जहां **जन्म दर=मृत्युदर (Birth Rate=Death Rate)** एवं जनसंख्या वृद्धि नहीं है या ***दूसरी*** अवस्था में है। जहां मृत्युदर मे गिरावट तो प्रारम्भ हो गयी है पर जन्म दर में कमी नहीं शुरू हुई हैं। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि दर धनात्मक है। अब भी अर्थव्यवस्था अल्पस्तरीय संस्थिति की स्थिति में है।

2. प्रति व्यक्ति आय के अल्पस्तर पर लोगों की बचत एवं निवेश नगण्य होगी फलस्वरूप राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर कम होगी। स्पष्ट है जैसे जैसे प्रति व्यक्ति आय एक निश्चित न्यूनतम स्तर से ऊपर उठे जहां बचत एवं निवेश शून्य है, बढी आय का बढ़ता हुआ भाग बचत एवं निवेशित होगा, फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी।
3. एक पिछड़ी हुयी अर्थव्यवस्था एक **'अर्द्धस्थिर संस्थिति'(Quasi-Stable State)** प्रणाली है। एक **'पूर्ण स्थिर संस्थिति' (Fully-Stable State)** प्रणाली में जब संस्थिति की स्थिति में गड़बड़ी होगी तो पुनः संस्थिति में कायम होने की प्रवृत्ति होगी और इसके सभी चर पुनः मूल संस्थिति की स्थिति में आ जाएगे। अर्द्ध स्थिर संस्थिति की स्थिति में कुछ चरों में तो मूल संस्थिति की स्थिति के स्तर पर आने की प्रवृत्ति होगी पर कुछ चर असन्तुलन के स्तर पर बने रह सकते हैं। लीबन्स्टीन के अनुसार ***"पिछड़े देश प्रति व्यक्ति आय के सम्बन्ध में अर्द्धस्थिरता की स्थिति में हैं; अर्थात इस प्रणाली में कुछ ऐसी बाहरी घटनायें हो सकती हैं जिसके कारण प्रति व्यक्ति आय उपलब्ध संसाधन में वृद्धि हो जाए (जिससे प्रति व्यक्ति आय बढ़ जाए) पर अन्त में आवश्यक रूप से प्रणाली पुन: संस्थितीय प्रति व्यक्ति अल्प आय स्तर पर लौट आयेगी जबकि अन्य चर जो इस गड़बड़ी के कारण बढ़े हैं, बढ़ी अवस्था में रहेंगे"*** उदाहरण के लिए मान लीजिए किसी समय किसी कारण से बचत धनात्मक हो जाती है इसके कारण निवेश बढ़ेगा, आय बढ़ेगी एवं प्रति व्यक्ति आय बढ़ेगी। प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के कारण जनसंख्या एवं श्रमशक्ति में वृद्धि होगी। इस प्रकार मूल संस्थिति की स्थिति जो अल्प स्तर पर थी उसमे गड़बड़ी होगी पर यह पुनः उसी प्रति व्यक्ति आय स्तर पर नीचे आकर संस्थिति की स्थिति में आ जाएगी। साथ ही असन्तुलन के दौरान जो अन्य चर बढे थे जैसे श्रमशक्ति में वृद्धि वे बढ़ी ही अवस्था में रहेंगे, मूल संस्थिति वाली स्थिति में नहीं आयेंगे। चूंकि आय के एक निश्चित स्तर तक इन अर्थव्यवस्थाओं में संस्थिति पर पहुंचने की प्रवृत्ति होगी (जैसा स्थिर

संस्थिति की स्थिति में होता है) पर एक न्यूनतम सीमा के बाद इनमें संस्थिति की ओर लौटने की प्रवृत्ति नहीं होगी, (अस्थिर संस्थिति की स्थिति) इसलिए इन अर्थव्यवस्थाओं में स्थिर एवं अस्थिर संस्थिति के लक्षण होंगे, सम्भवतः इसीलिए लीबन्स्टीन ने इसे अर्द्धस्थिर संस्थिति की स्थिति कहा।

4. प्रत्येक अर्थव्यवस्था में दो तरह की शक्तियां क्रियाशील होती हैं- हस्तोत्साहक या अवसादी शक्तियां एवं उत्प्रेरक शक्तियां या आय वर्धक शक्तियां। अवसादी शक्तियां ऐसी शक्तियां हैं जो प्रति व्यक्ति आय में कमी लाती है। जबकि उत्प्रेरक शक्तियां प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि लाती है।
5. यदि पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं की अल्पस्तरीय संस्थिति में गड़बड़ी होती है जिससे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है तो न्यूनतम आवश्यक प्रयास स्तर से प्रति व्यक्ति आय के स्तर पर अवसादी शक्तियां उत्प्रेरक शक्तियों से अधिक प्रबल होंगी और पुनः प्रतिव्यक्ति आय अल्पसंस्थिति की स्थिति में आ जाएगी।
6. यदि आय वर्धक शक्तियां आय हतोस्ताहक शक्तियों से अधिक हो जाए या यूं कहिए कि आय वर्धक शक्तियां प्रति व्यक्ति आय को नीचे लाने वाली आय हतोत्साहक शक्तियों के प्रभाव को समाप्त कर दें तो आवश्यक न्यूनतम प्रतिव्यक्ति आय की स्थिति आ जाएगी और तब अर्थव्यवस्था 'संस्थिति पाश' से बाहर होकर विकसित होने लगेंगी।

इन प्रमुख मान्यताओं एवं निष्कर्षात्मक तथ्यों के आधार पर लीबन्स्टीन ने अपने आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त को इस प्रकार व्यक्त किया-***"एक पिछडी स्थिति से अधिक विकसित स्थित को प्राप्त करने के लिए जहां हम स्थिर एवं दीर्घकालीन विकास की उम्मीद कर सकते हैं, यह आवश्यक शर्त है, (यद्यपि हमेशा पर्याप्त नहीं) कि किसी बिन्दु पर हम किसी समयावधि में अर्थव्यवस्था में आर्थिक संवृद्धि के लिए कुछ उत्प्रेरणा प्राप्त करें जो एक निश्चित आवश्यक न्यूनतम आकार से अधिक हो।"***

12.3.3 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of Critical Minimum Effort Theory)

लीबन्स्टीन ने अपनी पुस्तक में अपने सिद्धान्त की व्याख्या के लिए अनेक रेखाचित्रों का सहारा लिया। हम इसमें से कुछ को लेकर सिद्धान्त का विश्लेषण कर रहे हैं-

A. ऐसी स्थिति जबकि अर्थव्यवस्था में जनसंख्या की वृद्धि शून्य हो एवं निवेश या पूँजी संचयन भी शून्य हो –

इस स्थिति की व्याख्या रेखाचित्र संख्या 12.1 में की गयी है। इस स्थिति की व्याख्या के लिए यह मान लिया गया है कि उत्पादन की मात्रा, संसाधन एवं जनसंख्या के आकार पर निर्भर करती है। दोनों ही जनसंख्या एवं निबल निवेश प्रति व्यक्ति आय के ऊपर निर्भर करते हैं।

इस रेखा चित्र में खीची गयी AB रेखा जो आधार अक्ष पर समानान्तर है, X = Z प्रदर्शित करती है अर्थात जनसंख्या की वृद्धि दर शून्य है जिसका अर्थ हुआ कि मृत्युदर एवं जन्मदर बराबर हैं। प्रति व्यक्ति आय के OA स्तर पर जनसंख्या की वृद्धि दर शून्य है यदि प्रति व्यक्ति आय OA से अधिक हुयी तो जनसंख्या की वृद्धि दर धनात्मक होगी, OA पर शून्य एवं OA से कम पर ऋणात्मक होगी। OA स्तर पर निबल निवेश भी शून्य है। शून्य निवेश का अर्थ यह हुआ कि सकल विनियोग तो धनात्मक है पर वह पूँजी सम्पत्ति के प्रतिस्थापन एवं हास या तोड़ फोड़ को पूरा करने के लिए ही हो रहा है अर्थात निवल निवेश = सकल विनियोग - हास = 0 अर्थात नयी सृजित पूँजी सम्पत्ति केवल पूँजी सम्पत्ति के मूल्य में हास या तोड फोड़ को पूरा करने के लिये या प्रतिस्थापन के लिए आवश्यक पूँजी के बराबर है।

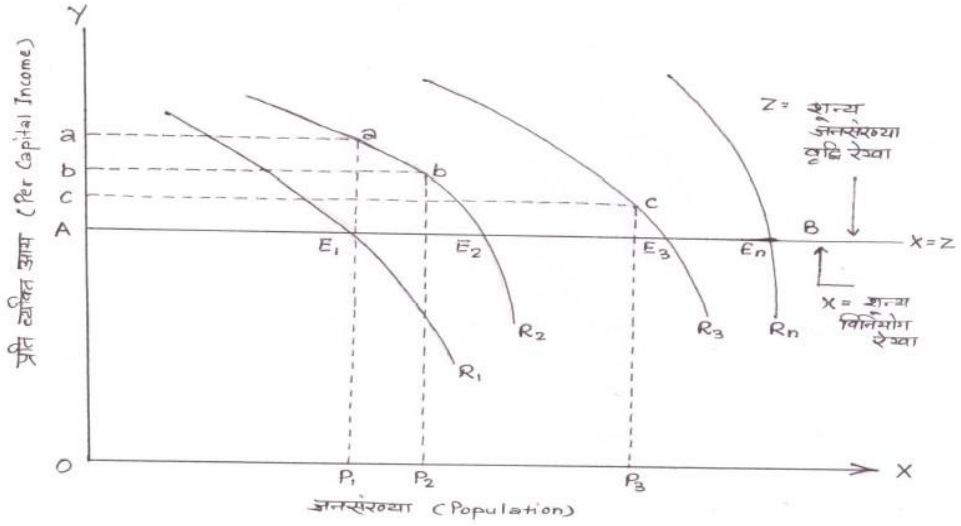

चित्र संख्या -12.1

रेखाचित्र में R_1, R_2, R_3..... Rn वक्र वैकल्पिक प्रति व्यक्ति आय प्रदर्शित करती है जिसे दिये हुए संसाधन R_1, R_2, R_3, R_n से वैकल्पिक जनसंख्या के आकार पर प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार ये वक्रं एक निश्चित संसाधन के साथ प्रतिव्यक्ति आय एवं/जनसंख्या के आकार के बीच सम्बन्ध प्रदर्शित करती है। हम सबसे पहले R_1 को लेते हैं जो संसाधन R_1 एवं जनसंख्या OP_1 के साथ सम्बन्ध व्यक्त करती है। मूल संस्थिति की स्थिति E_1 पर है। इस स्थिति में प्रति व्यक्ति आय OA है जिस पर X =Z है। अब मान लीजिए प्रेरित विनियोग के कारण संसाधन R_1 से बढ़कर R_2 हो जाते हैं। स्पष्ट है यदि जनसंख्या OP_1 हो तो नये संसाधन R_2 के साथ प्रति व्यक्ति आय O_a या P_{1a} होगी पर इस बढ़ी हुयी प्रति व्यक्ति आय के कारण जनसंख्या में वृद्धि होगी। मान लीजिए इसके कारण जनसंख्या का आकार बढ़कर OP_2 हो जाता है तो प्रति व्यक्ति आय गिरकर P_2b या Ob हो जाएगी। निवेश की और अधिक वृद्धि यदि R_3 तक हो जाय तो जनसंख्या का आकार OP3 हो जायेगा और प्रति व्यक्ति आय घटकर P_{3C} या Oc हो जाएगी और यह क्रिया तब तक चलती जाएगी जब तक कि पुनः OA की स्थिति नहीं प्राप्त हो जाती है। अतः स्पष्ट है कि इस स्थिति में जनसंख्या एक अवसादी शक्ति के रूप में कार्य करेगी। प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि लाती है और जनसंख्या की वृद्धि इतनी बलवती है कि अर्थव्यवस्था पुनः **'अल्पस्तरीय संस्थिति' (Low Level Institution)** में वही पहुंच जाती है। यहां हम लोगों ने जो व्याख्या की उसमे यह मान लिया कि प्रत्येक गड़बडी चाहे वह कितनी बड़ी क्यों न हो, जनसंख्या वृद्धि का दीर्घकालीन प्रभाव प्रेरित विनियोग के कारण उत्पन्न प्रभाव की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होगा। लेबन्स्टीन इस सम्भावना के अतिरिक्त दो और सम्भावनाओं की बात करते हैं- 1. प्रणाली छोटी गड़बड़ियों के लिए **'अर्द्ध स्थिर संस्थिति' (Quasi-Stable State)** के रूप में है पर बडी गड़बड़ियों के सम्बध में ऐसा नहीं है। कहने का अर्थ यह है कि छोटी मोटी गड़बड़ियों या असंतुलनों की स्थिति में प्रति व्यक्ति आय को गिराने में जनसंख्या की अवसादी शक्ति प्रेरित विनियोग की उत्प्रेरक शक्ति से अधिक प्रबल होगी पर बडी गडबडियो या असन्तलनों के सम्बन्ध में जनसंख्या की अवसादीय शक्ति कम महत्वपूर्ण होगी। जब प्रारम्भ से ही संस्थिति अस्थायी है, तब स्वयं लीबन्स्टीन (2) वाली सम्भावना को अल्पविकसित देशों के सम्बन्ध में व्यवाहारिक एवं ठीक हीं पाते हैं।

B. ऐसी स्थिति जबकि शून्य विनियोग रेखा (X) एवं शून्य जनसंख्या वृद्धि (Z), एक ही नहीं हो बल्कि X और Z रेखा से ऊपर हो –

ऐसी स्थिति को रेखाचित्र – 12.2 में प्रदर्शित किया गया है –

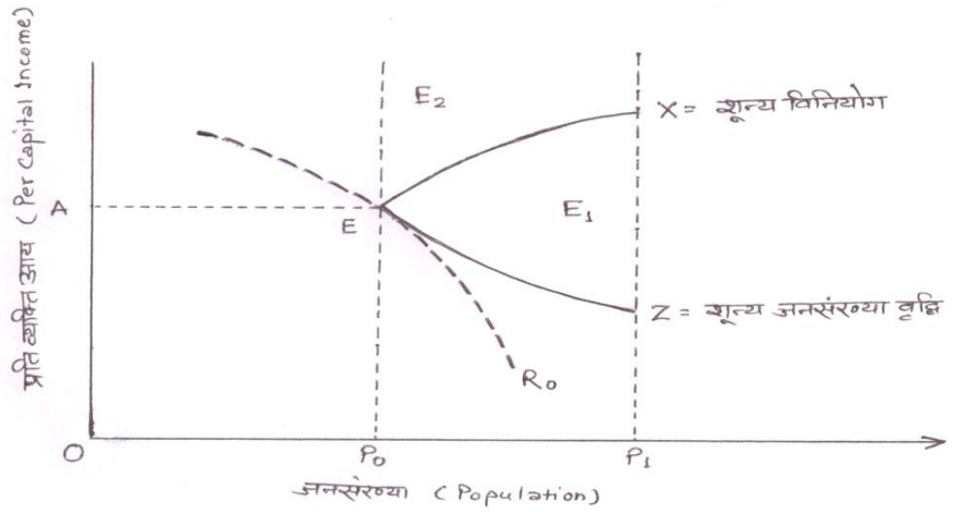

चित्र संख्या -12.2

इस रेखाचित्र में MM_1 न्यूनतम प्रतिव्यक्ति आय रेखा है जिससे अधिक प्रति व्यक्ति आय स्तर पर आर्थिक संवृद्धि कायम रह सकेगी। R_0 पहले ही की तरह निश्चित संसाधन R_0 के साथ प्रति व्यक्ति आय एवं जनसंख्या क आकार के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है। मान लीजिये मूल संस्थिति E पर है जहां जनसंख्या का आकार OP_0 प्रति व्यक्ति आय OA एवं संसाधन R_0 है। यह देखा जा सकता है कि प्रेरित विनियोग के कारण कोई भी गड़बड़ी जो प्रणाली को EXZ या ENM_lX के भीतर रखती है तो पुनः मूल संस्थिति E की स्थिति कायम हो जाएगी। उदाहरण के लिए यदि गड़बड़ी के बाद नयी संस्थिति का बिन्दु XEZ के भीतर हो मान लीजिए E इस बिन्दु पर निबल निवेश ऋणात्मक होगा क्योंकि E_1 बिन्दु EX या शून्य विनियोग से नीचे है एवं जनसंख्या की वृद्धि दर धनात्मक या शून्य से अधिक होगी क्योंकि E बिन्दु शून्य जनसंख्या वृद्धि रेखा EZ से ऊपर है। इस स्थिति में अविनियोग एवं जनसंख्या वृद्धि दोनों ही प्रति व्यक्ति आय के नीचे लायेंगे और पुनः संस्थिति E पर कायम हो जाएगी। यदि संस्थिति का नया बिन्दु ENM_lX के भीतर है, मान लीजिए E_2 है तो निवेश तो धनात्मक होगा क्योंकि E_2 बिन्दु EX रेखा के बिन्दुओं से ऊपर तो है पर जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत अधिक है। जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति आय को नीचे लाने वाली शक्ति धनात्मक विनियोग के कारण आय वर्धक शक्ति की अपेक्षा अधिक प्रबल होगी, जो पुनः अर्थव्यवस्था को E पर संस्थिति की स्थिति में ला देगी। आवश्यक न्यूनतम प्रयास- सिद्धान्त के उपयुक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जब तक अर्थव्यवस्था में प्रतिव्यक्ति आय आवश्यक न्यूनतम आय से कम रहेगी, इसमें अल्पस्तरीय संस्थिति E पर आने की प्रवृत्ति होगी, इन देशों के आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि प्रति व्यक्ति आय चित्र 12.2 में प्रदर्शित MM_1 से अधिक हो। पर ऐसा तभी होगा जब आय वर्धक शक्तियां आय अवसादी शक्तियों से अधिक प्रबल हों।

पिछड़े देशों में आय वर्धक शक्तियां आय अवसादी शक्तियों से अधिक नहीं होंगी, इसलिए प्रति व्यक्ति आय में उतनी अधिक वृद्धि नहीं होगी जितनी होनी चाहिए। जिससे अर्थव्यवस्था **'अल्पस्तरीय संस्थिति'** से बाहर निकल सके। यही वास्तव में उनकी सम्पूर्ण विचारधारा का निचोड़ है। यदि आय की प्रारम्भिक वृद्धि इतनी अधिक हो कि आय वर्धक शक्तियां आय अवसादी शक्तियों को बहुत अधिक पीछे छोड़ दे। तो आर्थिक विकास की संचयी प्रक्रिया शुरू हो जाएगी। इसलिए **लीबन्स्टीन** ने यह प्रतिपादित किया है कि **'अल्पविकसित देशों में आर्थिक पिछड़ेपन से छुटकारा पाने के प्रयास आवश्यक न्यूनतम'** से कम है। दी हुयी जनसंख्या की वृद्धि के साथ विनियोग के रूप में आवश्यक न्यूनतम प्रयास इतना होना चाहिए जिससे जनसंख्या का अवरोध टूट सके एवं आर्थिक विकास संचयी रूप से आगे बढ़ सके। यदि जनसंख्या की वृद्धि दर कम हो तो आय में होने वाली प्रारम्भिक वृद्धि जितनी ही अधिक होगी उतनी शीघ्र ही संचयी विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाएगी। स्पष्ट है कि ऐसे अल्पविकसित देशो में जहां जनसंख्या की वृद्धि दर अत्यन्त ही अधिक है वहीं इस स्थिति को प्राप्त करना कठिन होगा एवं इसे प्राप्त करने में बहुत अधिक समय लगेगा। लीबन्स्टीन ने अपने इस दृष्टिकोण के स्पष्टीकरण के लिए निम्नांकित रेखाचित्र 12.3 का सहारा लिया है। यह रेखाचित्र वास्तव में दो परस्पर विपरीत दिशा में काम करने वाली शक्तियों का परिणाम प्रदर्शित करता है।

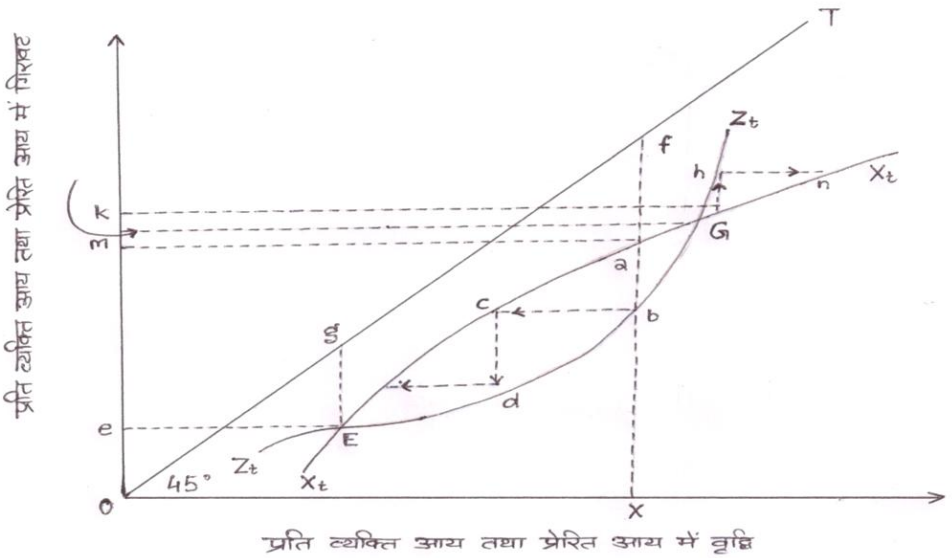

चित्र संख्या -12.3

इस रेखाचित्र में 45^0 रेखा OT प्रेरित आय में वृद्धि = प्रेरित आय में कमी प्रदर्शित करती है। इस रेखा मे विचलन के आधार पर प्रेरित आय में वृद्धि एवं प्रेरित आय में कमी प्रदर्शित किया गया है। X_t X_t सभी आय वर्धक शक्तियों एवं Zt Zt सभी आय अवसादी शक्तियों को प्रदर्शित करता है। प्रारम्भिक संस्थिति की स्थिति E पर है, जबकि दोनों शक्तियां परस्पर बराबर हैं। आय वर्धक शक्ति GE है एवं आय अवसादी शक्ति भी हम ही है। यहां इसका उल्लेख आवश्यक है कि OT से इन वक्रों पर लम्बीय अन्तर इन शक्तियों की माप प्रदर्शित करता है, आधार अक्ष से इन पर लम्बीय दूरी इसे प्रदर्शित नही करता है जैसा हम सामान्यता करते हैं।

अब यदि प्रारम्भिक समय के प्रति व्यक्ति आय Om हो तो आय वर्धक शक्तियां प्रति व्यक्ति आय में ta की वृद्धि लायेगी पर इस स्थिति में आय मे कमी लाने वाली शक्तियां प्रति व्यक्ति आय में fb की कमी लायेगी, गिरावट का पथ a b c d..... से दिखाया गया है और पुनः E पर संस्थिति की स्थिति कायम

हो जाएगी। पर यदि प्रति व्यक्ति आय Ok हो तो जैसा रेखाचित्र से स्पष्ट है, OT से Xt पर प्रदर्शित लम्बीय दूरी OT से Zt पर प्रदर्शित लम्बीय दूरी की अपेक्षा अधिक है फलस्वरूप अर्थव्यवस्था G h n पथ से विकसित होती हुयी अल्पस्तरीय संस्थिति जाल से बाहर हो जाएगी, पर ऐसा तभी होगा जबकि प्रतिव्यक्ति आय का स्तर Ol एक बारगी पा लिया जाये।

लीबन्स्टीन का यह मत है कि यदि अल्पविकसित देशों के पास पर्याप्त संसाधन नहीं हों तो विदेशों से पूजी की व्यवस्था की जा सकती है, पर यदि साथ ही एक बार में इतना अधिक विनियोग सम्भव नहीं हो कि अर्थव्यवस्था न्यूनम आवश्यक मात्रा को पार कर सके (जैसा कि चित्र 12.2 में M M1 रेखा से व्यक्त है) तो नियोजित ढंग से इसे थोड़े कम प्रयास के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, जैसा उनके द्वारा दिये गये चित्र 12.4 से स्पष्ट है।

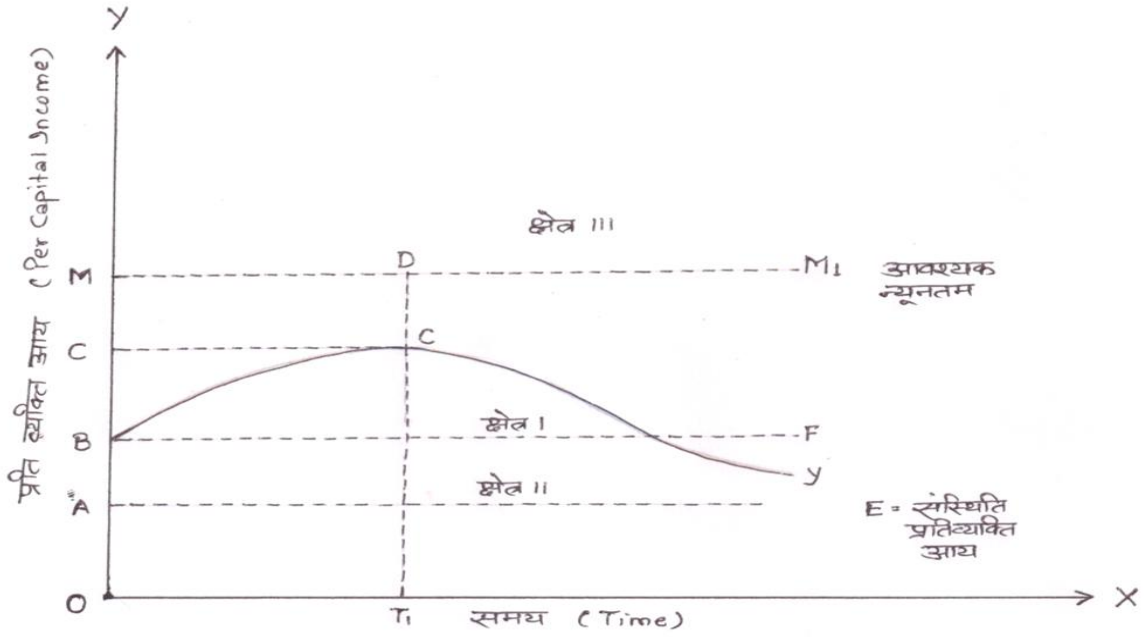

चित्र संख्या -12.4

यदि विनियोग एक बारगी इतनी प्रचुर मात्रा में कर दिया जाय कि प्रति व्यक्ति का M_1 स्तर (या OM) प्राप्त हो जाय, स्वतः पोषित आर्थिक विकास की स्थिति प्राप्त हो जाएगी, पर अल्प विकसित देशों के लिए यह अधिक सस्ता एवं कम कष्टप्रद होगा, यदि वे अपने उपलब्ध साधनों को दो बार में लगायें पहली बार में प्रतिव्यक्ति आय OB तक पहुंच जाय, एवं दूसरी बार में विनियोजन के द्वारा इसमें CD के बराबर वृद्धि ला दी जाये, और इस प्रकार MM_1 की प्राप्ति हो जाये।

लीबन्स्टीन ने अल्पविकसित देशों में पाये जाने वाले गरीबी के दुश्चक्र एवं साहसिकता के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध की बहुत ही प्रभावपूर्ण व्याख्या की। उनके अनुसार इन देशों में साहसियों एवं साहसिक योग्यता की कमी नहीं है, इन देशों की परिस्थितियां उन्हें धानात्मक राशि क्रियाओं के स्थान पर शन्य राशि क्रियायें में लगने के लिए बाध्य करती है। जिनके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के समग्र संसाधनों में कोई वृद्धि नहीं होती है, बल्कि साहसिक संसाधन का अपव्यय होता है। ये क्रियाएं अर्थव्यवस्था की उपलब्ध निबल बचत को प्रयोग में लाती है। लीबन्स्टीन का कहना है कि प्रत्येक

साहसिक क्रिया लाभ की प्रत्याश में की जाती है, यदि लाभ की आशा कम हो तो सहसी धनात्मक क्रियाओं में नहीं लगेगा और धनात्मक क्रियाओं में न लगने का अर्थ होगा, राष्ट्रीय आय के विस्तार में कमी।

इस प्रकार लीबन्स्टीन के दृष्टिकोण की प्रमुख बातें इस प्रकार हैं -

1. ऐसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थायें जो अल्पस्तरीय प्रति व्यक्ति आय की संस्थिति जाल फंसी हुई हैं जहां जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि अर्थव्यवस्था को निरन्तर इसी अल्प संस्थिति की स्थिति में बनाये रखती है, और बाहर नहीं निकलने देती ऐसी अर्थव्यवस्थायें यदि, इस जाल से बाहर निकलना चाहती है यह आवश्यक है कि वे इतनी अधिक मात्रा में विनियोजन करें कि प्रति व्यक्ति आय का स्तर जनसंख्या वृद्धि को पीछे छोड़कर विकास की संचयी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाए।
2. विनियोजन विदेशी पूँजी, घरेलू पूँजी या श्रम के रूपान्तरण के द्वारा प्राप्त हो सकता है।
3. जन्मदर की गिरावट आर्थिक विकास की पूर्ववर्ती शर्त नहीं होगी बल्कि आर्थिक विकास स्वत: जनसंख्या की वृद्धिदर में कमी लायेगा। प्रारम्भ में ऐसा हो सकता है कि मृत्युदर में गिरवट आये और जनसंख्या की वृद्धि दर बढ़े पर अंतिम रूप में निश्चित रूप से जनसंख्या की वृद्धि में कमी आयेगी।
4. संचयी विकास के लिए आय वर्धक शक्तियों का प्रबल होना आवश्यक है।
5. **'न्यूनतम आवश्यक प्रयास'** की मात्रा वह होगी जहां पहुंचकर अर्थव्यवस्था पुन: अल्पस्तरीय **'संस्थिति जाल'** में न आये बल्कि संचयी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाए ।

आवश्यक न्यूनतम प्रयास के सम्बन्ध में दो प्रश्न यह उठते हैं कि

1. विनियोजन की मात्रा कितनी हो? उसका उत्तर लीबन्स्टीन ने यह दिया कि निवेश की मात्रा इतनी अधिक अवश्य होनी चाहिए कि जो न केवल आय अवसादी शक्तियों का सामना करने के लिए पर्याप्त हो बल्कि आय वृद्धि की कुछ मात्रा पूँजी निर्माण के लिए भी होती रहे (ध्यान रहे, पूँजी निर्माण तभी होगा जब उपभोग से आय वृद्धि अधिक होगी)।
2. दूसरा प्रश्न यह है कि क्या निवेश एक बार में ही किये जाए या टुकड़ों में? लीबन्स्टीन का सुझाव है कि निवेश को टुकड़ों और उन्हें एक दशक में फैलाकर करना अधिक लाभप्रद होगा। लेकिन ऐसा करते समय यह ध्यान रहे, कि निवेश की प्रत्येक डोज से एक निश्चित अवधि में पूर्ण निर्धारित प्रति व्यक्ति आय का स्तर प्राप्त होता रहना चाहिए और निवेश के आखिरी धक्के से देश का आय स्तर आवश्यक न्यूनतम स्तर को अवश्य प्राप्त कर ले। हां, निवेश का हर दूसरा इंजेक्शन, पहले इंजेक्शन के प्रभाव के खत्म होने से पूर्व ही लगा देना चाहिए जिससे कि विकास वर्धक श्वेताणुओं को पनपने का पर्याप्त अवसर मिल सके और दम तोड़ते हुए विनाश मूलक कीटाणुओं को सर उठाने का मौका न मिल सके। लीबन्स्टीन का यह भी कहना है कि यदि निवेश की आवश्यक न्यूनतम मात्रा देश मे वर्तमान आय स्तर पर उपलब्ध नहीं है तो विदेशी सहायता का सहारा भी लिया जा सकता है।

आवश्यक न्यूनतम प्रयास (CME) की आवश्यकता क्यों? लीबन्स्टीन ने अल्पविकसित देशों के लिए आवश्यक न्यूनतम प्रयास को निम्न कारणों से आवश्यक बताया है -

1. प्रथम कारण, साधनों या निवेशों की अविभाज्यता है। अत: बाहरी बचतें प्राप्त करने के लिए बड़ी मात्रा में निवेश करना जरूरी हो जाता है।
2. संतुलित विकास के लिए भी आवश्यक न्यूनतम प्रयास आवश्यक होता है।

3. लीबन्स्टीन का कहना है कि आर्थिक विकास पुरानी मान्यताओं, आस्थाओं, विचारों एवं रीति रिवाजों को भेदने से होता है। आवश्यक न्यूनतम प्रयास से कम निवेश करने पर यह संस्थागत रूकावटें नहीं टूटती क्योंकि पुराने मूल्य और परम्परायें बदलने मे अत्यधिक समय लेती हैं। उन पर तो एक अचानक और वह भी बड़ी मात्रा मे हमला करना चाहिए ताकि 'हर नया परिवर्तन किसी नये परिवर्तन को जन्म दे'।
4. कभी कभी विकास के परिणाम स्वरूप ही विकास बाधक तत्व उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे आय में थोड़ी वृद्धि होने पर मृत्युदर घटती है किन्तु जनसंख्या बढ़ने लगती है। आय में वृद्धि इतनी अधिक होनी चाहिए कि जन्मदर कम हो जाए और यह तभी संभव है जब निवेश आवश्यक न्यूनतम प्रयास रूप में किये जाए।
5. चूंकि विकास के साथ साथ पूँजी उत्पाद अनुपात (COR) घटता जाता है इसलिये यदि निवेश आवश्यक न्यूनतम मात्रा में किया जाए तो प्बर अधिक घटेगा और आर्थिक विकास तेजी के साथ होगा।

12.3.4 विकास के दूत या प्रतिनिधि (Representatives of this Theory)

लीबन्स्टीन के आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त का तार्किक आधार देश में कुछ अनुकूल आर्थिक दशाओं का पाया जाना है ताकि आय अवसादी शक्तियों की तुलना में आय वर्धक शक्तियां अधिक ऊंची दर से विस्तार कर सके। ये अनुकूल दशायें विकास के प्रतिनिधियों के विस्तार द्वारा उत्पन्न होती है। वृद्धि दूतों से उनका अभिप्राय ***"विकास में सहायक क्रियाओं को कार्यान्वित करने के लिये जनसंख्या के सदस्यों में विद्यमान क्षमताओं की मात्रा से है"*** जिसका निरन्तर विस्तार किया जाना चाहिए। इनके विस्तार से उद्यमशीलता का निर्माण, ज्ञान की मात्रा में वृद्धि, उत्पादन कुशलता का विस्तार और बचत एवं निवेश की दर में वृद्धि होती है। लीबन्स्टीन ने उद्यमी, निवेशकर्ता, बचतकर्ता, एवं नवप्रवर्तकों को विकास का दूत या कारक माना है।

प्रेरणायें - लीबन्स्टीन के अनुसार विकास कारकों का विस्तार होगा या नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि ऐसी क्रियाओं के प्रत्याशित एवं वास्तविक परिणाम क्या होते हैं और वे विस्तार के लिये प्रेरणा उत्पन्न करती है या संकुचन के लिये। यह प्रेरणायें दो प्रकार की हो सकती है।

1. शून्य राशि प्रेरणायें (Zero-Sum Incentives) - इनसे राष्ट्रीय आय में कोई वृद्धि नहीं होती। और इनका केवल वितरणात्मक प्रभाव होता है।

2. धनात्मक राशि प्रेरणायें (Positive-Sum Incentives) - इनसे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

स्पष्ट है कि धनात्मक राशि प्रेरणाओं द्वारा ही आर्थिक विकास सम्भव हो सकता है। लेकिन लीबन्स्टीन का कहना है कि अल्प विकसित देशों के लोग- शून्य राशि क्रियाओं मे अधिक संलग्न रहते हैं जैसे अपेक्षाकृत बड़े आकार की एकाधिकारात्मक स्थिति, राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने की लालसा, सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने हेतु अव्यापारिक क्रियायें एवं सट्टा क्रियायें आदि ही वे शून्य राशि क्रियायें हें जो आय वृद्धि को बढ़ावा नहीं देती बल्कि आय का एक **'दुर्भाग्यशाली'** उद्यमी के हाथ से एक **'सौभाग्यशाली'** उद्यमी के हाथ में मात्र हस्तान्तरण करती है। इसलिये शून्यराशि प्रोत्साहनों की प्रबलता और धनात्मक राशि प्रोत्साहनों की सीमितता को देखते हुए लीबन्स्टीन का कहना है कि 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास' काफी बड़ा होना चाहिए ताकि ऐसा वातावरण तैयार हो सके कि जो धनात्मक राशि प्रोत्साहनों को बल प्रदान करें और शून्य राशि प्रेरणाओं को समाप्त करने वाली शक्तियां उत्पन्न करें।

आवश्यक न्यूनतम प्रयास के फलस्वरूप आय मंभ वृद्धि होगी। जिससे बचत एवं रोजगार का स्तर ऊंचा उठेगा और इसके अगले धनात्मक परिणाम इस प्रकार होंगे -

1. वृद्धि कारकों का विस्तार,
2. पूँजी के प्रति इकाई क्षमता में वृद्धि (क्योंकि क्षमता बढ़नेपर पूँजी उत्पादक अनुपात घट जाता है),
3. विकास के अवरोध तत्वों की प्रभावपन्नता में कमी,
4. द्वितीयक, एवं तृतीयक क्षेत्रों का विस्तार,
5. सामाजिक एवं आर्थिक गतिशीलता को बढ़ावा देने वाली सामाजिक एवं वातावरण सम्बन्धी स्थितियों का निर्माण और,
6. शून्य राशि प्रोत्साहनों का प्रति सन्तुलन करते हुए एक ऐसे वातावरण का निर्माण, जिससे संभाव्य जनसंख्या वृद्धि में कमी आये और सतत विकास को बल मिल सके।

12.3.5 प्रजनन विलम्बना और आवश्यक न्यूनतम प्रयास (Reproductive Latency and Minimum Efforts Required)

प्रो. लीबन्स्टीन सम्भवत: पहले विचारक हैं जिन्होंने जनसंख्या वृद्धि के नियमन की परवाह किये बिना आर्थिक विकास का काम शुरू करने का सुझाव दिया है। वे इसमें विश्वास नहीं करते कि जनसंख्या घनत्व आर्थिक पिछड़ेपन का एक कारण है और न ही उन्होंने जन्मदर में कटौती की विकास को एक पूर्वावश्यकता माना है। **प्रो. ब्लैक, थाम्पसन व नोटेस्टीन** की भांति **लीबन्स्टीन** का भी मत है कि आर्थिक, सांस्कृतिक व तकनीकी उन्नति के साथ साथ जन्मदर स्वयं घटने लगती है। **लीबन्स्टीन** के शब्दों में ***"जन्मदर में कमी विकास का स्वयं एक परिणाम है। इस बात की बहुत थोड़ी सम्भावना है कि आर्थिक विकास के अभाव में कोई भी प्रत्यक्ष उपाय, जन्मदर पर नियंत्रण लगाने में सफल हो सकता है। सर्वप्रथम हमें आर्थिक विकास शुरू करना होगा। प्रजनन दर स्वयं घटने लगेगी।"*** अल्प विकसित देशों में जन्म दर में वृद्धि का मुख्य कारण लोगों में अज्ञानता, अविवेकशीलता, परिवार नियोजन के अभाव और सहवास एवं प्रजनन क्रिया यम्बन्धी सोच का अभाव रहा है। चूंकि इन देशों में मृत्युदर अधिक होती है इसलिये लोग **'यमराज के दुखद बुलावे'** से सुरक्षा के कारण ही अधिक बच्चे पैदा करने मे लिये बाध्य होते हैं।

लीबन्स्टीन ने जन्म लेने वाले प्रत्येक अगले बच्चे के सम्बन्ध में लागत लाभ विश्लेषण तकनीक का सहारा लेते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इन देशों में बच्चों की लागत कम होती है जबकि उनसे लाभ अधिक होते हैं। एक नवजात शिशु एक उपभोगीय वस्तु है क्योंकि बच्चे को प्यार करने से मनुष्य को एक आत्मिक संतोष मिलता है, यह उत्पादक साधन है क्योंकि ये छोटी उम्र में ही कमाने लग जाते हैं और ये वृद्धावस्था में उस सुरक्षा को प्रदान करते हैं जिस सामाजिक सुरक्षा का पिछड़े हुए देशों में अभाव होता है। चूंकि आवश्यक न्यूनतम प्रयास के फलस्वरूप प्रजनन दर स्वतः ही घटने लगती है इसलिये हमें इससे चिंतित होने की जरूरत नहीं है। निवेश मानदण्ड या नीति जहां तक उचित निवेश नीति का प्रश्न है **लीबन्स्टीन** ने **कान्ह** के **'सामाजिक सीमान्त उत्पादकता मानदण्ड' नर्कसे** के **'रोजगार मानदण्ड'** और **'वाइनर** एवं **कान्ह** के **कृषि निवेश मानदण्ड'** को अस्वीकार किया है। सीमान्त उत्पादकता मानदण्ड का विरोध उन्होने इस आधार पर किया है कि इससे न तो राष्ट्रीय आय और न ही प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होती है। फिर SMP का पता लगाना भी कठिन है। नर्कसे के अधिकतम

रोजगार या श्रम प्रधान विकास नीति को लीबन्स्टीन ने इसलिये अस्वीकार किया है यदि पूँजी गहन निवेश को कम रखा गया तो इससे तीव्र विकास की सम्भावना घट जाएगी।

लीबन्स्टीन, **वाइनर** के इस मत से भी सहमत नहीं हैं कि अल्प विकसित देशों को अधिकाधिक निवेश कृषि क्षेत्र में करना चाहिए। उनका कहना है कि ***"कृषि क्षेत्र या गांवों के विकास से श्रम-कुशलता, कौशल निर्माण, तकनीकी प्रगति, अविष्कार एवं उद्यमियों का विकास नहीं हो सकता।"*** लीबन्स्टीन ने उपयुक्त निवेश के सम्बन्ध में कहा है कि निवेश भौतिक एवं मानवीय दोनों प्रकार की पूँजी में वृद्धि लाने हेतु किया जाना चाहिए और यह **'आवश्यक न्यूनतम मात्रा'** में होना चाहिए। निवेश का ढांचा ऐसा हो जिससे उद्यमियों को बढ़ावा मिले, अर्जित लाभों का पुर्ननिवेश हो, श्रम उत्पादकता में वृद्धि हो, बचतों को प्रोत्साहन मिले और जनसंख्या वृद्धि की दर घटने लगे। एक प्रकार से लीबन्स्टीन **'पुनर्विनियोग उपलब्धि मानदण्ड'** का समर्थन करते हैं जो कि उन्हीं के नाम से जाना जाता है।

12.3.6 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of Critical Minimum Effort Theory)

मुख्य आलोचनायें इस प्रकार हैं

1. **जनसंख्या वृद्धि दर और मृत्युदर का अवास्तविक सम्बन्ध (Unrealistic Relationship between Population Growth Rate and Mortality Rate) -** इस मॉडल की यह मान्यता है कि जनसंख्या वृद्धि की दर एक निश्चित बिन्दु तक प्रति व्यक्ति आय का वृद्धिमान फलन है और उसके बाद यह आय के ह्रासमान फलन का रूप ले लेता है, ठीक नहीं है। इसका कारण जनसख्या में वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से नहीं बल्कि मृत्युदर में कमी से होती है और वह कमी चिकित्सा विज्ञान एवं स्वास्थ्य दशाओं में सुधार होने के कारण होती है।
2. **प्रति व्यक्ति आय के स्तर और वृद्धि दर का क्रियात्मक सम्बन्ध (Functional Relationship between Per Capita Income Level and Growth Rate) –** प्रो. मिंट का कहना है कि प्रति व्यक्ति आय के स्तर और वृद्धि की दर में स्थापित किया गया फलनात्मक सम्बन्ध काफी जटिल है और वह इतना सरल नहीं जितना कि लीबन्स्टीन मानते हैं। यह सम्बन्ध आय के वितरणात्मक ढांचे और बचतों को गतिशील करने वाली वित्तीय संस्थाओं की प्रभावी क्षमता पर निर्भर करता है जिसे लीबन्स्टीन ने पूरी तरह से भुला दिया है।
3. **मॉडल की आधारभूत मान्यता का दोषपूर्ण होना (Defective Fundamental Assumption of the Model) –** प्रो. मिंट, लीबन्स्टीन की इस मान्यता से भी सहमत नहीं हैं कि अगर प्रारम्भिक निवेश आवश्यक न्यूनतम आकार से कम हुआ तो जनसंख्या बढ़ जाएगी। उन्होंने कहा कि यह तो एक प्रकार से आय और जनसंख्या के बीच प्रत्यक्ष सह सम्बन्ध स्थापित करने वाली बात है जिसे प्रयोगों द्वारा भी सिद्ध नहीं किया जा सकता।
4. **जन्मदर में कमी का कारण प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं (Decrease in Birth Rate is not Due to Increase in Per Capita Income) -** लीबन्स्टीन का यह सोचना भी भ्रमपूर्ण है कि जन्मदर में कमी इसलिए होती है कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि आवश्यक न्यूनतम स्तर पर पहुंच जाती है और जनसंख्या वृद्धि से भी आगे निकल जाती है। सच तो यह है कि लीबन्स्टीन के विचार उन्नत देशों के अनुभवों पर आधारित रहे होंगे जबकि अल्प विकसित देशों में प्रजनन दर की समस्या

मुख्यत: सामाजिक व सांस्कृतिक प्रकृति की होती है और इस पर आय वृद्धि की अपेक्षा धर्म, मर्यादा और परम्पराओं का अधिक प्रभाव पड़ता है।

5. **समय तत्व की उपेक्षा (Neglect of the Time Element) –** इस सिद्धान्त का एक दोष यह है कि इसने समय तत्व पर कोई ध्यान नहीं दिया जो कि सतत प्रयासों के लिये अत्यावश्यक है और जिसमें आत्म स्फूर्ति को सुनिश्चित करने के लिये संस्थात्मक एवं उत्पादक ढांचे में आधारभूत परिवर्तन करने आवश्यक होते हैं।
6. **परिवार नियोजन सम्बन्धी राजकीय प्रयत्नों की उपेक्षा (Neglect of Government Efforts in Family Planning) –** लीबन्स्टीन ने जन्म दर को घटाने सम्बन्धी सरकारी प्रयत्नों पर कोई ध्यान नहीं दिया जबकि आजकल प्रत्येक सरकार जनाधिक्य से निबटने के लिये विस्तृत अभियान चालू किये हुए हैं। हमारी दृष्टि में आज कोई भी देश इस बात कि प्रतीक्षा नहीं कर सकता है कि कब प्रति व्यक्ति आय काष्ठा न्यूनतम स्तर से ऊपर उठे ताकि जन्म दर स्वयमेव गिरनी शुरू हो जाए। प्रतीक्षा की इन घड़ियों में हो सकता है कि वह देश जनसंख्या विस्फोट की स्थिति में पहुंच जाए और समस्या सुलझने के बजाए और उलझ जाए।
7. **बन्द अर्थव्यवस्था मूलक मॉडल (Closed Economy-Based Model) -** यह मॉडल आय, बचत एवं विनियोग के विभिन्न स्तरों पर विदेशी पूँजी एवं अन्य बाह्य घटकों के प्रभाव का अध्ययन नहीं करता। इस प्रकार यह सिद्धान्त केवल बन्द अर्थव्यवस्था पर लागू होने के कारण अवास्तविक है।

12.4 रोडान बनाम हार्वे लीविन्स्टीन का मत (Rodan versus Harvey Leibenstein's Opinion)

रोडान के **'प्रबल प्रयास सिद्धान्त'** और **लीबन्स्टीन** के **'आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त'** दोनों का ही उद्देश्य अल्प विकसित अर्थव्यवस्था को दरिद्रता के विषम चक्र से छुटकारा दिलाकर सतत विकास के मार्ग पर लाना है। किन्तु तुलनात्मक रूप में लीबन्स्टीन का सिद्धान्त रोडान के सिद्धान्त से कई बातों में श्रेष्ठ है-

1. लीबन्स्टीन की थीसिस अधिक व्यापक, व्यावहारिक एवं वास्तविक है जबकि रोडान का मॉडल सैद्धान्तिक अधिक है।
2. अल्प विकसित देशों में औद्योगिकरण के कार्यक्रम को एकदम से 'प्रबल प्रयास' देना असाध्य है जबकि अर्थव्यवस्था को सतत विकास के मार्ग पर लाने के लिए आवश्यक न्यूनतम प्रयास समयानुसार एवं आवश्यकतानुसार करना अधिक युक्ति संगत जान पड़ता है।
3. लीबन्स्टीन के सिद्धान्त का एक गुण यह है कि वह लोकतन्त्रात्मक नियोजन से मेल खाता है जिससे अधिकांश अल्प विकसित देश सम्बद्ध है।
4. रोडान के विपरीत लीबन्स्टीन पूँजी गहन तकनीकी के समर्थक हैं इसलिये वे असन्तुलन से सन्तुलन की ओर जाते हैं।
5. रोडान के अनुसार प्रबल प्रयास के रूप में आवश्यक निवेश एक मुश्त रूप में किया जाना चाहिए जबकि लीबन्स्टीन के अनुसार निवेश समयानुसार छोटी छोटी मात्रा में भी किया जा सकता है।

अत: स्पष्ट है कि लीबन्स्टीन के अनुसार पूँजी का जुटाना अधिक सरल व व्यावहारिक है।

12.5 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1. हार्वे लीबिन्सटीन ने ..... का प्रतिपादन किया। (आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त **या** निम्न स्तर सन्तुलन पाश विशलेषण)
2. हार्वे लिबिन्स्टीन का कहना है कि अल्पविकसित देशों में थोड़े-थोड़े आर्थिक विकास के प्रयास गरीबी के दुश्चक्र को ..... सकते हैं। (तोड़ नहीं **या** तोड़)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिए:

1. लीबन्स्टीन ने उद्यमी, निवेशकर्ता, बचतकर्ता एवं नवप्रवर्तकों को विकास प्रतिनिधि माना।
2. लीबन्स्टीन ने प्रबल धक्का सिद्धान्त प्रस्तुत किया।
3. लीबन्स्टीन की प्रसिद्ध पुस्तक "Economic Backwardness and Economic Growth" है।

12.6 सारांश (Summary)

अपनी पुस्तक के अमुख में लीबन्स्टीन ने लिखा है कि उसका **"लक्ष्य नुस्खा बनाना नहीं बल्कि व्याख्या करना एवं समझना है।"** परन्तु रोस्टोव की उत्कर्ष की अवस्था की भांति उसके **"क्रांतिक- न्यूनतम प्रयत्न"** सिद्धान्त ने अर्थशास्त्रियों एवं अल्प विकसित देशों में योजना बनाने वालों का ध्यान आकर्षित किया है और वह आर्थिक पिछड़ेपन का नुस्खा समझा जाता है। **रोजेन्स्टीन रोडान** के **"प्रबल प्रयास"** सिद्धान्त के अपेक्षा लीबन्स्टीन सिद्धान्त अधिक वास्तविक है। अल्प विकसित देशों में औद्योगिकरण के प्रोग्राम को एकदम से **"प्रबल प्रयास"** देना असाध्य है जबकि अर्थव्यवस्था को सतत विकास के मार्ग पर लाने के लिए क्रांतिक-न्यूनतम प्रयत्न उचित ढंग से समय - समय पर किया एवं छोटे प्रयत्नों के क्रम में तोड़ा जा सकता है। यह सिद्धान्त प्रजातंत्रात्तक योजना से भी मेल खाता है।

12.7 शब्दावली

- **विकास दूत (Agents of Development):** विकास क्रियाओं के समायक अर्थात उत्पादक, निवेशक, बचतकर्ता आदि।
- **अवसादी शक्ति (Depressive Force) :** आर्थिक विकास में बाधा के रूप में।
- **शून्य राशि प्रेरणायें (Zero-Sum Incentives) :** वह प्रेरणाएँ जिनमें एक की प्राप्ति दूसरे की हानि के बराबर होती है।
- **धनात्मक राशि प्रेरणायें (Positive-Sum Incentives) :** वह प्रेरणाएँ जिनमें सभी पक्षों को लाभ प्राप्त होता है।
- **पुनर्विनियोग उपलब्धि मानदण्ड (Reinvestment Achievement Criterion) :** पुनः निवेश की उपलब्धि का मापदंड।
- **अर्द्ध स्थिर संस्थिति (Semi-Stable Equilibrium):** एक ऐसी स्थिति जिसमें स्थिरता आंशिक रूप से होती है।
- **अल्पस्तरीय संस्थिति (Low-Level Equilibrium) :** वह संस्थिति जिसमें विकास का स्तर निम्न होता है।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1. आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त 2. तोड़ नहीं

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिए:

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य

12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- प्रो. एम. एल. झिगन, (2010) ***विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन*** बिन्द्रा पब्लिशिग हाउस, दिल्ली।
- प्रो. एस. एन.लाल (2010) ***आर्थिक विकास एवं आयोजन*** शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद।
- प्रो. एस. पी. सिह, (2010) ***आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन*** एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन, दिल्ली।

12.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- Agarwal, R.C. ***: "Economics of Development and Planning",*** Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
- Taneja, M. L. & Myer R.M.: ***"Economics of Development and Planning"*** Vishal Publishing Co., Delhi, 2010
- B. Higgins : ***"Economic Development, Priciples, problems and policies".***
- M. P.Todaro ***: "Economic Development in third world".***
- G.M.Meiter ***: "Inter Sectoral Relationship in Dual Economy".***

12.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. लीबन्स्टीन के काष्ठा-न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए?
2. हार्वे लीबन्स्टीन के न्यूनतम क्रान्तिक प्रयास सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। क्या यह कहना उचित है कि यह सिद्धान्त पूँजी की अपेक्षा जनसंख्या की भूमिका को विकास प्रक्रिया में अधिक महत्व देता है?
3. 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास' विचारधारा की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। विकास को अवरूद्ध करने वाली शक्तियों पर नियंत्रण कैसे प्राप्त किया जाता है, बतलाइए?

इकाई 13 - नेल्सन का निम्न स्तर सन्तुलन पाश विशलेषण
(Low Level Equilibrium Trap Theory of Nelson's)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)
13.2 उद्देश्य (Objectives)
13.3 निम्न स्तर संतुलन पाश विश्लेषण (Low Level Equilibrium Trap Theory)
13.3.1 सिद्धान्त की अवधारणा (Concept of this Theory)
13.3.2 सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of this Theory)
13.3.3 सिद्धान्त के मुख्य बिन्दु (Important Points of this Theory)
13.3.4 सिद्धान्त की आलोचनायें (Criticisms of this Theory)
13.4 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)
13.5 सारांश (Summary)
13.6 शब्दावली (Glossary)
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
13.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
13.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)
13.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

आर्थिक विकास के संदर्भ में विशेषरूप से ऐसे देशों के सम्बन्ध में, जहां जनसंख्या की वृद्धि बहुत अधिक हो, एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि प्रति व्यक्ति आय का कौन सा स्तर हो जिस पर यह जनसंख्या वृद्धि दर को स्थायी रूप से पीछे छोड़ दे जिससे उसके बाद प्रतिव्यक्ति आय में निरन्तर वृद्धि हो सके। ऐसी स्थिति में हमें एक ऐसे सिद्धान्त की आवश्यकता है जो आर्थिक विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया के दौरान जनसंख्या वृद्धि के स्वरूप पर प्रकाश डाले, जो इसका जबाब दे सके कि प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि का क्या प्रभाव राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय पर पड़ता है? इस दिशा में हमें प्रमुख रूप से दो मॉडल मिलते हैं। आर. नेल्सन का निम्न सन्तुलन पाश मॉडल एवं लीबन्स्टीन का न्यूनतम आवश्यक प्रयास सिद्धान्त। दोनों ही मॉडल इस बात को स्वीकार करते हैं कि जनसंख्या की वृद्धि, प्रतिव्यक्ति आय एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि परस्पर सम्बन्धित है।

13.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम-

- ✓ निम्न संतुलन पाश विश्लेषण को समझेंगे।
- ✓ निम्न संतुलन पाश के सहायक कारकों को जानेंगे।
- ✓ पूँजी निर्माण, जनसंख्या वृद्धि एवं आय निर्धारण करना सीखेंगे।
- ✓ निम्न संतुलन पाश विश्लेषण मॉडल की कमियां जानेंगे।
- ✓ निम्न संतुलन पाश और अर्थव्यवस्था के संबंध को समझेंगे।

13.3 निम्न स्तर संतुलन पाश विश्लेषण (Low Level Equilibrium Trap Theory)

13.3.1 सिद्धान्त की अवधारणा (Concept of this Theory)

आर. आर. नेल्सन ने अपना निम्न सन्तुलन पाश सिद्धान्त **1956** में अमेरिकन **Economic Review** में प्रकाशित अपने एक लेख **'A Theory of the Low Level - Equilibrium Trap'** में प्रस्तुत किय। अल्पविकसित देशों की समस्याओं पर विचार करते हुए नेल्सन ने यह प्रतिपादित किया कि अल्प विकसित देश निम्न प्रति व्यक्ति आय के सन्तुलन पाश मे जकड़े हुए हैं। ये देश अत्यन्त ही अल्प प्रति व्यक्ति आय स्तर जो जीवन निर्वाह की आवश्यकता की पूर्ति के बराबर है या लगभग बराबर है पर स्थित संस्थिति की गतिहीनता की स्थिति में है। स्थायी संस्थिति एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें यदि किसी प्रयास के कारण ये देश इस अल्पस्तरीय संस्थिति से बाहर निकलते हैं तो पुनः इसी स्तर पर संस्थिति के पुनः स्थापित होने की प्रवृत्ति होगी।

अल्पस्तरीय संस्थिति की स्थिति में बचत एवं विनियोग की दर अत्यन्त ही कम होती है। इस स्थिति में यदि प्रति व्यक्ति आय को न्यूनतम जीवन निर्वाहस्तर से ऊपर उठाया गया तो इसके कारण जनसंख्या में वृद्धि प्रेरित होगी। जनसंख्या की यह वृद्धि प्रति व्यक्ति आय में कमी लायेगी और अर्थव्यवस्था पुन: उसी न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तरीय प्रति व्यक्ति आय के साथ संस्थिति जाल में फंसी रहती है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि प्रति व्यक्ति आय को ऊपर नहीं उठने देती। नेल्सन ने यह प्रतिपादित किया कि इस निम्न संतुलन पाश से बाहर निकालने के लिए यह आवश्यक है कि इतनी अधिक मात्रा में विनियोग किया जाये कि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर को पीछे छोड़ दे क्योंकि प्रारम्भ में जब प्रति व्यक्ति आय जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर उठती है तो उसके साथ जनसंख्या भी बढ़ती है पर एक सीमा के बाद प्रतिव्यक्ति आय में और वृद्धि होने पर जनसंख्या की वृद्धि दर में गिरावट होने लगती है।

13.3.2 सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of this Theory)

आर. आर. नैल्सन ने अल्पविकसित देशों के लिए निम्न संतुलन पाश का सिद्धान्त विकसित किया, नैल्सन का सिद्धान्त माल्थम की इस उपकल्पना पर आधारित है कि किसी देश की प्रति व्यक्ति आय के **'न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर'** से बढ़ जाने पर जनसंख्या बढ़ने लगती है, परन्तु जब जनसंख्या की वृद्धि दर **'एक उच्च भौतिक सीमा'** पर पहुंच जाती है तो प्रति व्यक्ति आय में और वृद्धियां होने पर यह (जनसंख्या वृद्धि-दर) गिरने लगती है। **नेल्सन** के अनुसार ***"अल्पविकसित देशों के रोग की पहचान यह है कि वह प्रति व्यक्ति आय का ऐसा स्तर है जो निर्वाह आवश्यकताओं पर या उनके निकट पहुंचकर स्थिर हो जाता है।"*** प्रति व्यक्ति आय के स्थिर संन्तुलन स्तर पर बचत की दर और परिणामतः शुद्ध निवेश की दर एक नीचे स्तर पर रहती है। जब कुल राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर बढ़ाकर बचत एवं निवेश की दर बढ़ाने के प्रयत्न किए जाते हैं तो उनके साथ जनसंख्या वृद्धि की दर भी ऊंची हो जाती है तो प्रति व्यक्ति आय को पीछे धकेल कर उसको स्थिर संतुलन स्तर पर पहुंचा देती है। इस प्रकार अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाएं निम्न संतुलन पाश की जकड़ में फंस जाती है।

13.3.3 सिद्धान्त के मुख्य बिन्दु (Important Points of this Theory)

नेल्सन ने चार सामाजिक एवं प्रौद्योगिक स्थितियों का उल्लेख किया है जो पाश करने में सहायक होती है। ये हैं -

1. प्रति व्यक्ति आय के स्तर एवं जनसंख्या वृद्धि की दर में ऊंचा सहसंबंध है।
2. अतिरिक्त प्रतिव्यक्ति आय को बढ़ाते हुए प्रति व्यक्ति निवेश में लगाने की न्यून प्रवृत्ति।
3. अकृषि योग्य कृषि भूमि की दुर्लभता।
4. उत्पादन के अदक्ष तरीके।

उपयुक्त कारको के साथ प्रो नैल्सन ने दो कारण और बताए- सांस्कृति निष्क्रियता एवं आर्थिक निष्क्रियता। सांस्कृतिक निष्क्रियता से आर्थिक निष्क्रियता और आर्थिक निष्क्रियता से सांस्कृतिक निष्क्रियता आती है। अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास के अध्ययन से पता चलता है कि ऊपर बताई गई स्थितियों की उपस्थिति के कारण अधिकांश अल्प विकसित देश निम्न संतुलन पाश मे जकड़े हुए हैं।

आय के निम्न स्तर पर किसी अर्थव्यवस्था का पाशन समझाने के लिए नैल्सन ने संबंधों के तीन सैट प्रयोग किए हैं। ***प्रथम***, आय पूँजी स्टॉक, प्रौद्योगिकी स्तर एवं जनसंख्या आकार का फलन है। ***दूसरे***, शुद्ध निवेश यह पूँजी है जो औद्योगिक क्षेत्र में औजारों एवं उपकरणों के स्टॉक में बढोत्तरियों के रूप में हुई बचतों (जमा) के साथ कृषिगत भूमि की मात्रा में नई भूमि की बढ़ोत्तरी से है, जो कि बचतो पर आधारित होती है। ***तीसरे***, यदि प्रति व्यक्ति आय नीची हो तो मृत्युदर में परिवर्तनों के कारण जनसंख्या वृद्धि की दर में अल्पकालीन परिवर्तन होते हैं, और प्रति व्यक्ति आय के स्तर में परिवर्तनों के कारण मृत्युदर में परिवर्तन होते हैं। फिर भी, जब प्रति व्यक्ति आय एक बार निर्वाह आवश्यकताओं के स्तर से भली प्रकार ऊपर पहुंच जाती है, तो प्रति व्यक्ति आय में होने वाली और वृद्धियों का मूल्य दर पर प्रभाव नहीं के बराबर होता है।

नेल्सन मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि जनसंख्या की वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय एवं राष्ट्रीय आय की वृद्धि परस्पर आश्रित एवं सम्बन्धित है। नेल्सन ने अपने मॉडल की रूपरेखा तीन समीकरणों के आधार पर की

<u>पूँजी निर्माण से सम्बन्धित समीकरण –</u>

अर्थव्यवस्था में पूँजी निर्माण बचत एवं नयी भूमि को जोत में लाने के द्वारा होगी अर्थात dk + dR = dk का जिसमें dk बचत द्वारा निर्मित पूँजी स्टाक में वृद्धि एवं dR भूमि में वृद्धि प्रदर्शित करता है। चूंकि जैसे-जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती जाती है नयी भूमि जोत में आती है, पर एक सीमा के बाद नयी भूमि में वृद्धि दुर्लभ हो जाएगी, इसलिए यह मान लिया गया है कि नयी भूमि पूँजी निर्माण की स्रोत नहीं है, पूँजी स्टॉक में वृद्धि बचत के द्वारा ही होगी। यह भी मान लिया गया है कि सभी बचत विनियोजित हो जाएगी, इस प्रकार

पूँजी निर्माण में वद्धि = बचत में वद्धि = औद्योगिक क्षेत्र में विनियोग में वृद्धि

विनियोग में कोई वृद्धि सम्भव नहीं होगी जब तक आय जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर नहीं हो जाती जिसके बाद इसमें वृद्धि प्रति व्यक्ति आय के साथ होती है। नेल्सन ने यह भी माना कि अविनियोग की भी एक निचली सीमा है क्योंकि कोई कितना भी भूखा क्यों न हो वह रेल या सड़क तोड़कर नहीं खायेगा। प्रति व्यक्ति बचत वृद्धि दर (dk'/P) एवं प्रति व्यक्ति आय (Y/P) के सम्बन्ध को रेखा चित्र संख्या 13.1 में दिखाया गया है।

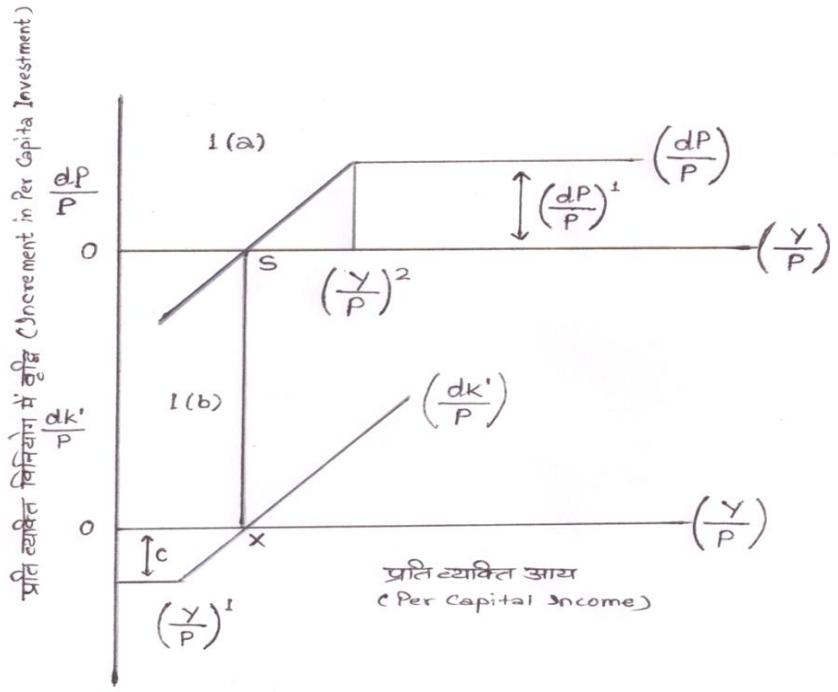

चित्र संख्या -13.1

इस रेखाचित्र में आधार अक्ष पर प्रति व्यक्ति आय (Y/P) एवं लम्ब अक्ष पर प्रति व्यक्ति विनियोग में वृद्धि दर प्रदर्शित है। रेखाचित्र X बिन्दु आय के उस स्तर को प्रदर्शित करता है जिस पर बचत शून्य है। X से बायीं ओर नीचे (Y/P) तक प्रति व्यक्ति आय इतनी कम है कि अबचत या अविनियोग की स्थिति है जो कि C की स्थिर दर से मान ली गयी है। (Y/P) स्तर के बाद प्रति व्यक्ति बचत प्रतिव्यक्ति आय के साथ बढ़ती है।

जनसंख्या वृद्धि समीकरण (Population Growth Equation) –

यह मान लिया गया है कि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के साथ जनसंख्या की वृद्धि दर (dP/P) मृत्युदर की गिरावट के कारण बढ़ती है। प्रति व्यक्ति आय एवं जनसंख्या की वृद्धि दर के बीच सम्बन्ध को

रेखाचित्र संख्या 13.1 में दिखाया गया है। रेखाचित्र में बिन्दु (S) न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तरीय प्रति व्यक्ति आय प्रदर्शित करता है। S से बायीं ओर जब प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर से भी कम है, जनसंख्या की वृद्धि दर ऋणात्मक है अर्थात मृत्युदर जन्मदर से अधिक है पर जब प्रति व्यक्ति आय से ऊपर बढ़ती है तो जनसंख्या तब तक बढ़ती है जब तक कि यह ऊपरी सीमा T तक नहीं पहुंच जाती। इसके बाद जनसंख्या की वृद्धि दर इसी स्तर पर रहती है जब तक कि प्रति व्यक्ति आय का स्तर (Y/P) नहीं हो जाता, उसके बाद इसमें गिरावट शुरू हो जाती है। अर्थात उच्च प्रति व्यक्ति आय स्तर पर जनसंख्या की वृद्धि दर गिरेगी। इस रेखाचित्र में PP वक्र प्रति व्यक्ति आय के विभिन्न स्तरों पर **'जनसंख्या वृद्धि पथ'** प्रदर्शित करता है।

आय निर्धारण समीकरण (Income Determination Equation) –

नेल्सन माडल में आय निर्धारण, समीकरण, उत्पादन फलन की ही तरह है। माडल इस मान्यता पर आधारित है कि आय उत्पादन साधनों के रूप में आगतों का रैखिक सहजातीय फलन है अर्थात **Y अथवा O = f (T)** जिसमें K पूँजी, L = श्रम (जो जनसंख्या का एक स्थिर अनुपात है) एवं T कुल उत्पादकता का निर्देश है। प्रौद्योगिकी एवं सामाजिक ढांचा को स्थिर मान लिया गया है।

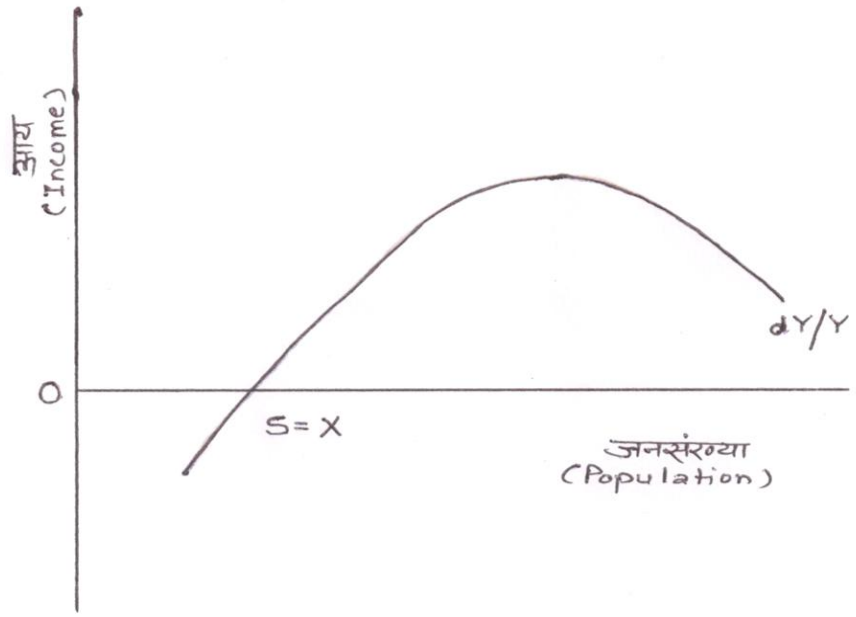

चित्र संख्या -13.2

मॉडल की मान्यताओं के आधार पर **'आय वृद्धि वक्र'** का निर्माण किया जा सकता है, जिसका प्रदर्शन रेखाचित्र संख्या 13.2 में dY/Y वक्र के द्वारा किया गया है। जिसका निर्धारण रेखाचित्र संख्या 13.1 से किया गया है। इस स्थिति में जनसंख्या स्थिर है। बचत के द्वारा निर्मित प्रति व्यक्ति पूँजी शून्य है। फलस्वरूप आय की वृद्धि दर शून्य (dY/Y= 0) है। इस स्थिर संस्थिति के स्तर से ऊपर प्रति व्यक्ति आय के वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति पूँजी की उपलब्धता एवं श्रम शक्ति के वृद्धि के कारण आर्थिक विकास की दर में वृद्धि होती है, पर प्राविधिक प्रगति के अभाव में **'परिवर्तनशील अनुपात नियम'** के क्रियाशीलन के कारण वृद्धि दर में गिरावट आयेगी। इसके पूर्व हम लोगों ने नेल्सन माडल के उन तीन समीकरणों की व्याख्या की एवं रेखाचित्र संख्या 13.1 एवं 13.2 के अंतर्गत उनके आधार पर तीन महत्वपूर्ण वक्र प्राप्त की। (dp/P) या जनसंख्या में वृद्धि दर वक्र, (dK/P) प्रति व्यक्ति निवेश वृद्धि दर वक्र एवं (dY/Y) आय

वृद्धि दर वक्र। इन तीनों समीकरणों एवं तीनों वक्रों के आधार पर नेल्सन ने अपने माडल की व्याख्या की। नेल्सन माडल की व्याख्या के लिए हम 13.21एवं 13.2 में दिये गये रेखाचित्रों को मिलाकर नीचे रेखाचित्र 13.3 दे रहे हैं। जिसके आधार पर अल्पस्तरीय आय संस्थिति पाश की स्थिति प्रदर्शित की गयी है जिसमें प्रति व्यक्ति आय स्थायीरूप से गिरावट की स्थिति में है को प्रदर्शित किया गया है।

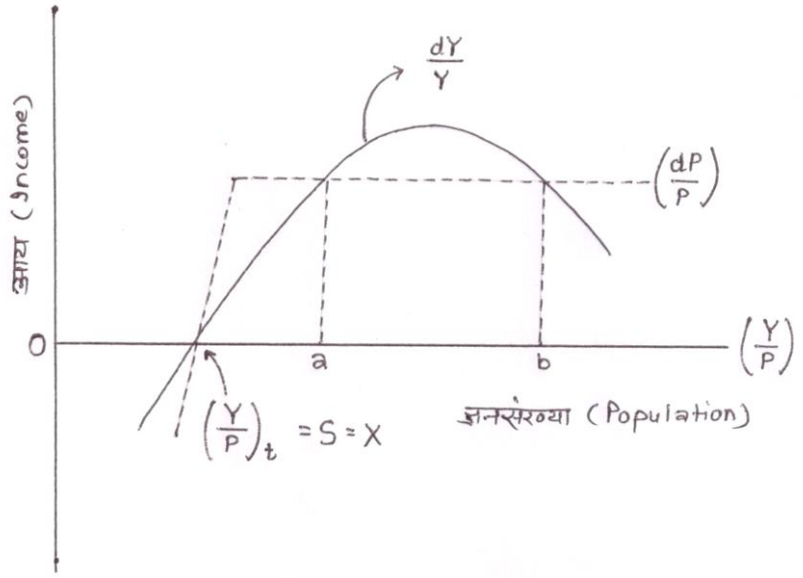

चित्र संख्या- 13.3

इस रेखाचित्र में (dY/Y) आय वृद्धि दर वक्र है जिसे रेखाचित्र संख्या 13.2 से लिया गया है एवं (dP/P) वक्र जनसंख्या वृद्धि दर वक्र है जिसे रेखा 1 (a) से लिया गया है। रेखाचित्र 1 (b) से X का स्तर लिया गया है जो सुविधा क लिए S के बराबर मान लिया गया है। रेखाचित्र 13.3 में S = X एक ऐसा बिन्दु है जिस पर प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर के बराबर है जिस पर जनसंख्या की वृद्धि दर स्थिर है एवं दूसरी ओर यह प्रदर्शित करता है कि इस बिन्दु पर प्रति व्यक्ति बचत एवं निवेश शून्य है।

प्रति व्यक्ति आय के प्रत्येक स्तर पर जो जीवन निर्वाह स्तर बिन्दु (S = X) एवं Oa के बीच हो, जनसंख्या की वृद्धिदर आय की वृद्धि दर की अपेक्षा अधिक होगी, इसके परिणाम स्वरूप प्रति व्यक्ति आय मे स्थायी रूप से गिरावट होगी और यह जीवन निर्वाह स्तर पर पहुंच जाएगी, संस्थिति प्रति व्यक्ति आय का स्तर वहां होगा जहां जनसंख्या की वृद्धि दर प्रदर्शित करने वाली वक्र (dP/P) आय संवृद्धि पर दर वक्र (dY/Y) को नीचे से काटे। ऐसा एक बिन्दु Oa के बायीं ओर वहां होगा जहां S=X है। यह बिन्दु '**अल्पसन्तुलन पाश**' की स्थिति को प्रदर्शित करेगा। प्रति व्यक्ति आय का कोई भी स्तर जो Oa से कम हो, प्रति व्यक्ति आय को आवश्यक रूप से जीवन निर्वाह स्तर पर पहुंचा देगा। इसके विपरीत यदि प्रति व्यक्ति आय का स्तर Oa से अधिक हो तो प्रति व्यक्ति आय में तब तक स्थायी वृद्धि होगी जब तक कि दोनों वक्रं एक दूसरे को Ob स्तर पर पुनः नहीं काटतीं। यह एक नयी स्थिर संस्थिति की स्थिति होगी जहां '**जनसंख्या की वृद्धि दर वक्र**' आय वृद्धि दर वक्र को नीचे से काटती हे। इस '**अल्प सन्तुलन पाश**' से निकलने के लिए दो रास्ते हैं - या तो प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाकर Oa कर दिया जाये या सरकारी नीतियों के द्वारा dY/Y एवं dP/P वक्रं वांछित रूप से विवर्तित कर दी जायें। ऐसे

विकासशील देश जो ऐसे पाश में फंसे हैं उन्हें एक बार में अपनी प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाकर Oa के बराबर लाना होगा। ये देश इस पाश से तभी छूट सकते हैं जब प्राविधिक प्रगति के कारण समयान्तर में dY/Y को ऊपर विवर्तित किया जा सके या प्रभावपूर्ण जनसंख्या नीति द्वारा dP/P वक्र को नीचे विवर्तित किया जा सके। जैसा आगे हम **'लीबन्स्टीन के आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त'** एवं **'प्रबल धक्का सिद्धान्त'** की व्याख्या के दौरान देखेंगे कि दोनों मे ही यह प्रतिपादित किया गया है कि इस स्तरीय संस्थिति जाल से निकलने के लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में एक साथ इतनी अधिक मात्रा में निवेश किया जाय कि प्रति व्यक्ति आय एक बारगी Oa से अधिक हो जाये। लॉ मिंट ने नेल्सन माडल को अल्प विकसित देशों के सम्बन्ध में लागू करने के सम्बन्ध में कुछ कठिनाइयों को बताया है -

क. प्रति व्यक्ति आय स्तर, जनसंख्या की वृद्धि दर एवं कुल आय की वृद्धि दर के बीच नेल्सन ने फलनात्मक सम्बन्ध की बात की पर मिंट के अनुसार इनके बीच इस प्रकार के निश्चित एवं कठोर फलनात्मक सम्बन्ध को खींचा नहीं जा सकता है। आजकल अल्प विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के कारण नहीं है बल्कि सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं, महामारी एवं भयानक बीमारियों आदि के नियंत्रण के परिणामस्वरूप मृत्युदर की कमी के कारण हुयी है। मिण्ट का यह भी कहना है कि प्रति व्यक्ति आय के स्तर एवं कुल आय में वृद्धि दर के बीच फलनात्मक सम्बन्ध अत्यन्त ही जटिल हैं।

ख. नेल्सन के रेखाचित्र 13.3 पर टिप्पणी करते हुए मिण्ट ने दो आपत्तियां उठाईं। प्रति व्यक्ति आय के स्तर में थोड़ी सी वृद्धि जैसे S से CS बिन्दु पर पुनः स्थिर सस्थिति की स्थिति कायम तभी करेगी जबकि समय' को वक्र खींचते समय नहीं लिया गया पर यदि 'समय' को लिया गया तो S से C पर परिवर्तन के साथ पूँजी स्टाक में स्थायी वृद्धि हो जाएगी ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था फिर C से खिसक कर S पर नहीं आयेगी।

13.3.4 सिद्धान्त की आलोचनायें (Criticisms of this Theory)

1. जनसंख्या वृद्धि दर मरण दर से सम्बन्धित है ।
2. जन्मदर मे कमी प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के कारण नहीं होती।
3. जन्मदर कम करने के लिए राज्य प्रयत्नों की उपेक्षा की गई करता है।
4. समय तत्व की उपेक्षा।
5. प्रति व्यक्ति आय एवं वृद्धि दर में जटिल संबंध।
6. यह बन्द अर्थव्यवस्था पर लागू होता है।

13.4 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1.लिबिन्सटीन के ही समान विचार ..... अर्थशास्त्री ने दिये। (रोडान **या** नेल्सन)

2.नेल्सन ने ..... सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। (निम्न संतुलन पाश सिद्धान्त **या** बड़े धक्के के सिद्धान्त)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथनों का चुनाव कीजिए-

1. नेल्सन का सिद्धान्त माल्थस की इस उपकल्पना पर आधारित है कि किसी देश की प्रति व्यक्ति आय के न्यूनतम जीवन स्तर से बढ़ जाने पर जनसंख्या बढ़ने लगती है।

2. नेल्सन मॉडल में आय निर्धारण समीकरण उत्पादन फलन की ही तरह है।

3. 'गुणक एवं त्वरक सिद्धान्तों के मध्य वैवाहिक सम्बन्ध है।' की व्याख्या नेल्सन ने की।

13.5 सारांश (Summary)

निम्न संतुलन पाश से बचने के लिए नेल्सन ने अनेक साधन लक्ष्य किए हैं। प्रथम, देश में अनुकूल सामाजिक-राजनैतिक वातावरण होना चाहिए। दूसरे, मितव्ययिता एवं उद्यम वृत्ति पर अधिक बल देकर सामाजिक ढांचे में परिवर्तन लाया जाए। अधिक उत्पादन के लिए और प्रोत्साहन दिए जाएं। परिवार का आकार सीमित रखने के लिए भी प्रोत्साहन दिए जाए। तीसरे, आय के वितरण में परिवर्तन लाने के लिए कदम उठाए जिससे निवेशक धन संचय कर सकें। चौथे, एक सर्वव्यापी सरकारी निवेश कार्यक्रम होना चाहिए। पांचवे, विदेशों से कोष प्राप्त करके आय एवं पूँजी बढ़ाई जाए। अन्तिम, विद्यमान साधनों को अधिक पूर्णता से उपयोग में लाने के लिए उत्पादन की सुधरी तकनीकें काम में लायी जायें, ताकि दिये हुए उपकरणों से आय बढ़ जाये। अल्प विकसित देशों में निम्न संतुलन पाश से बचने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि यह अधिक हो। जब किसी निश्चित न्यूनतम प्रति व्यक्ति आय स्तर से ऊपर एक बार यह स्थिति उपलब्ध हो जाएगी, तो सरकारी प्रयत्न के बिना भी तब तक सतत वृद्धि होती चलेगी जब तक कि प्रति व्यक्ति आय का एक नया उच्च स्तर नहीं आ जाता।

13.6 शब्दावली (Glossary)

- **उच्च भौतिक सीमा (High Physical Limit) :** उच्चतम उपभोग की अवस्था।
- **न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर (Minimum Subsistence Level)** : आय की वह मात्रा जो मात्र अति आवश्यक उपभोग को ही क्रय कर सके अर्थात आय का निम्न स्तर।
- **प्रबल धक्का सिद्धान्त (Big Push Theory) :** एक आर्थिक सिद्धांत जिसमें विकास की शुरुआत के लिए अर्थव्यवस्था में बड़े पैमाने पर निवेश की आवश्यकता होती है।
- **अल्पसन्तुलन पाश (Low Equilibrium Trap) :** वह स्थिति जब एक अर्थव्यवस्था विकास के निम्न स्तर पर स्थिर हो जाती है और आगे नहीं बढ़ पाती।
- **परिवर्तनशील अनुपात नियम (Variable Proportion Rule) :** उत्पादन में विभिन्न संसाधनों के प्रयोग के अनुपात को बदलने का सिद्धांत।
- **आय निर्धारण समीकरण (Income Determination Equation) :** वह समीकरण जो आय के निर्धारण के लिए प्रयोग होता है।

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. नेल्सन 2. निम्न संतुलन पाश सिद्धान्त

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथनों का चुनाव कीजिए-

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य

13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- प्रो. एम. एल. झिगन (2010) ***विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन***, बिन्द्रा पब्लिशिग हाउस, दिल्ली।
- प्रो. एस. एन. लाल (1999) ***आर्थिक विकास एवं आयोजन*** , शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद।

- प्रो. एस. पी. सिह (2009) ***आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन***, एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन दिल्ली।

13.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- R. R. Nelson, "***A theory of the low level Equilibrium Trap***". American Economic Review.
- Agarwal, R. C. : "***Economics of Development and Planning***" , Lakshmi Narayan Agarwal, Agra 2007
- Taneja, M.L. & Myer R.M.: "***Economics of Development and Planning***" Vishal Publishing Co., Delhi, 2010

13.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. नेल्सन के निम्न संतुलन पाश सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करिए।
2. नेल्सन के निम्न संतुलन पाश सिद्धान्त के मुख्य बिन्दु की व्याख्या करिए।
3. आपकी राय में निम्न संतुलन पाश से बचने के क्या उपाय हो सकते हैं?

इकाई 14 - रोजेन्स्टीन का बड़े धक्के का सिद्धान्त
(Big Push Theory of Rosenstein)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)
14.2 उद्देश्य (Objectives)
14.3 बड़े धक्के के सिद्धान्त (Big Push Theory)
14.3.1 सिद्धान्त की अवधारणा (Concept of this Theory)
14.3.2 सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of this Theory)
14.3.3 अविभाज्यतायें एवं मितव्ययिताएं (Indivisibilities and Economies)
14.3.4 सिद्धान्त के गुण (Properties of this Theory)
14.3.5 सिद्धान्त की आलोचनायें (Criticisms of this Theory)
14.4 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)
14.5 सारांश (Summary)
14.6 शब्दावली (Glossary)
14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
14.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
14.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Text)
14.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रो. पाल. एन. रोजेन्स्टीन रोडान द्वारा प्रतिपादित **प्रबल प्रयास** या **बड़े धक्के का सिद्धान्त लीबन्स्टीन** के **'आवश्यक न्यूनतम प्रयास'** से काफी मिलता जुलता है। **रोडान** 'सन्तुलित विकास' के समर्थक थे लेकिन विकास की धीमी प्रक्रिया से सहमत न थे। उनका विश्वास था कि दीर्घकालीन स्थिरता और विषैले चक्रों में फंसी अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं को आत्म निर्भर विकास के मार्ग पर लाने के लिए बड़े धक्के की आवश्यकता होती है। **रोडान** के अनुसार जिस प्रकार एक सोते हुए व्यक्ति को एकदम झकझोर कर ही उठाना पड़ता है ठीक उसी प्रकार नियोजन का उद्देश्य अर्थव्यवस्था को उसके निम्न स्तरीय साम्य से झटके के साथ बाहर निकाल कर संचयी विकास पर आरूढ़ करना होना चाहिए।

14.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम -

- ✓ बड़े धक्के के सिद्धान्त से क्या तात्पर्य को समझ सकेंगे।
- ✓ बड़े धक्के से सम्बन्धित विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की क्षमता को जानेंगे।
- ✓ अविभाज्यतायें एवं मितव्ययिताओं के तात्पर्य को जानेंगे।
- ✓ अविभाज्यतायें के प्रकारो को समझ सकेंगे ।

14.3 बड़े धक्के के सिद्धान्त (Big Push Theory)

14.3.1 सिद्धान्त की अवधारणा (Concept of this Theory)

यह सिद्धान्त हमें यह बतलाता है कि धीरे धीरे चलने से आर्थिक बाधाएं दूर नहीं हो सकती। एक कमजोर इंसान द्वारा, किसी शक्तिशाली शिकंजे से मुक्त होने के लिए हल्का फुल्का प्रयास करना अपनी ताकत को बर्बाद करना है। उसे तो बची-खुची सम्पूर्ण ताकत को एक दफा समेट कर लगाना होगा ताकि मुक्ति की सम्भावना प्रबल हो सके। यही बात अर्थव्यवस्थाओं के साथ भी लागू होती है। स्थिर अवस्था में पड़ी हुई अर्थव्यवस्थाओं को गति प्रदान करने के लिए एक **'आवश्यक न्यूनतम मात्रा'** में निवेश करना बहुत जरूरी है ताकि अर्थव्यवस्था को झटके के साथ इस स्थैतिक अवस्था से बाहर निकाला जा सके। रोडान ने अपने तर्क हेतु एक उदाहरण देते हुए कहा है कि एक पिछडे हुए देश को आत्म निर्भर विकास के मार्ग पर लाना, सही अर्थ में; एक हवाई जहाज को जमीन से ऊपर उड़ाने के समान है। जिस प्रकार हवाई जहाज उड़ाने के लिए जमीन पर एक ***"आवश्यक न्यूनतम गति को बनाये रखना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए साधनों की एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा होती है जिसका निवेश करना जरूरी है।"***

14.3.2 सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of this Theory)

'बड़ा धक्का' अथवा **'प्रयास सिद्धान्त' प्रो. पाल. एन. रोजेन्स्टीन रोडान** के नाम से संबद्ध है। थीसिस यह है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में विकास की बाधाओ को पार करने और उसे प्रगति पथ पर चलाने के लिए ***'बडा धक्का' या बड़ा व्यापक प्रोग्राम आवश्यक है, जो न्यूनतम किन्तु उच्च मात्रा में निवेश के रूप में हो। उसने M.I.T. अध्ययन से अपने तर्क पर बल देने के लिए एक 'सादृश्य' प्रस्तुत किया है। यदि विकास प्रोग्राम को थोड़ा भी सफल बनाना है, तो संसाधनों का एक न्यूनतम स्तर उस प्रोग्राम में लगाना ही पड़ेगा। किसी देश की वृद्धि को आत्मनिर्भरता की अवस्था में लाना ठीक ऐसा ही है, जैसा हवाई जहाज को धरती से हवा में उड़ाना। भूमि पर एक ऐसी क्रांतिक गति होती है, जिसे विमान को***

वायुवाहित बनाने के लिए धरती पर ही पार करना पड़ता है।" यह सिद्धान्त कहता है कि **'धीरे-धीरे'** चलने से अर्थव्यवस्था को सफलतापूर्वक विकास पथ पर नहीं लाया जा सकता बल्कि इसके लिए आवश्यक स्थिति यह है कि एक न्यूनतम मात्रा में निवेश किया जाए। इसके लिए उन ब्राहय मितव्ययिताओं को प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है, तो तकनीकी रूप में स्वतंत्र उद्योगों की एक साथ स्थापना से उत्पन्न होती है। इस प्रकार निवेश की न्यूनतम मात्रा में प्रवाहित होने वाली अविभाज्यताएँ एवं बाहय मितव्ययिताएं आर्थिक विकास का सफलतापूर्वक सूत्रपात करने के लिए आवश्यक है।

14.3.3 अविभाज्यतायें एवं मितव्ययिताएं (Indivisibilities and Economies)

रोजेन्स्टीन रोडान ने तीन विभिन्न प्रकार की अविभाज्यताओं एवं बाहय मितव्ययिताओं में भेद किया है।

1. उत्पादन फलन में अविभाज्यताएं विशेष रूप से सामाजिक उपरि पूँजी की पूर्ति की अविभाज्यता,
2. माँग की अविभाज्यता,
3. बचतों की पूर्ति में अविभाज्यता।

आर्थिक विकास लाने में इन अविभाज्यताओं के कार्य का हम अब विश्लेषण करते हैं।

1. उत्पादन फलन में अविभाज्यताएं (Indivisibilities of Production Function)- रोजेन्स्टीन रोडान के अनुसार, आगतों-निर्गतों एवं प्रक्रियाओं की अविभाज्यताओं से बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते हैं। उसका दृढ़ विश्वास है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में बढ़ते प्रतिफलों ने पूँजी उत्पादन अनुपात कम करने में काफी भाग लिया था। परन्तु वह सामाजिक उपरि पूँजी को अविभाज्यता कि और इसलिए पूर्ति पक्ष में बाहय मितव्ययिताओं का, अत्यन्त महत्वपूर्ण उदाहरण मानता है। सामाजिक उपरि पूँजी की सेवाएं, जिनके अंतर्गत आधारभूत उद्योग जैसे विद्युत, परिवहन एवं संचार है, अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादक हैं और उनकी पूरी होने की अवधि लम्बी होती है। इनका आयात नहीं हो सकता। उनकी सस्थापनाएं काफी प्रारंभिक राशि के निवेश की अपेक्षा रखती है। इसलिए उनमें कुछ समय तक अप्रयुक्त क्षमता रहेगी। इनमें *"विभिन्न सार्वजनिक उपयोगिताओं का अहास्य न्यूनतम उद्योग मिश्रण होता है, जिसके कारण अल्प विकसित देश को अपने कुल निवेश का 30-40 प्रतिशत इन दिशाओं में लगाना पड़ेगा।"* इसलिए उन्हें शीघ्र फलदायक प्रत्यक्षत: उत्पादक निवेशों से पहले होना चाहिए।

इस प्रकार, रोडान के अनुसार, **सामाजिक उपरि पूँजी को चार अविभाज्यताएं विशिष्टता** प्रदान करती हैं। **प्रथम**, यह काल में अप्रतिवर्त्य होती है और इसलिए आवश्यक है कि अन्य प्रत्यक्षत: उत्पादक निवेशों से यह पहले हो। **दूसरे**, इसमें एक निश्चित न्यूनतम टिकाऊपन होता है, जो इसे गठीला बनाता है। **तीसरे**, इनकी गर्भावधि लम्बी होती है (अर्थात यह देर में फल देना शुरू करती है) अन्तिम, इसमें विभिन्न प्रकार की सार्वजनिक उपयोगिताओं का एक निश्चित न्यूनतम अहास्य उद्योग मिश्रण होता है। सामाजिक उपरि पूँजी की पूर्ति की ये अविभाज्यताएं अल्पविकसित देशों में विकास की प्रमुख बाधा है, इसलिए शीघ्र फलदायक प्रत्यक्षतः उत्पादक निवेशों का मार्ग चलाने के लिए आवश्यक है कि सामाजिक उपरि पूँजी में उच्च प्रारम्भिक निवेश किया जाए।

2. माँग की अविभाज्यता (Demand Indivisibilities) – माँग की अविभाज्यता या पूरकता इस बात की अपेक्षा रखती है कि अल्प विकसित देशों में परस्पर-निर्भर उद्योगों की एक साथ स्थापना हो। व्यक्तिगत निवेश परियोजनाओं में भारी जोखिम रहता है क्योंकि अनिश्चितता यह होती है कि उनकी वस्तुओं के लिए मार्केट होगी भी या नहीं, इसलिए निवेश सम्बन्धी निर्णय परस्पर निर्भर रहते हैं। रोजेन्स्टीन रोडान ने अपनी बात स्पष्ट करने के लिए जूता-फैक्टरी का प्रसिद्ध उदाहरण दिया है। शुरू में बन्द

अर्थव्यवस्था लेकर, मान लीजिए, कि एक जूता फैक्ट्री में सौ अदृश्य बेरोजगार श्रमिक काम पर लगाए जाते हैं, जिनकी मजदूरी अतिरिक्त आय का निर्माण करती है। यदि ये श्रमिक अपनी समस्त आय उन जूतों पर खर्च करें जिनका वे निर्माण करते हैं तो जूता मार्केट में निरन्तर माँग रहेगी और इस प्रकार उद्योग सफल हो जाएगा। परन्तु वे अपनी समस्त अतिरिक्त आय जूतों पर नहीं खर्च करेंगे क्योंकि मानवीय आवश्यकताएं नाना प्रकार की होती हैं। फैक्टरी के बाहर के लोग भी इन अतिरिक्त जूतों को नहीं खरीदेंगे क्योंकि वे दरिद्र हैं और उनके पास इतना धन नहीं है कि अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा कर सकें। इस प्रकार मार्केट के अभाव के कारण कई फैक्टरी उजड़ जाएगी

इसी उदाहरण को बदलकर प्रस्तुत किया जा सकता है। मान लीजिए कि एक फैक्टरी में सौ की बजाय सौ फैक्टरियों में दस हजार श्रमिक लगे हैं, जो विविध प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और उन वस्तुओं के क्रय में अपनी मजदूरी खर्च करते हैं। नए उत्पादक एक दूसरे के ग्राहक होंगे और इस प्रकार अपनी वस्तुओं के लिए मार्केट बना लेंगे। माँग की पूरकता मार्केट ढूंढने की जोखिम को घटाती है और निवेश की प्रेरणा को बढ़ाती है। दूसरे शब्दों में, अल्पविकसित देशों में मार्केट का छोटे आकार एवं निवेश कम प्रेरणा को पार करने के लिए, माँग की अविभाज्यता परस्पर निर्भर उद्योगों में एक उच्च न्यूनतम मात्रा में निवेश को आवश्यक बना देती है।

रोजेन्स्टीन -रोडान की जूता फैक्टरी का उदाहरण चित्र में समझाया गया है। ATC एवं MC वक्र एक प्लाट की लागत को दर्शाता है जो कि एक इष्टतम आकार के प्लाट से कुछ छोटा है D1 एवं MR1 जूता फैक्टरी के माँग और सीमांत आगम वक्र है अब केवल इसी में निवेश किया जाता है। यह OO1 (10,000) जूतों का उत्पादन करती है जिन्हें OP1 कीमत पर बेचती है जो इसकी ATC (औसत कुल लागत) को पूरा नहीं करती है। अतः फैक्टरी Cab P1 हानि उठा रही है परन्तु जब एक साथ अनेक विभिन्न उद्योगों में निवेश किया जाता है तो जूतों की मार्केट का प्रसार होता है जिससे जूतों की माँग (चार गुणा) D4 बढ़ती है एवं जूतों की पूर्ति OO4 (40,000) हो जाती है। अब जूता फैक्टरी P4RST के बराबर लाभ कमाती है। इसी प्रकार अन्य उद्योग भी लाभ कमाते हैं।

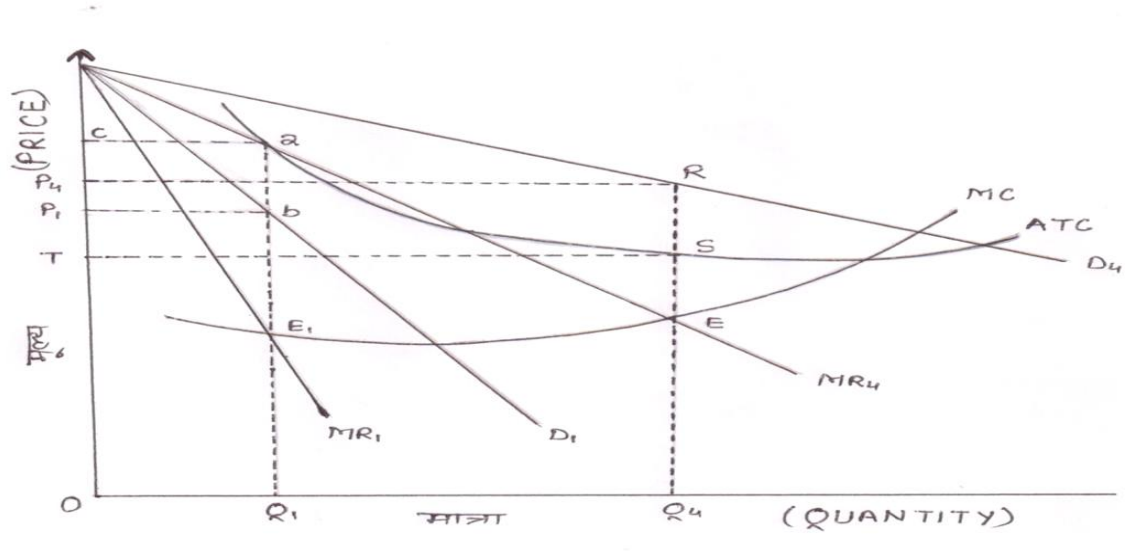

चित्र संख्या -14.1

3. बचतों की पूर्ति में अविभाज्यता (Indivisibilities of Saving) – रोजेन्स्टीन के सिद्धान्त में बचत की उच्च-आय-लोच तीसरी अविभाज्यता है निवेश के एक उच्च न्यूनतम आकार के लिए बचतों की उच्च मात्रा की आवश्यकता होती है। दरिद्र अल्पविकसित देशों में इसे उपलब्ध कराना आसान नहीं क्योंकि वहां

आय का स्तर बहुत कम होता है। इस कठिनाई को पार करने के लिए यह आवश्यक है कि जब निवेश में वृद्धि होने के कारण आय बढ़े, तो बचत की औसत दर की अपेक्षा बचत की सीमान्त दर कभी अधिक नहीं रहे।

इन तीन अविभाज्यताओं एवं इनके द्वारा उत्पन्न बाह्य मितव्ययिताओं के दिए हुए होने पर अल्पविकसित देशों में विकास की बाधाओं को पार करने के लिए **'बड़ा प्रयास'** या न्यूनतम मात्रा का निवेश आवश्यक है। **रोडान** ने लिखा है, ***"विकास की सफलतापूर्ण नीति के लिए आवश्यक उत्साह एवं प्रयत्न में अन्ततः अविभाज्यता का तत्व होता है।"*** अकेले एवं हल्के ढंग से धीरे धीरे चलने का आर्थिक वृद्धि पर पर्याप्त प्रभाव नहीं पड़ता। जब किसी अल्प विकसित अर्थव्यवस्था के भीतर एक न्यूनतम गति या मात्रा में निवेश होता है, तभी विकास का वातावरण बनता है। इस प्रकार जब एक बार विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है तो यह एक साथ ही संतुलित वृद्धि के सम्बन्धों के मार्ग पर क्रियाशील होती है। ये तीन संबंध है: **प्रथम**, सामाजिक उपरि पूँजी एवं प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में संतुलन। **द्वितीय**, पूँजी वस्तु उद्योगों एवं उपभोक्ता वस्तु उद्योगों के अनुलंब संतुलन। **तृतीय**, बढ़ रही उपभोक्ता माँग में पूरकता के कारण विभिन्न उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में क्षैतिक संतुलन। इस प्रकार के संतुलित विकास के लिए विस्तृत प्रोग्रामिंग अपेक्षित होता है।

14.3.4 सिद्धान्त के गुण (Properties of this Theory)

यह सिद्धान्त तार्किक दृष्टि से काफी उचित जान पड़ता है क्योंकि विषम चक्रों से निकलने का एक मात्र सुसंगठित एवं शक्तिशाली ढंग से प्रयास करना है। यह सिद्धान्त कुछ बातों में स्थैतिक सन्तुलन के परम्परागत सिद्धान्त से भी श्रेष्ठ है। रोडान महोदय का यह कहना कि विकास प्रक्रिया अनेक असतत छलांगों का परिणाम है, पर्णतया सत्य जान पड़ता है। उनकी उत्पादन फलन की अविभाज्यताओं की मान्यता भी आर्थिक जगत की एक वास्तविकता है। यह सिद्धान्त अन्य विकसित देशों में पायी जाने वाली बाजार अपूर्णताओं से सम्बन्धित निवेश का एक मार्गदर्शक सिद्धान्त है जो हमें यह बताता है कि ऐसे देशों में कीमत-यन्त्र की बजाय निवेश की एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा ही आर्थिक विकास को गति प्रदान कर सकती है।

14.3.5 सिद्धान्त की आलोचनायें (Criticisms of this Theory)

सिद्धान्त के इन गुणों के बावजूद **प्रो. मिन्ट, ऐडलर, हैगन, किन्डलबर्जर, एलिस, वाइनर, बाल्डविन एवं हिगिन्स** द्वारा इसकी आलोचनाऐं की गयी हैं जो कि इस प्रकार है -

1. **सिद्धान्त का अवास्तविक होना (Unrealistic Nature of the Theory) -** यह सिद्धान्त अवास्तविक है क्योंकि अल्पविकसित देशों में निम्न आय, अल्प बचतें व पूँजीगत साधनों के अभाव के कारण बड़ी मात्रा में निवेश करना सम्भव नहीं होता।
2. **मितव्यायिताओं की असम्भावना (Improbability of Economies) -** यह सिद्धान्त उत्पादन के बड़े पैमाने की बाह्य मितव्ययिताओं पर आधारित एक सिद्धान्त है। लेकिन जैकब वाइनर का कहना है कि ये बाहरी बचतें तो विदेशी व्यापार से भी प्राप्त हो सकती हैं और फिर इतनी अधिक मात्रा में निवेश की भी आवश्यकता नहीं होगी। रोडान ने स्वयं भी इस बात को स्वीकार किया है।
3. **अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा (Neglect of Other Sectors) -** यह सिद्धान्त पूँजीगत परियोजनाओं एवं आर्थिक संरचना के क्षेत्र में विनियोग करने पर बल देता है लेकिन कृषि एवं प्राथमिक उद्योगों में विनियोग करने की अवलेहना करता है जो कि एक कृषि प्रधान अल्प विकसित देश के लिये उचित नहीं जान पड़ता।

4. **सामाजिक उपरि पूँजी की अविभाज्यता का अतार्किक दृष्टिकोण (Illogical Perspective of Indivisibility of Social Overhead Capital)-** सामाजिक उपरि पूँजी की अविभाज्यतायें रोडान के सिद्धान्त का सबसे प्रबल तर्क है लेकिन प्रो. मिंट (Prof. Mint) का कहना है कि प्रत्येक अल्प विकसित देश में ये सामाजिक उपरि पूँजी सुविधायें कुछ न कुछ मात्रा में पायी जाती है इसलिये समस्या इन सुविधाओं के नये सिरे से विकास करने की नहीं बल्कि उनमें सुधार करने की होती है। अतः इस दृष्टि से प्रबल प्रयास के रूप में निवेश करने का प्रश्न ही नहीं उठता और यदि निवेश कर भी दिया जाये तो यह जरूरी नहीं कि यह निवेश इन देशों के लिये अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सके।
5. **अल्प लागतों वाले विनियोजन से नगण्य मितव्ययितायें उपलब्ध होना (Negligible Economies from Low-Cost Allocations) –** प्रो. किन्डलबर्जर (Prof. Kindleburger) का कहना है कि उपभोक्ता उद्योगों में सम्भाव्य बाहरी बचतें सीमित मात्रा में ही प्राप्त की जा सकती हैं। अत्यधिक बेलोच माँग वाली वस्तुओं में निवेश करने से प्रदा नहीं बढ़ती बल्कि लागत घटने लगती है क्योंकि बाहरी बचतें केवल भारी उद्योगों ()में प्रदा के विस्तार होने से उत्पन्न हो सकती है। चूंकि लागत घटाने वाले निवेश में बचतें नगण्य होती हैं इसलिये इनमें निवेश करने और उनसे बचतें प्राप्त होने का तर्क गलत सिद्ध होता है।
6. **अल्प विनियोजन द्वारा प्रदा में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होना (Relatively Higher Increase in Output from Low Investment) -** प्रो. जॉन ऐडलर(Prof. John Elder) का मत है कि रोडान की इस थीसिस के विपरीत निवेश की साक्षेपत: कम मात्रा, प्रदा में अधिक वृद्धि कर देती है। ऐडलर के तर्क की पुष्टि भारत व अन्य एशियाई एवं दक्षिण अमेरिका के कुछ ऐसे देशों से भी होती है जहां निम्न पूँजी उत्पाद अनुपात के बावजूद प्रदा का स्तर संतोषजनक रहा है।
7. **स्फीतिकारी दबावों का उत्पन्न होना (Emergence of Inflationary Pressures) -** सामाजिक ऊपरी सुविधाओं पर किया गया निवेश प्रत्यक्ष रूप से न तो उत्पादन करता है और न ही इनसे शीघ्रगामी प्रतिफल ही प्राप्त हो सकते हैं। इतना ही नहीं, इन परियोजनाओं में पूँजी उत्पाद भी अधिक होता है और इनकी गर्भावधि भी लम्बी होती है। जिसके फलस्वरूप इस काल के दौरान विनियोगों के अधिक होने और उत्पादन के कम होने के कारण स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न होने लगते हैं।
8. **इतिहास द्वारा पुष्टि न होना (Lack of Historical Confirmation) –** प्रो. हेगन के मतानुसार यह सिद्धान्त पिछड़े देशों के तीव्र विकास का एक 'जोशीला नुस्खा' अवश्य है लेकिन भावनाप्रधान अधिक है। फिर, इसकी पुष्टि इतिहास के किसी भी चरण द्वारा नहीं होती।

14.4 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. प्रबल प्रयास का आर्थिक विकास का सिद्धान्त ..... से सम्बन्धित है। (रोडान **या** नेल्सन)
2. रोजस्टीन के अनुसार बचत एवं निवेश वृद्धि हेतु ..... आवश्यक है। (माँग वृद्धि **या** पूर्ति वृद्धि)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. बिग पुश सिद्धान्त के अनुसार छोटे-छोटे विकास के कार्यक्रम एक बड़े विकास का रूप नहीं ले सकते।
2. लेविस का सम्बन्ध बड़े धक्के की विचारधारा से है।
3. बिगपुश सिद्धान्त की ऐतिहासिक प्रामाणिकता से इस सिद्धान्त की पुष्टि नहीं होती है।

14.5 सारांश (Summary)

आर्थिक विकास केवल बड़ी छलांग या बड़े धक्के के द्वारा ही संभव है। इस दृष्टि से पूँजी स्टॉक उद्योगों, मध्यम उद्योगों एवं उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में लम्बवत सन्तुलन होना चाहिए, विभिन्न उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में उनकी सापेक्षिक माँग के अनुसार, 'समस्तर सन्तुलन' होना चाहिए, और पूँजीगत उद्योगों, उपभोक्ता उद्योगों एवं सामाजिक उपरि सुविधाओं के बीच, 'समस्तर सन्तुलन' बना रहना चाहिए।

रोजेन्स्टीन रोडॉन के दृष्टिकोण की सबसे प्रमुख विशेषता एवं महत्व इस तथ्य में निहित है कि इन पिछड़े देशों की आर्थिक विकास की प्रक्रिया में बहुत बड़े पैमाने पर प्रयास एवं विनियोग के साथ आर्थिक विकास में राज्य की भूमिका पर बल दिया। यह भी बात सही है कि कुछ विनियोगों के न्यून आकार हैं। (विशेष रूप से सामाजिक परिव्यय पूँजी के सम्बन्ध में) जिससे कम रहने पर वे आर्थिक रूप से लाभप्रद नहीं होंगे, जैसे सड़क, रेलवे, एवं पावर स्टेशन को चालू माँग को ही पूरा करने के लिए छोटे पैमाने पर बनाना अलाभप्रद ही नहीं बल्कि मूर्खता पूर्ण कदम होगा। पर यदि कोई देश इतने बड़े पैमाने पर सोच सके इतने बड़े पैमाने पर साधनों को जुटाकर बड़ी मात्रा में विनियोजन कर सके एवं साथ ही इस बड़े पैमाने पर औद्योगिकरण कर सके तो वह देश पिछड़ा या अल्पविकसित नही होगा।

14.6 शब्दावली (Glossary)

- **प्रबल प्रयास (Big Push) :** आवश्यक न्यूनतम मात्रा अर्थात उच्च मात्रा में निवेश करना।
- **स्फीतिकारी दबाव (inflationary Pressure) :** विनियोगी के अधिक होने और उत्पादन के कम होने से है।
- **समस्तर सन्तुलन (Overall Balance) :** समग्र संतुलन जो किसी प्रणाली या प्रक्रिया के सभी पहलुओं को ध्यान में रखता है।
- **अविभाज्यता (Indivisibility) :** वह अवस्था जिसमें किसी वस्तु या सेवा को विभाजित नहीं किया जा सकता।
- **सामाजिक उपरि पूँजी (Social Overhead Capital) :** बुनियादी ढांचा और सेवाएं जो समाज की सामान्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक होती हैं।
- **उत्पादन फलन (Production Function) :** उत्पादन में लगने वाले संसाधनों और प्राप्त उत्पाद के बीच का संबंध।

14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. रोडान 2. माँग वृद्धि

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन का चुनाव कीजिए-

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य

14.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- प्रो. एम. एल. झिगन (2010) ***विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन***, बिन्द्रा पब्लिशिग हाउस, दिल्ली।
- प्रो. एस. एन. लाल (1999) ***आर्थिक विकास एवं आयोजन*** , शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद।
- प्रो. एस. पी. सिह (2009) ***आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन***, एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन दिल्ली।

- *"External Economic and Balanced Growth"* In Aggarwal and Singh (Eds.)Op. Cit. Desai M. and Maxumdar, "A test of the Hypothesis of Disquised Unemployment"; Econometrica 1970.

14.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Text)

- Need of the Theory of "Big Push" in Economic Development of Latin America, Ch. III (Eds) H.S. Ellis and W.W. Wallich, 1961.
- The Objectives of US Economic Assistance Programme, 1957.
- Stability and Progress: The Poorer Countries Problems in Stabillity and Progress in the World Economy, D. Hague, (Ed) 1958.
- World Economic Growth - Retrospect and Prospect" R.E.S., August, 1956.

14.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. बृहतकाय चाप सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए। अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास हेतु यह कहां तक उपयुक्त है?
2. आर्थिक विकास में बड़े धक्के का सिद्धान्त क्या है? किन परिस्थितियों के अन्तर्गत यह लागू होता है?
3. रोजेन्स्टीन रोडान द्वारा प्रतिपादित प्रबल प्रयास सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए?

इकाई 15 संतुलित विकास का सिद्धांत
(Theory of Balanced Growth)

15.1 प्रस्तावना (Introduction)
15.2 उदेश्य (Objectives)
15.3 संतुलित विकास का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Balance Growth)
15.4 संतुलित विकास के सिद्धांत की अलग-अलग धारणाएं (Different Concepts of Balanced Growth)
15.4.1 रोसेनस्टीन रोडन की संतुलित विकास की धारणा (Rosenstein Rodan's Concept of Balanced Growth)
15.4.2 नर्कसे की संतुलित विकास की धारणा (Nurkse Concept of Balanced Growth)
15.4.3 लेविस की संतुलित विकास की धारणा (Lewis Concept of Balanced Growth)
15.5 संतुलित विकास की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें (Essential Conditions for Success of Balanced Growth)
15.6 संतुलित विकास के सिद्धांत के लाभ (Advantages of Theory of Balanced Growth)
15.7 संतुलित विकास के सिद्धांत की आलोचनाएं (Criticism of Theory of Balanced Growth)
15.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
15.9 सांराश (Summary)
15.10 शब्दावली (Glossary)
15.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
15.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
15.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Text)
15.14 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

अल्प-विकसित देशों के संदर्भ में, विकास की दो रणनीतियाँ सामने रखी गई हैं पहली संतुलित विकास और दूसरी असंतुलित विकास। संतुलित विकास की रणनीति के मुख्य अर्थशास्त्री रोसेनस्टीन रोडन, आर्थर लेविस, राग्नर नर्कसे, एलीन यंग, स्किटवोस्की और गौतम माथुर हैं। कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे ए.ओ. हिर्शमैन, एच.डब्ल्यू. सिंगर, पौर स्ट्रीटन और डब्ल्यू.डब्ल्यू. रोस्टोव आदि ने अविकसित देशों के लिए असंतुलित विकास की रणनीति के सिद्धांत को दिया हैं। प्रस्तुत इकाई में आप संतुलित विकास के सिद्धांत के बारे में पढेंगे और यह जानेंगे की किसी भी देश के लिए विकास संतुलित रूप से कैसे किया जाता हैं।

15.2 उदेश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ संतुलित विकास के सिद्धांत को समझ सकेंगे।
- ✓ रोसेनस्टीन रोडन, आर्थर लेविस एवं राग्नर नर्कसे की धारणाओं को जानेंगे।
- ✓ संतुलित विकास के सिद्धांत की मान्यताओं के बारे में जानेंगे।
- ✓ संतुलित विकास के सिद्धांत की आलोचनाओं को समझ सकेंगे।

15.3 संतुलित विकास का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Balance Growth)

संतुलित विकास का अर्थ

संतुलित विकास की रणनीति के अनुसार आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में एक साथ निवेश किया जाना चाहिए। संतुलित विकास एक गतिशील प्रक्रिया हैं ना की स्थिर प्रक्रिया। इसके गतिशील होने के कारण ही संतुलित विकास का अर्थ बदलता रहता है, संतुलित विकास की अवधारणा विभिन्न व्याख्याओं के अधीन है। यह **फ्रेड्रिक लिस्ट (Fredrich List)** ही थे जिन्होंने पहली बार संतुलित विकास के सिद्धांत को सामने रखा एवं इस पर चर्चा की।

फ्रेड्रिक लिस्ट (Fredrich List) के अनुसार संतुलित विकास का सिद्धांत बहुत महत्वपूर्ण है जिसके द्वारा कृषि, उद्योग और व्यापार के बीच संतुलन स्थापित किया जा सकता है। **आर्थर यंग (Arthur Young)** ने वर्ष 1928 में यह अवधारणा दी कि विभिन्न उद्योग परस्पर एक दूसरे पर निर्भर हैं। ऐसे में इन सभी का विकास एक साथ होना चाहिए। इस अवधारणा का समर्थन **रोसेनस्टीन रोडन (Rosenstein Rodan)** ने अपने एक लेख ***"पूर्वी और दक्षिण पूर्वी यूरोप के औद्योगीकरण की समस्याएं (Problems of Industrialisation of Eastern and South Eastern Europe)"*** में किया था।

संतुलित विकास की परिभाषा

पी. ए. सैमुएलसन (P. A. Samuelson) और **आर. एम. सोलोर (R. M. Solour)** के अनुसार, ***"संतुलित वृद्धि का तात्पर्य हर प्रकार की पूंजी स्टॉक में वृद्धि से है।"***

आर. एफ. हैरोड (R. F. Harrod), के अनुसार, ***"संतुलित विकास का उद्देश्य आय की वृद्धि दर, उत्पादन की वृद्धि दर एवं प्राकृतिक संसाधनों की वृद्धि दर के बीच समानता से है।"*** इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:-

$$Gy = Gw = Gn$$

यहाँ, G_y = आय की वृद्धि दर, G_w = उत्पादन की वृद्धि दर औरG = प्राकृतिक संसाधनों की विकास दर।

श्रीमती जोन रॉबिन्सन (Mrs. Joan Robinson) की 'स्वर्ण युग' (Golden Age) की अवधारणा का तात्पर्य संतुलित विकास से भी है। इसमें कहा गया है कि पूंजी और श्रम शक्ति की वृद्धि दर के बीच संतुलन होना चाहिए, अर्थात:

$$\frac{\Delta K}{K} = \frac{\Delta N}{N}$$

यहाँ, K का अर्थ पूंजी की वृद्धि दर है एवं N का अर्थ श्रम शक्ति है।

15.4 संतुलित विकास के सिद्धांत की अलग-अलग धारणाएं (Different Concepts of Balanced Growth)

संतुलित विकास के सिद्धांत के बारे में तीन मुख्य अर्थशास्त्रियों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए हैं, इसके अंतर्गत रोसेनस्टीन रोडन, नर्कसे एवं लेविस ने संतुलित विकास के सिद्धांत को अपने शब्दों में बताया हैं, जोकि इस प्रकार हैं:-

15.4.1 रोसेनस्टीन रोडन की संतुलित विकास की धारणा (Rosenstein Rodan's Concept of Balanced Growth)

रोसेनस्टीन रोडन Rosenstein Rodan पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने 1943 के अपने प्रसिद्ध लेख में इन शब्दों का उपयोग किए बिना संतुलित विकास के सिद्धांत को प्रतिपादित किया था। उनका विचार था कि पूरे उद्योग को पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी यूरोप में बनाया जाना चाहिए और उसी के आधार पर योजना बनाई जानी चाहिए। उनका मौलिक तर्क यह था कि, अक्सर किसी निवेश का सामाजिक सीमांत उत्पाद (Social Marginal Product) उसके निजी सीमांत उत्पाद (Private Marginal Product) से भिन्न होता है और यदि किसी देश में उद्योगों का एक समूह उनके सामाजिक सीमांत उत्पादों (Social Marginal Product) के अनुसार एक साथ स्थापित किया जाता है, तो अर्थव्यवस्था वृद्धि की दर ऐसे में अधिक होगी। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि एक व्यक्तिगत उद्यमी केवल निवेश के निजी सीमांत उत्पाद (Private Marginal Product) में रुचि रखता है, ना कि निवेश के सामाजिक सीमांत उत्पाद (Social Marginal Product) में क्योंकि यह उसकी निवेश गतिविधि के संबंध में उसके निर्णयों को प्रभावित नहीं करता है। इसी तरह, रोसेनस्टीन रोडन की पूरी चिंता निवेश के निजी सीमांत उत्पाद को लेकर है। अपने मौलिक तर्क को सिद्ध करने के लिए वह कुछ उदाहरण देते हैं। इन उदाहरणों में वह इस बात को रेखांकित करते हैं कि किसी निवेश का सामाजिक सीमांत उत्पाद उसके निजी सीमांत उत्पाद से अधिक हो सकता है। यह विभिन्न उद्योगों की संपूरकता है जो समाज के दृष्टिकोण से सबसे अधिक लाभदायक निवेश की ओर ले जाती है।

रोसेनस्टीन रोडन का एक प्रसिद्ध उदाहरण है कि कैसे उत्पादन की एक पंक्ति में एक कारखाने में निवेश उत्पादन की विभिन्न अन्य लाइनों में कुछ अन्य फर्मों के लिए जोखिम को कम कर देता है। इस सिलसिले में वह एक जूता फैक्ट्री का उदाहरण देते हैं। मान लीजिए कि एक बड़े जूते का कारखाना किसी क्षेत्र में स्थापित किया गया है जहाँ 30,000 बेरोजगार कर्मचारी कार्यरत हैं। यदि यह श्रमिक अपनी सारी मजदूरी जूतों पर खर्च कर दें तो जूतों का बाजार स्थापित हो जाएगा। हालाँकि, समस्या तब उत्पन्न हो सकती है जब कर्मचारी अपनी सारी मजदूरी जूतों पर खर्च ना करें। ऐसे में जूतों की पर्याप्त माँग नहीं हो पाएगी, यदि किसी एक विशेष उद्योग के बजाय एक साथ कई उद्योगों में निवेश किया जाए तो माँग में कोई कमी नहीं होगी। इन विविध उद्योगों में लगे लोगों की बढ़ती आय से सभी वस्तुओं के लिए पर्याप्त बाजार उपलब्ध होगा। विभिन्न वस्तुओं की आपूर्ति में वृद्धि से अपनी माँग उत्पन्न होगी, इस तरह बेचने का जोखिम भी कम हो जाएगा।

15.4.2 नर्कसे की संतुलित विकास की धारणा (Nurkse Concept of Balanced Growth)

नर्कसे के अनुसार अविकसित देशों में गरीबी का दुष्चक्र (vicious circle) संचालित होता है, जो उनके आर्थिक विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। दुष्चक्र से **नर्कसे (Nurkse)** का अर्थ है ***"बलों या शक्तियों का एक गोलाकार समूह जो एक दूसरे पर इस तरह से कार्य करने और प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति रखता है कि किसी देश को गरीबी की स्थिति में रखा जा सके।"*** बलों के वृत्ताकार नक्षत्र को समझाने के लिए, नर्कसे एक गरीब आदमी का उदाहरण देते हैं। एक गरीब आदमी के पास खाने के लिए पर्याप्त पैसा नहीं हो सकता है, जिसकी वजह से वह अल्पपोषित (undernourish) हो जाता हैं एवं वह शारीरिक रूप से कमजोर हो सकता है। शारीरिक रूप से कमजोर होने के कारण उसकी कार्य क्षमता काफी कम होगी। कम कार्य क्षमता के परिणामस्वरूप कम आय होगी और इसलिए वह गरीब भी होगा। इस प्रकार की स्थिति ना केवल एक गरीब व्यक्ति के मामले में उत्पन्न होती है, बल्कि इसका संबंध पूरे देश से भी हो सकता है। ***"एक देश गरीब है, क्योंकि वह गरीब है"*** एक प्रसिद्ध कहावत है, जो वास्तव में गरीबी के दुष्चक्र के विचार को व्यक्त करती है।

नर्कसे के अनुसार गरीबी का दुष्चक्र आर्थिक रूप से अविकसित देशों में पूंजी के संचय को प्रभावित करता है। गरीबी के दुष्चक्र के कारण इन देशों में पूंजी की आपूर्ति के साथ-साथ माँग भी कम है। नर्कसे ने गरीबी के इस दुष्चक्र को आपूर्ति एवं माँग दोनों ही पक्षों से समझाया हैं, जोकि इस प्रकार हैं।

आपूर्ति पक्ष (Supply side): आय का स्तर कम होने के कारण बचत करने की क्षमता कम होती है। कम वास्तविक आय कम उत्पादकता का प्रतिबिंब है, जो बदले में पूंजी की कमी के कारण होती है। पूंजी की कमी बचत करने की कम क्षमता का परिणाम है। इस प्रकार आपूर्ति पक्ष का दुष्चक्र पूरा होता है।

माँग पक्ष (Demand side): लोगों की कम क्रय शक्ति के कारण निवेश करने की प्रेरणा कम हो सकती है, जो कि उनकी कम वास्तविक आय के कारण हो सकता है, जो फिर से कम उत्पादकता के कारण है। कम उत्पादकता, उत्पादन में उपयोग की जाने वाली पूंजी की कम मात्रा के कारण हो सकती है, जो बदले में निवेश के लिए कम प्रोत्साहन के कारण हो सकती है। अत: माँग पक्ष में दुष्चक्र की कार्यवाही पूर्ण हुई।

दुष्चक्र को तोड़ना (Breaking the Vicious Circle)

अब सवाल यह उठता है कि दुष्चक्र को कैसे तोड़ा जाए। नर्क्स के अनुसार बाजार का आकार बढ़ाकर दुष्चक्र को तोड़ा जा सकता है। हालाँकि, व्यक्तिगत निवेश प्रयासों से यह संभव नहीं है। व्यक्तिगत निवेश में उच्च जोखिम होता है कि उनके उत्पादों को बाजार मिलेगा या नहीं। बाज़ार ना मिलने का जोखिम निवेश के लिए अपेक्षित प्रोत्साहन को कम कर देता है। यह तभी संभव है जब अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग उद्योगों में निवेश करें जिससे उद्योगों की एक विस्तृत श्रृंखला सामने आए।

नर्कसे (Nurkse) के अनुसार, ***"विभिन्न उद्योगों में परियोजनाओं की एक विस्तृत श्रृंखला सफल हो सकती है, वे सभी एक-दूसरे का समर्थन करेंगे, इस अर्थ में कि प्रत्येक परियोजना में लगे लोग, अब प्रति व्यक्ति अधिक वास्तविक पूंजी के साथ और प्रति व्यक्ति घंटे उत्पादन के संदर्भ में अधिक दक्षता के साथ काम कर रहे हैं, अन्य उद्योगों में नए उद्यमों के उत्पादों के लिए एक विस्तृत बाज़ार प्रदान करें।"***

किसी भी एक उद्योग के बढ़ने की दर अनिवार्य रूप से उस दर से निर्धारित होती है जिस दर से अन्य उद्योग बढ़ते हैं। गतिविधियों की एक विस्तृत श्रृंखला में पूंजी के अनुप्रयोग के माध्यम से, आर्थिक दक्षता का सामान्य स्तर बढ़ाया जाता है एवं उद्योग का आकार भी बढ़ाया जाता है। दुष्चक्रों को तोड़ने का यही सही तरीका है। समग्र निवेश का परिणाम बाजार का विस्तार है क्योंकि कई पूरक परियोजनाओं में काम करने वाले लोग एक-दूसरे के उपभोक्ता बन जाएंगे। इस प्रकार निवेश परियोजनाओं का समग्र विस्तार, बाजार का विस्तार और पूरक उद्योगों का विकास संतुलित विकास के

महत्वपूर्ण तत्व हैं, जो गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ सकते हैं और विकास एवं विस्तार की शक्तियों को मुक्त कर सकते हैं।

बाज़ार का विस्तार किस प्रकार किया जा सकता है? (How can the Market be Expanded)

बाजार का आकार विभिन्न उद्योगों में निवेश, बेहतर बिक्री कौशल और प्रचार, उदार व्यापार नीति एवं बुनियादी सुविधाओं के विस्तार के माध्यम से बढ़ाया जा सकता है। कीमतों को कम करके, धन आय को स्थिर रखकर या कीमतों को स्थिर रखते हुए धन आय को बढ़ाकर भी बाज़ार को बढ़ाया जा सकता है। इससे उत्पादकता और लोगों की वास्तविक आय में वृद्धि होगी, परन्तु अविकसित देशों में बाज़ार का छोटा आकार इतने बड़े पैमाने पर उत्पादन को प्रोत्साहित नहीं करता जिससे लागत में कमी आ सके। इसके विपरीत उद्यम और तकनीकी जानकारी की कमी और बेलोचदार उपभोक्ता माँग पूंजी की माँग को कम कर देती है।

संतुलित विकास के सिद्धांत में घरेलू और विदेशी क्षेत्रों के बीच संतुलन भी शामिल है। **मेयर (Meier)** और **बाल्डविन (Baldwin)** ने यह ही टिप्पणी की है, ***"विकास के वित्तपोषण के लिए निर्यात राजस्व एक महत्वपूर्ण स्रोत है, उत्पादन और रोजगार के विस्तार के साथ आयात बढ़ता है, और घरेलू व्यापार के लिए आवश्यक सामग्रियों और उपकरणों के बढ़ते आयात की आवश्यकता होती है। इन बढ़ते आयातों का भुगतान करने के लिए एवं जितना संभव हो सके विकास को वित्तपोषित करने के लिए, देश अपने विदेशी व्यापार की कीमत पर अपने घरेलू व्यापार का विस्तार करने के लिए निर्यात की अनुमति नहीं दे सकता है। घरेलू क्षेत्र को विदेशी क्षेत्र के साथ संतुलन बनाकर बढ़ना चाहिए।"***

नर्कसे (Nurkse) के शब्दों में, ***"संतुलित विकास अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक अच्छा आधार है, साथ ही परिधि पर शून्य को भरने का एक तरीका है।"*** वह परिवहन सुविधाओं में सुधार और उनकी लागत में कमी, टैरिफ बाधाओं को समाप्त करने एवं कस्टम यूनियनों के निर्माण का समर्थन करते हैं ताकि बाजार को भौगोलिक और आर्थिक दोनों अर्थों में बढ़ाया जा सके।

15.4.3 लेविस की संतुलित विकास की धारणा (Lewis Concept of Balanced Growth)

डब्ल्यू ए लेविस (W. A. Lewis) ने निम्नलिखित दो कारणों के आधार पर संतुलित विकास के सिद्धांत का विविरण किया हैं:-

पहला विविरण हैं, **संतुलित विकास के अभाव में**, एक क्षेत्र में कीमतें दूसरे क्षेत्र की कीमतों से अधिक हो सकती हैं। घरेलू बाजार में व्यापार की प्रतिकूल शर्तों के कारण उन्हें भारी नुकसान हो सकता है। इसके परिणामस्वरूप, वहाँ कोई निवेश नहीं किया जाएगा और उनका विकास रुक जाएगा। संतुलित विकास के कारण सभी क्षेत्रों में तुलनात्मक कीमतों में समानता बनेगी और इससे सभी क्षेत्रों में विकास होता रहेगा।

दूसरा विविरण हैं, **जब अर्थव्यवस्था बढ़ती है तो विभिन्न क्षेत्रों में कई रुकावटें सामने आती हैं।** आर्थिक विकास के फलस्वरूप लोगों की आय में भी वृद्धि होती है। आय में वृद्धि के कारण उन वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है जिनकी माँग आय-लोचदार होती है। यदि इन वस्तुओं का उत्पादन नहीं बढ़ता है तो कई रुकावटें सामने आ सकती हैं। हालाँकि, संतुलित विकास की स्थिति में उन वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाना संभव है जिनकी माँग की आय लोच अधिक है। जिससे विभिन्न क्षेत्रों में बाधाओं की संभावना काफी कम हो जाएगी।

यदि कृषि और औद्योगिक क्षेत्रों में एक साथ उत्पादन बढ़ाना संभव ना हो तो उन्होंने सुझाव दिया कि घरेलू और विदेशी व्यापार के बीच संतुलन की रणनीति अपनाई जानी चाहिए। यदि औद्योगिक क्षेत्र का विकास नहीं हो रहा है, तो कृषि उपज का निर्यात किया जाना चाहिए और

औद्योगिक उत्पादों का आयात किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, यदि कृषि क्षेत्र का विकास नहीं हो रहा है, तो औद्योगिक वस्तुओं का निर्यात किया जाना चाहिए और कृषि उपज का आयात किया जाना चाहिए। हालाँकि, लेविस विकास के लिए ऐसी रणनीति के पक्ष में नहीं हैं जो पूरी तरह से बढ़े हुए निर्यात पर निर्भर हो। उनकी राय में, ऐसी नीति व्यापार की शर्तों को उस देश के विरुद्ध कर सकती है जो इसे अपनाता है। **लेविस (Lewis)** के अनुसार, ***"अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों को एक साथ विकसित किया जाना चाहिए ताकि उद्योगों के बीच संतुलन बना रहे कृषि, घरेलू उपभोग के लिए उत्पादन और निर्यात के लिए उत्पादन।"***

15.5 संतुलित विकास की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें (Essential Conditions for Success of Balanced Growth)

1. **विकास के लिए योजनाओं का निर्माण एवं कार्यान्वयन (Formulation and Implementation of Plans for Development):** संतुलित विकास की सफलता के लिए पहली और सबसे महत्वपूर्ण शर्त अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के बीच संतुलन हासिल करने और बनाए रखने के लिए विकास योजनाओं का निर्माण एवं उनका कार्यान्वयन है। संतुलित विकास के लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के अनुसार वित्तीय एवं भौतिक लक्ष्य निर्धारित करने की आवश्यकता होती है। ऐसे सभी कार्य विकास योजनाओं के निर्माण एवं कार्यान्वयन के बिना पूरे नहीं किए जा सकते। विभिन्न क्षेत्रों के सुचारू कामकाज को सुनिश्चित करने के लिए योजना की आवश्यकता है। नियोजन संतुलित विकास के सामाजिक-आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के तरीके सुझाता है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि केवल योजना का सफल प्रदर्शन ही विभिन्न क्षेत्रों के बीच स्थिरता और सामंजस्य (Harmony) ला सकता है। इसके विपरीत, योजना के निराशाजनक प्रदर्शन से विभिन्न क्षेत्रों के बीच असंगतता और असामंजस्य पैदा होगा। इस प्रकार संतुलित विकास के लिए विकास योजनाओं का समुचित निरूपण एवं सफल कार्यान्वयन बुनियादी शर्त है।
2. **राज्य का हस्तक्षेप (State Intervention):** आर्थिक क्षेत्र में राज्य का हस्तक्षेप समय की माँग है। भारत जैसे आधुनिक राज्य कल्याणकारी राज्य हैं और उनके हस्तक्षेप के बिना कोई सार्थक परिणाम संभव नहीं है। **माइकल पी. टोडारो (Michael P. Todaro)** के अनुसार, ***"सरकार बनाम निजी क्षेत्र की उचित भूमिका के बारे में वैचारिक पूर्वधारणाओं के बावजूद, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि पिछले कुछ दशकों में अविकसित एवं विकसित देशों की सरकारों ने प्रबंधन और दिशा के लिए प्रमुख जिम्मेदारी का दावा किया है।"*** राज्य कानून और व्यवस्था को लागू और बनाए रख सकता है जो अर्थव्यवस्था के सामंजस्यपूर्ण विकास के लिए एक आवश्यक शर्त है। इसके अलावा, यह संतुलित विकास की वित्तीय आवश्यकता को पूरा करने के लिए करों, उधारों, घाटे के वित्तपोषण आदि के माध्यम से आवश्यक वित्तीय संसाधन जुटा सकता है। राज्य मानव पूंजी को बढ़ावा देने के लिए कल्याणकारी गतिविधियाँ भी चला सकता है और उन्हें बढ़ावा दे सकता है। यह गतिविधियाँ निजी क्षेत्र द्वारा अपनी लघु दृष्टि और लाभ अधिकतमीकरण के आदर्श वाक्य के कारण नहीं की जा सकती हैं। इस प्रकार, राज्य के हस्तक्षेप के बिना संतुलित विकास हासिल नहीं किया जा सकता है।
3. **सरकार के विभिन्न विभागों के बीच घनिष्ठ समन्वय (Coordination between various Departments of theGovernment):** संतुलित विकास की सफलता के लिए तीसरी शर्त सरकार के विभिन्न विभागों के बीच घनिष्ठ समन्वय है। नियोजन केवल विभिन्न विभागीय कार्यक्रमों को लागू करने का मार्ग प्रदान करता है परन्तु कार्यक्रमों का वास्तविक क्रियान्वयन विभिन्न विभागों द्वारा स्वयं अन्य संबंधित विभागों के साथ निकट समन्वय में किया जाना है। उदाहरण के लिए, औद्योगिक विकास कार्यक्रम संबंधित उद्योग विभाग द्वारा संचालित किये जाने हैं। इसी प्रकार, कृषि विकास कार्यक्रम

संबंधित कृषि विभाग द्वारा संचालित किए जाने हैं। संतुलित विकास के लिए विभिन्न विकास नीतियों के बीच घनिष्ठ एकीकरण की आवश्यकता होती है, इसलिए क्षेत्र एक ही दिशा में आगे बढ़ते हैं। यदि सरकार के विभिन्न विभागों के बीच घनिष्ठ समन्वय और उचित समझ नहीं है, तो असहमति, गलतफहमी और अराजकता होगी और इस प्रकार संतुलित विकास का सिद्धांत सफल नहीं हो सकता है।

4. **जन सहयोग (Public Coordination)**: संतुलित विकास की सफलता के लिए दूसरी आवश्यक शर्त है जनसहयोग। भारत जैसे लोकतांत्रिक देशों में यह स्थिति ना केवल राजनीतिक स्थिरता के लिए, बल्कि देश के आर्थिक विकास के लिए भी आवश्यक है। **प्रोफेसर डब्ल्यू ए लेविस (Prof. W. A. Lewis)** के अनुसार, "सार्वजनिक सहयोग के लिए स्नेहक और आर्थिक विकास के लिए पेट्रोल दोनों ही गतिशील शक्ति हैं जो सभी चीजों को संभव बनाती हैं।" हालांकि यह याद रखना चाहिए कि सार्वजनिक सहयोग स्वेच्छा से नहीं मिलेगा, जब तक कि सरकारों द्वारा सार्वजनिक सहयोग प्राप्त करने के लिए उचित तरीके और साधन नहीं अपनाए जाते। जनता को यह एहसास कराया जाना चाहिए कि प्रत्येक विकास गतिविधि उनके हित में है और यह उनके सामाजिक और आर्थिक कल्याण को बढ़ावा देगी और बढ़ाएगी।
5. **अनुकूल वातावरण (Favourable Environment):** संतुलित विकास की सफलता के लिए अंतिम लेकिन सबसे महत्वपूर्ण शर्त आर्थिक विकास के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण है। विकास कार्यक्रमों को स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तैयार किया जाना चाहिए, जैसे सामग्री और मानव दोनों संसाधनों की उपलब्धता, तकनीकी जानकारी का स्तर, संस्थागत कारक, पहले से प्राप्त विकास का स्तर और इसी तरह के अन्य कारक। ऐसे कारकों का इष्टतम संयोजन और उपयोग संतुलित विकास सुनिश्चित कर सकता है।

15.6 संतुलित विकास के सिद्धांत के लाभ (Advantages of Theory of Balanced Growth)

1. **बाज़ार का विस्तृत विस्तार (Large Extent of Market):** अविकसित देशों की पहचान आमतौर पर बाजार की खामियों और गरीबी के दुष्चक्र की मौजूदगी से होती है। वह आर्थिक विकास के मार्ग में बाधा डालते हैं। संतुलित विकास के सिद्धांत को अपनाकर इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। विभिन्न क्षेत्रों के एक साथ विकास से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में मदद मिलेगी, जिसके परिणामस्वरूप माँग का विस्तार होगा, अधिक उत्पादन होगा और बाजार का विस्तार गरीबी और बाजार की खामियों के दुष्चक्र को तोड़ने में मदद करेगा। **प्रोफेसर नर्कसे (Prof. Nurkse)** के शब्दों में, "संतुलित विकास आपूर्ति में वृद्धि के साथ-साथ मांग को बढ़ाता है, बाजार के आकार को बढ़ाने के रूप में बाहरी अर्थव्यवस्थाओं का निर्माण करता है।"
2. **संतुलित क्षेत्रीय विकास (Balanced Regional Development):** संतुलित विकास सिद्धांत का तात्पर्य है कि सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास किया जाना चाहिए। विकास के मामले में किसी भी क्षेत्र के साथ भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। क्षेत्रीय असमानता और असंतुलन को दूर करने से क्षेत्र में सर्वांगीण विकास के लिए अनुकूल और सहज माहौल बनता है।
3. **बाहरी अर्थव्यवस्थाएँ (External Economies):** नव स्थापित कंपनियां मौजूदा उद्योगों से ताकत प्राप्त करती हैं और अन्य नए उद्योगों को बढ़ावा देती हैं। उद्योगों की परस्पर निर्भरता के कारण बाहरी अर्थव्यवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं।
4. **श्रम और विशेषज्ञता का विभाजन (Division of Labour and Specialisation):** हम जानते हैं कि श्रम विभाजन और विशेषज्ञता दोनों ही बाज़ार के विस्तार से जुड़े हुए हैं। बाज़ार का व्यापक विस्तार

श्रम और विशेषज्ञता के अधिक विभाजन का मार्ग प्रशस्त करेगा और अंततः उत्पाद की उत्पादकता और गुणवत्ता बढ़ाएगा।

5. **सामाजिक और आर्थिक उपरिव्ययों का निर्माण (Creation of Social and EconomicOverheads):** जब विभिन्न उद्योग एक साथ विकसित होते हैं, तो इसके लिए परिवहन, संचार, बिजली, बांध, बैंकिंग जैसे सामाजिक और आर्थिक ओवरहेड्स के निर्माण और शिक्षा, स्वास्थ्य आदि जैसे सामाजिक सामान प्रदान करने वाली मानव पूंजी में निवेश की आवश्यकता होती है।
6. **नवाचार और अनुसंधान (Innovation and Research):** जब कई उद्योग एक साथ विकसित होते हैं, तो बाजार में प्रतिस्पर्धा पैदा होती है और केवल वह उधयोग ही जीवित रह सकते हैं जो गुणात्मक उत्पादन करने में सक्षम हो। तकनीकी प्रगति और उत्पादन प्रक्रिया में गुणात्मक परिवर्तन के लिए नवाचार और शोध बहुत अनुकूल होते हैं।
7. **गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ना (Breaking Vicious Circle of Poverty):** संतुलित विकास सिद्धांत कृषि और औद्योगिक दोनों क्षेत्रों में एक साथ निवेश पर जोर देता है। इससे कृषि और उद्योग दोनों का विकास होता है। दोनों क्षेत्रों के विकास से अर्थव्यवस्था में समृद्धि आती है। गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ने के लिए समृद्धि जिम्मेदार है। **नर्कसे (Nurkse)** के अनुसार, ***"अगर अर्थव्यवस्था की संतुलित वृद्धि होगी तो इससे गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ने में मदद मिलेगी।"***
8. **संसाधनों का बेहतर उपयोग (Better use of Resources):** जब विभिन्न उद्योग एक साथ स्थापित और विकसित किए जाते हैं, तो अर्थव्यवस्था एक प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था बन जाती है और ऐसा माना जाता है कि अर्थव्यवस्था के सभी संसाधनों का उनकी पूरी क्षमता से उपयोग किया जाता है। इसका मतलब यह है कि ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था के प्राकृतिक और अन्य संसाधनों का बेहतर उपयोग किया जाता है।
9. **निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन (Encourage Private Sector):** नर्कसे द्वारा दिया गया संतुलित विकास का सिद्धांत निजी क्षेत्र की भूमिका पर जोर देता है। यू. एस. ए. (USA), जर्मनी (Germany), यू. के. (U.K), जापान (Japan), फ्रांस (France) आदि विकसित देशों के आर्थिक इतिहास से पता चलता है कि निजी क्षेत्र किसी देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दोनों क्षेत्रों में एक साथ विकास हो सकता हैं जैसे, कृषि और औद्योगिक क्षेत्र। निजी क्षेत्र किसी देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देने की स्थिति में है।
10. **छोटे बाज़ार की कठिनाई में सहायक (Helpful in Small Market Difficulty):** संतुलित विकास सिद्धांत की अवधारणा उन देशों में छोटे बाजार की कठिनाई से उबरने में सहायक है जहाँ बड़े पैमाने पर गरीबी व्याप्त है। ऐसा दृष्टिकोण बताता है कि कैसे, विकास की किसी भी योजना में, संतुलित विकास बाजार और माँग की कमी की बाधा को दूर कर सकता है।

15.7 संतुलित विकास के सिद्धांत की आलोचनाएं (Criticism of Theory of Balanced Growth)

1. **अवास्तविक अवधारणा (Unrealistic Concept): प्रोफेसर सिंगर** एवं **फ्लेमिंग (Prof. Singer** and **Fleming)** के अनुसार, "संतुलित विकास की अवधारणा अवास्तविक है।" सैद्धांतिक तौर पर तो यह अच्छा है परन्तु इसका व्यावहारिक अनुप्रयोग कठिन है। इस सिद्धांत के अनुसार, एक अविकसित देश को अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में एक साथ निवेश करना चाहिए। हालाँकि, यह तभी संभव है जब देश के पास पर्याप्त पूंजी और कुशल श्रमिक हों। लेकिन एक अविकसित देश में दोनों का अभाव होता है। प्रोफेसर सिंगर के शब्दों में, "यदि कोई अविकसित देश इस अवधारणा के अनुसार निवेश करने में सफल हो जाता है, तो उसे अविकसित देश नहीं कहा जा सकता।" इस संबंध में प्रोफेसर सिंगर ने ठीक

ही कहा है, "बड़ा सोचें अल्पविकसित देशों के लिए अच्छी सलाह है, परन्तु बड़ा काम करना मूर्खतापूर्ण सलाह है।" वस्तुतः अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में एक साथ निवेश के लिए विशाल संसाधनों की आवश्यकता होती है जबकि अविकसित देश संसाधनों की भारी कमी से जूझते हैं। इस प्रकार, संतुलित विकास एक अवास्तविक अवधारणा है।

2. **लागत में वृद्धि (Increase in Cost):** संतुलित विकास का सिद्धांत एक साथ कई उद्योगों की स्थापना पर जोर देता है जिससे धन और वास्तविक लागत दोनों के संदर्भ में उत्पादन लागत में वृद्धि होने की संभावना है, जिसके परिणामस्वरूप यह उद्योग पर्याप्त पूंजी, सस्ती बिजली की कमी के कारण आर्थिक रूप से लाभहीन हो जाते हैं।
3. **यह विकास का सिद्धांत नहीं (Not a theory of Development):** संतुलित वृद्धि, आर्थिक विकास के सिद्धांत में अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में एक साथ परिवर्तन शामिल है। **प्रो. हिर्शमैन (Prof. Hirschman)** के अनुसार, "यह विकास नहीं है, यह किसी पुरानी चीज़ में नई चीज़ का समावेश भी नहीं है, यह विकास का पूरी तरह से द्वैतवादी पैटर्न है, जिसे बाल मनोवैज्ञानिक समानांतर खेल के रूप में जानते हैं।"
4. **लागत कम करने पर कोई ध्यान नहीं (No Attention to reduce Cost):** प्रोफेसर किंडलबर्गर (Prof. Kindleberg) के अनुसार, "यह सिद्धांत नए उद्योग शुरू करने के बजाय मौजूदा उद्योगों में लागत में कमी की संभावना पर विचार नहीं करता है। यदि नए उद्योग स्थापित किए जाते हैं, तो मौजूदा उद्योगों में उत्पादों की माँग कम हो जाएगी जिससे वह लाभहीन हो जाएगे।"
5. **ऐतिहासिक समझ का अभाव (Lacks Historical Sense): प्रो. एच. डब्ल्यू. सिंगर (Prof. H. W. Singer)** के अनुसार, संतुलित विकास के सिद्धांत में ऐतिहासिक समझ का अभाव है। यह मानता है कि एक अविकसित देश शून्य से शुरू होता है। वास्तव में, प्रत्येक अविकसित देश एक ऐसी स्थिति से शुरू होता है जो पिछले निवेश निर्णयों और पिछले विकास को दर्शाता है। इस प्रकार, किसी भी समय अत्यधिक वांछनीय निवेश कार्यक्रम होते हैं जो स्वयं संतुलित निवेश पैकेज नहीं होते हैं परन्तु जो मौजूदा असंतुलन को पूरा करने के लिए असंतुलित निवेश का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक बार ऐसा निवेश हो जाने पर, एक नया असंतुलन प्रकट होने की संभावना है जिसके लिए एक और संतुलन निवेश की आवश्यकता होगी। इस प्रकार, ऐतिहासिक रूप से कहें तो विकास संतुलित तरीके से नहीं होता है बल्कि पूरी तरह से असंतुलित होता है।
6. **आर्थिक नियोजन की आवश्यकता को नजरअंदाज करना (Ignore the need of Economic Planning):** आर्थिक नियोजन अविकसित देशों में तीव्र आर्थिक विकास का सबसे महत्वपूर्ण साधन है हालाँकि, संतुलित विकास के सिद्धांत ने आर्थिक नियोजन की भूमिका को कोई महत्व नहीं दिया है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का विकास, चाहे वह कृषि क्षेत्र हो या औद्योगिक क्षेत्र या दोनों, उचित आर्थिक नियोजन के बिना संभव नहीं है।
7. **उन्नत देशों के लिए अधिक उपयुक्त (More Suitable to Advance Country):** संतुलित विकास सिद्धांत अल्प विकसित देशों के बजाय उन्नत देशों के लिए अधिक उपयुक्त है। वास्तव में अविकसित देशों के पास पर्याप्त संसाधन, मशीनें और उद्यमी नहीं होते हैं। प्रो. **हिर्शमैन (Prof. Hirschman)** के अनुसार, "संतुलित विकास सिद्धांत को अब अनिवार्य रूप से अल्परोज़गारी की स्थिति के लिए मूल रूप से तैयार की गई चिकित्सा के अविकसितता के अनुप्रयोग के रूप में देखा जाता है। चक्रीय उछाल के दौरान, उद्योगों, मशीनों, प्रबंधकों और श्रमिकों के साथ-साथ उपभोग की आदतों वाले सभी लोगों के लिए आर्थिक गतिविधि की संतुलित वसूली वास्तव में संभव है, जो अपने अस्थायी रूप से निलंबित कार्यों और भूमिकाओं को फिर से शुरू करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसलिए एक साथ समाधान की स्थिति में यह पहुंच से बाहर है कि सरकार मदद के लिए हाथ बढ़ाए या नहीं।"
8. **"से" के बाज़ार के नियम पर आधारित (Based on Say's Law of Market): प्रोफेसर नर्कसे (Prof. Nurkse)** का संतुलित विकास का सिद्धांत जे. बी. से के प्रसिद्ध सिद्धांत पर आधारित है, आपूर्ति अपनी माँग स्वयं बनाती है। दरअसल तीस के दशक की महामंदी के बाद इस कानून ने अपनी वैधता

और विश्वसनीयता खो दी। वास्तव में, विकासशील देशों को गंभीर बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

9. **एक उदास तस्वीर का प्रतिनिधित्व करता है (Represents a Gloomy Pictures):** एच. डब्ल्यू. सिंगर और किंडलबर्गर द्वारा हमला किया गया है, जो दावा करते हैं कि प्रोफेसर नर्कसे की मौलिक अवधारणा कुछ भी नहीं है, बल्कि केवल एक निराशाजनक तस्वीर का प्रतिनिधित्व करती है। प्रोफेसर सिंगर के शब्दों में, "एकाधिक विकास के फायदे अर्थशास्त्रियों के लिए दिलचस्प हो सकते हैं, लेकिन वह वास्तव में अविकसित देशों के लिए निराशाजनक खबर हैं। कई मोर्चों पर एक साथ विकास के लिए प्रारंभिक संसाधनों की आम तौर पर कमी है।"
10. **अविकसित देशों की क्षमताओं से परे (Beyond the Capabilities of Underdeveloped Countries):** प्रोफेसर ए.ओ. हिर्शमैन के अनुसार, "यह सिद्धांत अविकसित अर्थव्यवस्थाओं की क्षमताओं के प्रति एक पराजयवादी दृष्टिकोण को उनकी रचनात्मक क्षमताओं के बारे में पूरी तरह से अवास्तविक अपेक्षाओं के साथ जोड़ता है।" इसमें एक ही समय में कई उत्पादक गतिविधियों की एक साथ शुरुआत शामिल है परन्तु अविकसित देशों में पूंजी संसाधनों, तकनीकी जानकारी, उद्यमिता और प्रबंधकीय कौशल की भारी कमी है। यह मान लेना बिल्कुल गलत है कि इन्हें रातोरात हासिल किया जा सकता है। इस प्रकार, संतुलित विकास का पूरा सिद्धांत अपने आप में एक विरोधाभास प्रतीत होता है।
11. **ग़लत धारणा (Wrong Assumptions):** नर्कसे की यह धारणा कि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में संतुलित निवेश से रिटर्न बढ़ेगा, गलत है। आलोचकों का कहना है कि कच्चे माल, बिजली, बुनियादी ढांचे, बढ़ती लागत, पूंजी की कमी और अन्य कारकों की समस्याओं के कारण रिटर्न में कमी आएगी, बशर्ते कि अर्थव्यवस्था के सभी संबंधित क्षेत्रों में एक साथ निवेश किया जाए।
12. **मुद्रास्फीति का खतरा (Danger of Inflation):** संतुलित विकास के सिद्धांत की इस आधार पर आलोचना की गई है कि यह मुद्रास्फीति उत्पन्न करता है। जब विभिन्न क्षेत्रों का एक साथ विकास शुरू होता है, तो पूंजीगत व्यय तेजी से बढ़ता है, जिसके परिणामस्वरूप प्रचलन में धन की मात्रा बढ़ जाती है और जिससे मुद्रास्फीति को बढ़ावा मिलेगा।

15.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. अर्थशास्त्री..... ने पहली बार संतुलित विकास के सिद्धांत को सामने रखा एवं इस पर चर्चा की। (नेल्सन **या** फ्रेड्रिक लिस्ट)
2. बाहरी अर्थव्यवस्थाएँ संतुलित विकास के सिद्धांत के.....को दर्शाती हैं। (हानि **या** लाभ)
3. ..... के अनुसार अविकसित देशों में गरीबी का दुष्चक्र (vicious circle) संचालित होता है। (नर्कसे **या** नेल्सन)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथनों का चुनाव कीजिए-

1. बाजार का आकार विभिन्न उद्योगों में निवेश, बेहतर बिक्री कौशल और प्रचार के माध्यम से बढ़ाया जा सकता है।
2. अविकसित देशों की पहचान आमतौर पर बाजार की खामियों और गरीबी के दुष्चक्र की मौजूदगी से होती है।

15.9 सांराश (Summary)

प्रस्तुत इकाई में आपने संतुलित विकास के सिद्धांत को विस्तार से पढ़ा एवं जाना की संतुलित विकास एक गतिशील प्रक्रिया हैं ना की स्थिर प्रक्रिया। इसके गतिशील होने के कारण ही संतुलित विकास का अर्थ बदलता रहता है, संतुलित विकास की अवधारणा विभिन्न व्याख्याओं के अधीन है। इकाई में आपने इस सिद्धांत को तीन अलग-अलग अर्थशास्त्रीयों द्वारा जाना एवं इनकी अलग-अलग अवधारणाओं को विस्तार से एक-एक कर पढ़ा। इसमें सबसे पहली धारणा रोसेनस्टीन रोडन की हैं, उनका मौलिक तर्क यह

था कि, अक्सर किसी निवेश का सामाजिक सीमांत उत्पाद उसके निजी सीमांत उत्पाद से भिन्न होता है और यदि किसी देश में उद्योगों का एक समूह उनके सामाजिक सीमांत उत्पादों के अनुसार एक साथ स्थापित किया जाता है, तो अर्थव्यवस्था वृद्धि की दर ऐसे में अधिक होगी। रोसेनस्टीन रोडन के बाद नर्कसे ने संतुलित विकास के लिए अपनी धारणा दी जिसमे वह कहते हैं की, अविकसित देशों में गरीबी का दुष्चक्र (vicious circle) संचालित होता है, जो उनके आर्थिक विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। नर्कसे के अनुसार गरीबी का दुष्चक्र आर्थिक रूप से अविकसित देशों में पूंजी के संचय को प्रभावित करता है। गरीबी के दुष्चक्र के कारण इन देशों में पूंजी की आपूर्ति के साथ-साथ माँग भी कम है। नर्कसे ने अपने तर्क को माँग एवं पूर्ति दोनों पक्षों से समझाया हैं जिसे आप पढ़ ही चुके हैं।

इसमें तीसरी अवधारणा लेविस की हैं, जिसमें लेविस नें दो कारणों के आधार पर संतुलित विकास के सिद्धांत का विविरण किया हैं, इसमें संतुलित विकास के अभाव में, पहला विविरण हैं जिसके अंतर्गत, एक क्षेत्र में कीमतें दूसरे क्षेत्र की कीमतों से अधिक हो सकती हैं। घरेलू बाजार में व्यापार की प्रतिकूल शर्तों के कारण उन्हें भारी नुकसान हो सकता है। इसके परिणामस्वरूप, वहाँ कोई निवेश नहीं किया जाएगा और उनका विकास रुक जाएगा। दूसरा विविरण हैं, जब अर्थव्यवस्था बढ़ती है तो विभिन्न क्षेत्रों में कई रुकावटें सामने आती हैं। आर्थिक विकास के फलस्वरूप लोगों की आय में भी वृद्धि होती है। आय में वृद्धि के कारण उन वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है जिनकी माँग आय-लोचदार होती है। यदि इन वस्तुओं का उत्पादन नहीं बढ़ता है तो कई रुकावटें सामने आ सकती हैं। इसके बाद आपने इकाई में संतुलित विकास की शर्तों के बारे में पढ़ा

जिसमें विकास के लिए योजनाओं का निर्माण एवं कार्यान्वयन, राज्य का हस्तक्षेप, सरकार के विभिन्न विभागों के बीच घनिष्ठ समन्वय, जन सहयोग और अनुकूल वातावरण शामिल हैं। इसके आलवा आपने इकाई में संतुलित विकास के लाभ एवं इसकी आलोचनाओं को भी आपने विस्तार से पढ़ा।

15.10 शब्दावली (Glossary)

- **राज्य का हस्तक्षेप (State Intervention):** जब सरकार देश में होने वाली गतिविधियों पर ध्यान दे, सरकार निवेश, माँग एवं पूर्ति में होने वाले बदलाव को मध्य रखे और इसे संतुलित करने के लिए कदम उठाए।
- **मुद्रास्फीति (Inflation):** मुद्रास्फीति एक निश्चित अवधि में कीमतों में वृद्धि की दर है।
- **नवाचार (Innovation):** नवप्रवर्तन का अर्थ है किसी चीज़ को सुधारना या बदलना, जब कोई नई तकनीक या नया आविष्कार हो जिससे सभी को फायदा मिले तो उसे नवाचार कहते हैं।
- **लागत (Cost):** लागत उस पैसे का मूल्य है जिसका उपयोग किसी चीज़ का उत्पादन करने या सेवा प्रदान करने के लिए किया गया है।
- **गरीबी का दुष्चक्र (vicious circle):** दुष्चक्र के अनुसार अविकसित देशों में आय का स्तर निम्न रहता है, जिसके कारण बचत एवं निवेश का स्तर भी निम्न रहता है। कम निवेश से कम उत्पादकता होती है, जिससे फिर से आय कम हो जाती है।
- **बाहरी अर्थव्यवस्थाएँ (External Economies):** बाहरी अर्थव्यवस्थाएँ बाहरी कारक हैं जो किसी फर्म की लागत को कम करती हैं। यह कारक किसी फर्म के नियंत्रण से बाहर हैं परन्तु उद्योग के भीतर होते हैं। बाहरी अर्थव्यवस्थाएँ संपूर्ण उद्योग, भौगोलिक क्षेत्र या अर्थव्यवस्था की उत्पादकता बढ़ाती हैं।

15.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. फ्रेड्रिक लिस्ट 2. लाभ 3. नर्कसे

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथनों का चुनाव कीजिए-

1. सत्य 2. सत्य

15.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- प्रो. एम. एल. झिगन (2010) ***विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन***, बिन्द्रा पब्लिशिग हाउस, दिल्ली।
- प्रो. एस. एन. लाल (1999) ***आर्थिक विकास एवं आयोजन*** , शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद।
- प्रो. एस. पी. सिह (2009) ***आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन***, एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन दिल्ली।

15.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Text)

- Agarwal, R. C. : "***Economics of Development and Planning***" , Lakshmi Narayan Agarwal, Agra 2007
- Taneja, M.L. & Myer R.M.: "***Economics of Development and Planning***" Vishal Publishing Co., Delhi, 2010

15.14 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. संतुलित विकास के सिद्धांत को विस्तार से समझाइए।
2. संतुलित विकास के सिद्धांत की आलोचनाओं की व्याख्या कीजिए।
3. नर्कसे की संतुलित विकास की धारणा को विस्तार से समझाइए।

इकाई 16 असंतुलित विकास का सिद्धांत
(Theory of Unbalanced Growth)

16.1 प्रस्तावना (Introduction)
16.2 उदेश्य (Objectives)
16.3 असंतुलित विकास के सिद्धांत का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Theory of Unbalanced Growth)
16.4 हर्षमैन द्वारा प्रतिपादित असंतुलित विकास के सिद्धांत की व्याख्या (Explanation of the theory of Unbalanced Growth by Hirschman)
16.4.1 सामाजिक उपरि पूंजी की मदद से अर्थव्यवस्था को असंतुलित करना (Unbalancing the Economy with the help of Social Overhead Capital)
16.4.2 अनुबंधन प्रभाव (Linkage Effect)
16.4.3 अंतिम उद्योग पहले (Last Industries First)
16.5 असंतुलित विकास के सिद्धांत के लाभ (Merits of Theory of Unbalanced Growth)
16.6 असंतुलित विकास के सिद्धांत की आलोचनाएं (Criticism of Theory of Unbalanced Growth)
16.7 संतुलित विकास के सिद्धांत एवं असंतुलित विकास के सिद्धांत के बीच समानताएँ एवं असमानताएँ (Similarities and Dissimilarities between Theory of Balanced Growth and Theory of Unbalanced Growth)
16.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
16.9 सांराश (Summary)
16.10 शब्दावली (Glossary)
16.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
16.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
16.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Text)
16.14 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

इससे पहले की इकाई में आप संतुलित विकास के सिद्धांत के बारे में पढ़ चुके हैं एवं जान गए हैं की किसी देश का विकास संतुलित तरह से किस प्रकार एवं किन विधियों के माध्यम से किया जा सकता हैं। प्रस्तुत इकाई में आप असंतुलित विकास के सिद्धांत के बारे में पढ़ेंगे एवं जानेंगे की अर्थव्यवस्था को असंतुलित विधि के माध्यम से किस प्रकार विकास की ओर ले जाया जा सकता हैं। इकाई में आप हर्षमैन द्वारा प्रतिपादित किए गए असंतुलित विकास के सिद्धांत को विस्तार से पढेंगे एवं साथ ही इससे जुडी सभी अवधारणा को पढ़ेंगे एवं समझेंगे।

16.2 उदेश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- ✓ असंतुलित विकास के सिद्धांत के बारे में जानेंगे।
- ✓ असंतुलित विकास के सिद्धांत के लाभ को समझ सकेंगे।
- ✓ असंतुलित विकास के सिद्धांत की आलोचनाओं को समझ सकेंगे।
- ✓ संतुलित विकास के सिद्धांत एवं असंतुलित विकास के सिद्धांत के बीच समानताएँ एवं असमानताएँ को समझेंगे।

16.3 असंतुलित विकास के सिद्धांत का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Theory of Unbalanced Growth)

असंतुलित विकास के सिद्धांत का तात्पर्य यह हैं कि हमें अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में एक साथ निवेश करने के बजाय केवल कुछ महत्वपूर्ण या रणनीतिक क्षेत्रों पर ही ध्यान केंद्रित करना चाहिए। ऐसा इसलिए हैं क्योंकि अविकसित देशों में पूंजी की भारी कमी हैं और ऐसे में उनके लिए अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में निवेश करना संभव नहीं हैं। देश की आवश्यकताओं के अनुसार क्षेत्रों का चयन सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए और इस प्रकार उनसे प्राप्त मितव्ययता का उपयोग अर्थव्यवस्था के शेष क्षेत्रों के लिए किया जा सकता हैं। इस पद्धति से अर्थव्यवस्था असंतुलित विकास के पथ से हटकर संतुलित विकास के पथ पर अग्रसर होगी। एक अविकसित देश में, विभिन्न क्षेत्रों के बीच असंतुलन ही आर्थिक विकास को बढ़ाता हैं। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने असंतुलित विकास की अलग-अलग व्याख्याएँ दी हैं। कुछ मुख्य परिभाषाएँ इस प्रकार हैं।

हर्षमैन (Hirschman) के अनुसार, ***"विकास असमानता की एक श्रृंखला हैं जिसे जीवित रखा जाना चाहिए न कि उस असंतुलन को खत्म करना चाहिए जिसके लाभ और हानि एक प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था में लक्षण हैं। यदि अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाना हैं तो विकास नीति का कार्य हैं तनाव, असमानता और असंतुलन बनाए रखें।"*** यह परिभाषा इस तथ्य पर जोर देती हैं कि त्वरित आर्थिक विकास प्राप्त करने के लिए अर्थव्यवस्था में असंतुलन और तनाव पैदा किया जाना चाहिए। असंतुलन और तनाव पैदा करने का सबसे अच्छा तरीका विकास के मामले में अग्रणी क्षेत्रों को सर्वोच्च प्राथमिकता देना हैं। अग्रणी क्षेत्रों का चयन देश के योजनाकारों द्वारा विवेकपूर्ण ढंग से किया जाना हैं।

प्रोफेसर अलक घोष (Prof. Alak Ghosh) ने असंतुलित विकास की अवधारणा को इन शब्दों में समझाया हैं, ***"असंतुलित विकास के साथ योजना बनाना इस तथ्य पर जोर देता हैं कि योजना अवधि के दौरान निवेश आय की तुलना में उच्च दर से बढ़ेगा, और आय उपभोग की तुलना में उच्च दर से बढ़ेगी।"*** यह परिभाषा निवेश, आय और उपभोग की वृद्धि दर के संदर्भ में असंतुलित विकास की अवधारणा की व्याख्या करती हैं। यदि $\frac{\Delta I}{I}$, $\frac{\Delta Y}{Y}$ और $\frac{\Delta C}{C}$ क्रमशः निवेश, आय और उपभोग की वृद्धि दर को दर्शाते हैं, तो असंतुलित वृद्धि का तात्पर्य हैं:

$$\frac{\Delta I}{I} > \frac{\Delta Y}{Y} > \frac{\Delta C}{C}$$

दूसरे शब्दों में ये तीनों विकास दरें एक समान नहीं होनी चाहिए।

एच. डब्ल्यू. सिंगर (H. W. Singer) के अनुसार, ***"असंतुलित विकास उपलब्ध संसाधनों को निवेश के प्रकारों पर केंद्रित करने की एक बेहतर विकास रणनीति हैं, जो आर्थिक प्रणाली को अधिक लोचदार, विस्तारित बाजार की उत्तेजना और बढ़ती माँग के तहत विस्तार करने में अधिक सक्षम बनाने में मदद करती हैं।"*** यह परिभाषा सामाजिक उपरि पूंजी में निवेश और विशिष्ट बाधाओं को दूर करने पर जोर देती हैं जो संपूर्ण आर्थिक प्रणाली को अधिक लोचदार बनाएगी।

बी. हिगिंस (B. Higgins) के अनुसार, ***"पूर्व-निर्धारित रणनीति के अनुसार जानबूझकर अर्थव्यवस्था को असंतुलित करना आर्थिक विकास प्राप्त करने का सबसे अच्छा तरीका हैं।"***

मेयर और बाल्डविन (Meier and Baldwin) की भी राय हैं कि ***"योजनाकारों को कुछ केंद्र बिंदुओं पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, ताकि तेजी से आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। प्राथमिकताएं उन परियोजनाओं को दी जानी चाहिए जो मौजूदा फर्मों के लिए बाहरी अर्थव्यवस्था सुनिश्चित करती हैं, और जो सेवाएँ दे सकते थे।"*** पूरक वस्तुओं के लिए माँग पैदा करें और विभिन्न प्रमुख अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गई उपरोक्त व्याख्याओं से, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि असंतुलित विकास का सिद्धांत असंतुलन, तनाव और असमानता पर जोर देता हैं, जिसे किसी भी अर्थव्यवस्था में अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों में पूंजी निवेश करके बनाया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, अग्रणी क्षेत्रों का विकास न कि सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास, अविकसित देशों में निरंतर विकास प्राप्त करने के लिए पूर्व-डिज़ाइन की गई रणनीति के अनुसार किया जाना चाहिए। रूस और भारत की विकास योजनाएँ असंतुलित विकास का ज्वलंत उदाहरण हैं।

16.4 हर्षमैन द्वारा प्रतिपादित असंतुलित विकास के सिद्धांत की व्याख्या (Explanation of the theory of Unbalanced Growth by Hirschman)

हर्षमैन (Hirschman) के अनुसार, ***"संसाधनों की कमी के कारण अल्पविकसित देश विभिन्न क्षेत्रों को एक साथ विकसित करने में सक्षम नहीं हैं, इसका कारण यह हैं की वह आर्थिक विकास हासिल करने के प्रति उदासीन रहते हैं और पूर्व-निर्धारित रणनीति के अनुसार अर्थव्यवस्था के अग्रणी क्षेत्रों में निवेश करते हैं।"*** इस तरह के निवेश से अधिक निवेश के अवसर पैदा होंगे और आर्थिक विकास के लिए आवश्यक शर्ते प्रदान की जाएगी। उनका कहना हैं कि औद्योगिक देशों का विकास असंतुलित विकास की तर्ज पर हुआ हैं। वह विकास को 'असंतुलनों की एक श्रृंखला' के रूप में देखते हैं जिसे समाप्त करने के बजाय कायम रखा जाना चाहिए, असमानता एक प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था में लाभ और हानि की विशेषता हैं। **हर्षमैन** के अनुसार, "यदि अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाना हैं तो विकास नीति का कार्य तनाव और असमानता को बनाए रखना हैं। इसलिए जो अनुक्रम संतुलन से दूर ले जाता हैं वह हमारे दृष्टिकोण से विकास का एक आदर्श पैटर्न हैं क्योंकि अनुक्रम में प्रत्येक कदम पिछले असंतुलन से प्रेरित होता हैं और बदले में एक नया संतुलन बनाता हैं जिसके लिए आगे बढ़ने की आवश्यकता होती हैं।

16.4.1 सामाजिक उपरि पूंजी की मदद से अर्थव्यवस्था को असंतुलित करना (Unbalancing the Economy with the help of Social Overhead Capital)

हर्षमैन के अनुसार, सामाजिक उपरि पूंजी का तात्पर्य उन बुनियादी सेवाओं से हैं जिनके साथ प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीयक उत्पादक गतिविधियाँ कार्य नहीं कर सकती हैं।" बुनियादी सेवाओं में शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सार्वजनिक उपयोगिताएँ जैसे पानी, बिजली, सिंचाई, जल निकासी, संचार, परिवहन आदि शामिल हैं। ऐसी बुनियादी सेवाओं के निर्माण एवं विस्तार पर निवेश सार्वजनिक एजेंसियों द्वारा सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देने और सीधे उत्पादक गतिविधियों को

प्रोत्साहित करने के लिए किया जाता हैं। सामाजिक उपरि पूंजी में बड़ा निवेश बाद में प्रत्यक्ष उत्पादक गतिविधियों (Directly Productive Activities) में निजी निवेश को प्रोत्साहित करेगा। उदाहरण के लिए, बिजली की सस्ती आपूर्ति छोटे उद्योगों, वाणिज्य और व्यापार की स्थापना को प्रोत्साहित कर सकती हैं। वास्तव में, उत्पादक गतिविधियों में निजी निवेश तब तक संभव नहीं होगा जब तक कि सामाजिक उपरि पूंजी सस्ती दरों पर बुनियादी सेवाएं प्रदान ना करे। इस प्रकार, जब तक सामाजिक उपरि पूंजी निवेश को सस्ता या बेहतर सेवाएं प्रदान नहीं करते, तब तक सीधे उत्पादक गतिविधियों में निजी निवेश को प्रोत्साहित नहीं किया जाएगा। इस तरह, आर्थिक विकास के लिए सामाजिक उपरि पूंजी दृष्टिकोण अर्थव्यवस्था को असंतुलित करता हैं ताकि प्रत्यक्ष उत्पादक गतिविधियों (Directly Productive Activities) में बाद के निवेश को प्रोत्साहित किया जा सके। प्रोफेसर हर्षमैन के शब्दों में, "सामाजिक उपरि पूंजी में निवेश की राय इसलिए नहीं दी जाती हैं क्योंकि इसका अंतिम उत्पादन पर सीधा प्रभाव पड़ता हैं, बल्कि इसकी राय इसलिए दी जाती हैं क्योंकी यह वास्तव में प्रत्यक्ष उत्पादक गतिविधियों को आमंत्रित करता हैं, प्रत्यक्ष उत्पादक गतिविधियों निवेश की पूर्व-आवश्यकता के रूप में सामाजिक उपरि पूंजी की आवश्यकता होती हैं।" निवेश के इस क्रम (सामाजिक उपरि पूंजी से प्रत्यक्ष उत्पादक गतिविधियों तक) को "दबाव राहत निवेश" (Pressure relieving investment) या "प्रत्यक्ष उत्पादक गतिविधियों की अतिरिक्त क्षमता के माध्यम से विकास" कहा जाता हैं।

16.4.2 अनुबंधन प्रभाव (Linkage Effect)

प्रो. हर्षमैन (Prof. Hirschman) के अनुसार असंतुलन पैदा करना आर्थिक विकास की पूर्व-आवश्यकता हैं। हालाँकि, समस्या उस प्रकार के असंतुलन को खोजने की हैं जो सबसे प्रभावी होने की संभावना रखता हैं। इसलिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में अंतरसंबंधों के ज्ञान की आवश्यकता होती हैं। किसी भी निवेश में 'अग्रिम अनुबंधन' एवं 'पश्चवर्ती अनुबंधन' दोनों प्रभाव हो सकते हैं। अग्रिम अनुबंधन उत्पादन के बाद के चरणों में निवेश को प्रोत्साहित करता हैं और पश्चवर्ती अनुबंधन विकास के शुरुआती चरणों में। यहाँ इन दोनों प्रभावों को आप इस प्रकार से समझ सकते हैं:

1. अग्रिम अनुबंधन (Forward Linkage): अग्रिम अनुबंधन से तात्पर्य कच्चे माल की आपूर्ति करने वाले उद्योगों की प्रारंभिक वृद्धि के कारण कुछ उद्योगों की वृद्धि से हैं। यह उत्पादन के बाद के चरणों में निवेश को प्रोत्साहित करता हैं। उदाहरण के लिए, यह उन उद्योग का विस्तार करता हैं जोकि ऑटोमोबाइल, मशीन, स्टील, आदि से जुड़े हैं।

2. पश्चवर्ती अनुबंधन (Backward Linkage): उद्योगों के एक समूह का विकास उन उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित करता हैं जो कच्चे माल की आपूर्ति करते हैं। यह निवेश उत्पादन को प्रोत्साहित करता हैं। उदाहरण के लिए, उत्पादन के शुरुआती चरणों में स्टील उद्योग स्थापित करने से स्टील स्क्रैप, कोयला और अन्य संबंधित वस्तुओं की माँग बढ़ेगी। इन वस्तुओं का उत्पादन तदनुसार बढ़ेगा।

अग्रिम अनुबंधन एवं पश्चवर्ती अनुबंधन का अध्ययन उन गतिविधियों की पसंद को सुविधाजनक बनाता हैं जिनके माध्यम से सिस्टम में असंतुलन के साथ विकास उत्पन्न किया जाना चाहिए। अधिकतम अनुबंधन उत्पन्न करने वाले उद्योगों को पहले विकसित किया जाना चाहिए। प्रोफेसर हर्षमैन के अनुसार, स्टील और कोयला जैसे मध्यवर्ती उद्योगों से अधिकतम अनुबंधन उत्पन्न होने की उम्मीद की जा सकती हैं।

16.4.3 अंतिम उद्योग पहले (Last Industries First)

प्रो. हर्षमैन (Prof. Hirschman) ने अंतिम उद्योगों की स्थापना का समर्थन किया हैं। असंतुलित विकास रणनीति की सफलता के लिए उन परियोजनाओं के बुद्धिमान चयन की आवश्यकता होती हैं जिनमें पहले निवेश किया जाना हैं। इस उद्देश्य के लिए, एक विकासशील देश स्वयं औद्योगिक

प्रक्रिया नहीं अपना सकता बल्कि वह विदेशों से आयात कर सकता हैं और तैयार उत्पादों (final goods) को इकट्ठा कर सकता हैं। प्रो. हर्षमैन इसे एक उदाहरण की सहायता से समझाते हैं, मान लीजिए A और B नाम की दो परियोजनाओं के लिए कुछ पूंजी की आवश्यकता हैं। A की रिटर्न दर 20 प्रतिशत और B की 15 प्रतिशत हैं जबकि बाजार में ब्याज दर 16 प्रतिशत हैं। बाजार पहले A में निवेश को प्राथमिकता देगा क्योंकी उसकी दर ज्यादा हैं। जब प्रोजेक्ट A शुरू किया गया हैं, तो B की रिटर्न दर बढ़कर 20 प्रतिशत हो जाती हैं और फिर B को भी सुरक्षित रूप से 25 प्रतिशत तक शुरू किया जा सकता हैं। इसलिए शुरुआती चरणों में नुकसान के बावजूद भी प्रोजेक्ट B को पहले और A को बाद में शुरू करना अधिक लाभदायक हैं। पश्चवर्ती अनुबंधन प्रभाव देश में कई अंतिम चरण के उद्योगों का संयुक्त परिणाम हैं। माँग में वृद्धि से पश्चवर्ती अनुबंधन प्रभाव उत्पन्न होता हैं। इसलिए, जब वस्तुओं के स्थान पर आयात की माँग बढ़ती हैं, तो यह घरेलू अंतिम चरण के उत्पादन को उचित ठहराती हैं।

इस प्रकार जब माँग एक निश्चित सीमा तक पहुँच जाती हैं तो यह उत्पाद को आयात करने के लिए भुगतान करता हैं और जब सीमा तक पहुँच जाती हैं, तो हर्षमैन आयात के स्थान पर उद्योगों को सब्सिडी या सुरक्षा देने की सलाह देता हैं। प्रो. हर्षमैन इन्हें आयात एन्क्लेव उद्योग कहते हैं जिसका बहुत महत्वपूर्ण पश्चवर्ती अनुबंधन प्रभाव रहा हैं। अल्पविकसित देश आर्थिक विकास में निर्यात की भूमिका को कोई महत्व नहीं देते। नतीजतन, निर्यात का विस्तार नहीं होता हैं और इस तरह अर्थव्यवस्था के भीतर अग्रिम अनुबंधन प्रभाव पैदा करने में विफल रहता हैं। इन बातों को ध्यान में रखते हुए, हर्षमैन का सुझाव हैं कि आयात प्रतिस्थापन के माध्यम से तेजी से औद्योगीकरण प्राप्त करने का एकमात्र व्यावहारिक तरीका निर्यात प्रोत्साहन हैं।

16.5 असंतुलित विकास के सिद्धांत के लाभ (Merits of Theory of Unbalanced Growth)

1. **ऐतिहासिक अनुभव (Previous Experience):** वर्तमान विकसित देशों का पिछला इतिहास बताता हैं कि पश्चिमी देशों (जिन्हें विकसित देश कहा जाता हैं) का आर्थिक विकास, विशेष रूप से औद्योगिक क्रांति के शुरुआती चरणों के दौरान, संतुलित नहीं था बल्कि असंतुलन से चिह्नित था। इसी तरह संयुक्त राज्य अमेरिका में 1850-1950 के बीच कई चीजें बढ़ीं परन्तु हर चीज एक ही दर से नहीं बढ़ी। प्रोफेसर हर्षमैन के अनुसार, "विकास अर्थव्यवस्था के अग्रणी क्षेत्रों से अनुयायियों तक, एक उद्योग से दूसरे उद्योग तक, एक फर्म से दूसरे फर्म तक संचारित होने के साथ हुआ हैं।" दूसरे शब्दों में, इन देशों में विकास असमानताओं की श्रृंखला और इन असमानताओं के सुधार में से एक रहा हैं। जहाँ तक इन देशों के विकास के पैटर्न का सवाल हैं, इसकी शुरुआत उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन से हुई और विनिर्माण गतिविधि बाद के चरण में शुरू हुई।
2. **यथार्थवादी सिद्धांत (Realistic Theory):** कुछ प्रमुख अर्थशास्त्रियों के अनुसार अविकसित देशों के विकास के लिए असंतुलित दृष्टिकोण अधिक यथार्थवादी हैं। आमतौर पर इन देशों के पास धन और अन्य संसाधनों की कमी होती हैं। यह सिद्धांत अविकसित देशों में दुर्लभ संसाधनों के इष्टतम उपयोग का सुझाव देता हैं। सिद्धांत विकास योजना के विभिन्न पहलुओं पर विचार करता हैं। यह सही अनुशंसा की गई हैं कि निवेश की प्राथमिकता अर्थव्यवस्था के उन क्षेत्रों को दी जानी चाहिए जो अधिकतम अनुबंधन उत्पन्न करते हैं।
3. **बुनियादी उद्योगों के लिए महत्वपूर्ण (Important for Basic Industries):** असंतुलित विकास सिद्धांत विकास की प्रक्रिया में बुनियादी उद्योगों के महत्व को रेखांकित करता हैं। इससे स्वचालित रूप से उपभोग की जाने वाली वस्तु के उद्योगों के विकास पर दबाव पड़ेगा।

4. **बड़े पैमाने पर उत्पादन की अर्थव्यवस्थाएँ (Economies of Large Scale Production):** असंतुलित विकास की रणनीति बड़े पैमाने पर उत्पादन की अर्थव्यवस्था उत्पन्न करती हैं। प्रमुख उद्योगों की स्थापना के लिए सहायक उद्योगों की स्थापना की आवश्यकता होती हैं, जिससे आय और रोजगार में सर्वांगीण वृद्धि होती हैं। साथ ही, बाज़ार का आकार बढ़ता हैं, जिससे सभी उद्योगों को एक साथ लाभ होता हैं।
5. **नए आविष्कारों को प्रोत्साहन (Encouragement to New Inventions):** असंतुलित विकास प्रणाली में खिंचाव और दबाव उत्पन्न करता हैं, जिससे नए आविष्कारों और नवाचारों की आवश्यकता होती हैं।
6. **आत्मनिर्भरता (Independence):** आत्मनिर्भरता असंतुलित विकास के सिद्धांत की अंतर्निहित धारा हैं जिसकी आकांक्षा अविकसित देश करते हैं। यह अविकसित देशों में संसाधनों की पुरानी कमी की यथार्थवादी धारणा से शुरू होता हैं और संबंधित देश की जरूरतों और साधनों के अनुसार विकास की प्रक्रिया शुरू करने और तेज करने पर विचार करता हैं।
7. **अधिशेष का सृजन (Generate Surplus):** असंतुलित विकास की रणनीति से प्रणाली में अधिक अधिशेष उत्पन्न होने की उम्मीद हैं। इसका कारण इसका पूंजीगत सामान उद्योग पर जोर देना हैं। इस रणनीति से सिस्टम में बहुत मजबूत गुणक प्रभाव उत्पन्न होने, आय और रोजगार को बढ़ावा मिलने की भी उम्मीद हैं।
8. **कौशल निर्माण (Skill Formation):** असंतुलित विकास की रणनीति का लक्ष्य सामाजिक उपरि पूंजी में निवेश के विस्तार के माध्यम से तेजी से विकास करना हैं। इस तरह के निवेश से बुनियादी सुविधाएं, प्रारंभिक और तकनीकी शिक्षा, सड़क, संचार, आवास, बिजली, परिवहन, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि का निर्माण होता हैं, जो कौशल निर्माण और देश में जनशक्ति की गुणवत्ता में सुधार के लिए बहुत आवश्यक हैं। यह याद रखना चाहिए कि आर्थिक विकास का अर्थ पूंजी निर्माण और कौशल निर्माण हैं और यह दोनों संरचनाएं असंतुलित विकास रणनीति के कार्यान्वयन से उत्पन्न होती हैं।
9. **अल्पकालिक रणनीति (Short term Strategy): प्रो. आर. नर्कसे (Prof. R. K. Nurkse)** के अनुसार, ***"संतुलित विकास एक दीर्घकालिक रणनीति हैं"*** जबकि **हर्षमैन (Hirschman)** द्वारा दी ***गई "असंतुलित विकास एक अल्पकालिक रणनीति हैं।"*** इस दृष्टिकोण का मुख्य लाभ यह हैं कि अविकसित देशों के लोगों को उनकी कड़ी मेहनत और प्रयास का फल कम समय में मिल सकता हैं। उन्हें लंबे समय तक अपने धैर्य पर दबाव नहीं डालना चाहिए। इसके अलावा, संतुलित विकास की रणनीति के लिए भारी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती हैं जिसे ना तो अविकसित देश वहन कर सकते हैं और ना ही इसे आसानी से जुटाया जा सकता हैं।
10. **विकास को अधिकतम करना (Maximising Growth):** यह तर्क दिया जाता हैं कि असंतुलित विकास रणनीति अविकसित देशों के विकास को अधिकतम करने में मदद करती हैं, जो इन देशों के पास मौजूद दुर्लभ संसाधनों को देखते हुए सबसे आवश्यक हैं। रणनीति परियोजनाओं को एक क्रम में क्रियान्वित करके ऐसा करती हैं जो उनके कुल स्याही प्रभाव को अधिकतम करता हैं।

16.6 असंतुलित विकास के सिद्धांत की आलोचनाएं (Criticism of Theory of Unbalanced Growth)

असंतुलित विकास के सिद्धांत के लाभ आप पढ़ ही चुके हैं परन्तु इन सभी लाभ के बावजूद भी इस सिद्धांत की कुछ आलोचनाएं भी हैं:

1. **प्रतिरोधों की उपेक्षा (Neglect of Resistance):** इस सिद्धांत ने गतिविधियों में विस्तार के प्रतिरोध को दूर करने के लिए आवश्यक उपायों पर ना ही ध्यान दिया एवं ना ही उनका प्रावधान

किया हैं। **पॉल स्ट्रीटन (Paul Streeten)** के अनुसार, ***"सिद्धांत विस्तार के लिए प्रोत्साहन पर ध्यान केंद्रित करता हैं और असंतुलित विकास के कारण होने वाले प्रतिरोधों की उपेक्षा करता हैं या उन्हें कम करता हैं।"*** यह प्रतिरोध कई तरह से और कई रूपों में हो सकता हैं। उदाहरण के लिए, रणनीति द्वारा जान-बूझकर बनाई गई अस्थिर स्थितियों में कुछ लोगों को बड़ा एकाधिकार लाभ हो सकता हैं। इससे निहित स्वार्थों का उदय होता हैं जो असंतुलन से जुड़ी इन अनिश्चित परिस्थितियों के बजाय उत्पादन पर प्रतिबंधों में रुचि रखते हैं। गलतियों के परिणामस्वरूप ख़राब निवेश इत्यादि हो सकता हैं।

2. **बुनियादी सुविधाओं का अभाव (Lack of Basic Facilities):** इस रणनीति की सफलता तभी हैं जब अर्थव्यवस्था में कच्चा माल, बिजली आपूर्ति, परिवहन, संचार आदि जैसी बुनियादी सुविधाएं मौजूद हों। असंतुलित विकास प्रक्रिया की इस रणनीति के सफल कार्यान्वयन के लिए ऐसी बुनियादी सुविधाओं की कमी एक बड़ी बाधा हैं। हालाँकि, अविकसित देशों में यह बुनियादी सुविधाएँ आम तौर पर उपलब्ध नहीं होती हैं।
3. **पराजयवादी मनोवृत्ति (Defeatist Attitude):** यह अवधारणा अविकसित अर्थव्यवस्थाओं की क्षमताओं के प्रति एक पराजयवादी रवैये को उनकी रचनात्मक क्षमताओं के बारे में पूरी तरह से अवास्तविक अपेक्षाओं से जोड़ती हैं, जो प्रो. हर्षमैन द्वारा दिए गए उनके अपने सिद्धांत पर भी समान रूप से लागू होती हैं। निवेश असंतुलन पैदा करता हैं जो विकास प्रक्रिया में दबाव उत्पन्न करता हैं जिसे प्रोत्साहन तंत्र द्वारा ठीक किया जाता हैं।
4. **मुद्रास्फीति का दबाव (Pressure of Inflation):** असंतुलित विकास सिद्धांत की एक और प्रमुख सीमा एक गरीब देश के भीतर मुद्रास्फीति के दबाव का उद्भव और विकास हैं, जब कुछ रणनीतिक बिंदुओं पर अर्थव्यवस्था में भारी मात्रा में निवेश किया जाता हैं, तो आय में वृद्धि होती हैं जिससे उपभोग की माँग में पूर्ति से ज्यादा वृद्धि होगी। इससे अर्थव्यवस्था में दबाव एवं तनाव की स्थिति उत्पन्न होती हैं, जिससे अंततः मुद्रास्फीति की स्थिति पैदा होती हैं।
5. **अनुबंधन प्रभाव (Linkage Effect):** वास्तव में लिंकेज प्रभाव अविकसित देशों से संबंधित सांख्यिकीय आंकड़ों पर आधारित नहीं हैं जहाँ सामाजिक उपरि पूंजी एक पीढ़ी या उससे भी अधिक समय से विकसित हैं।
6. **निवेश निर्णयों पर जोर देना (Emphasis of Investment Decisions):** प्रो. हर्षमैन (Prof. Hirschman) का सिद्धांत निवेश निर्णयों पर सबसे अधिक जोर देता हैं क्योंकि वह आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परन्तु साथ ही आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए प्रशासनिक, प्रबंधन एवं नीतिगत निर्णय भी समान रूप से आवश्यक हैं।
7. **लचीलेपन का अभाव (Lack of Flexibility):** जहाँ संसाधनों का आंतरिक लचीलापन होता हैं वहाँ उत्प्रेरण तंत्र व्यावहारिक होता हैं परन्तु अविकसित देशों में, संसाधनों को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में स्थानांतरित करना असंभव नहीं परन्तु मुश्किल हैं।
8. **अर्थव्यवस्था में असंतुलन की उपेक्षा (Neglect Imbalance in Economy):** पॉल स्ट्रीटन के अनुसार यह सिद्धांत विभिन्न क्षेत्रों के बीच असंतुलन की डिग्री की व्याख्या नहीं करता हैं। असंतुलित विकास सिद्धांत की आलोचना करते हुए **पॉल स्ट्रीटन** पूछते हैं , ***"महत्वपूर्ण सवाल यह नहीं हैं कि असंतुलन पैदा करना हैं या नहीं, बल्कि असंतुलन की इष्टतम डिग्री क्या हैं, कहाँ असंतुलन करना हैं एवं विकास में तेजी लाने के लिए विकास बिंदु कौन से हैं, निवेश कहाँ करना चाहिए, या ग्लोबॉल की ढलान किस दिशा में बढ़ती हैं।"*** यह प्रश्न विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं जो असंतुलित विकास के सिद्धांत में अनुत्तरित हैं। इस प्रकार वह बताते हैं कि असंतुलित विकास की संरचना, दिशा और समय पर अपर्याप्त ध्यान दिया गया हैं।

9. **कृषि क्षेत्र की उपेक्षा (Neglect Agriculture Sector):** आलोचकों के अनुसार, असंतुलित विकास का सिद्धांत कृषि पर उचित ध्यान देने में विफल रहता हैं जो अविकसित देशों की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं। यह एक खुला रहस्य हैं कि अधिक आबादी वाले और कृषि आधारित अविकसित देशों में कृषि की उपेक्षा आत्मघाती हो सकती हैं। इसके अलावा, कच्चे माल जैसी कृषि वस्तुओं की कमी, किसी देश के औद्योगीकरण कार्यक्रम में एक गंभीर बाधा के रूप में उभर सकती हैं।
10. **उपभोक्ता वस्तु उद्योगों की उपेक्षा (Neglect Industry of Consumer Goods):** उपभोक्ता के दृष्टिकोण से, प्रोफेसर हर्षमैन का असंतुलित विकास का सिद्धांत विफल हैं क्योंकि यह उपभोक्ता वस्तु उद्योगों की कीमत पर पूंजीगत वस्तु उद्योगों की स्थापना पर अनुचित जोर देता हैं।
11. **स्थानीयकरण के नुकसान (Demerits of Localisation):** आलोचकों के अनुसार विभिन्न देशों का अनुभव बताता हैं कि बाहरी अर्थव्यवस्थाओं के कारण भारी उद्योगों का एक ही स्थान पर केन्द्रित होने की प्रवृत्ति होती हैं। हालाँकि, यह उत्पादन के कारकों की गतिशीलता को प्रतिबंधित करता हैं। बदले में, यह मलिन बस्तियां, भीड़भाड़, स्वच्छता जैसी अन्य समस्याएं पैदा करता हैं और सबसे ऊपर, आसपास के इलाकों का वातावरण अत्यधिक प्रदूषित हो जाता हैं। इसके अलावा, युद्ध की अवधि के दौरान, ऐसे स्थान दुश्मन का मुख्य लक्ष्य होते हैं।

16.7 संतुलित विकास के सिद्धांत एवं असंतुलित विकास के सिद्धांत के बीच समानताएँ एवं असमानताएँ (Similarities and Dissimilarities between Theory of Balanced Growth and Theory of Unbalanced Growth)

समानताएँ (Similarities)

1. **निजी क्षेत्र की भूमिका पर जोर (Emphasis on role of Private Sector):** दोनों सिद्धांत बाजार तंत्र के आधार पर निजी क्षेत्र की भूमिका पर जोर देते हैं जिसके तहत वह काम करते हैं।
2. **सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका की उपेक्षा करें (Ignore Public Sectors Role):** दोनों सिद्धांत किसी देश के आर्थिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका की अनदेखी करते हैं। हालाँकि, यदि निजी क्षेत्र बुनियादी उद्योगों में निवेश के लिए आगे नहीं आ रहा हैं, तो प्रारंभिक निवेश सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा किया जा सकता हैं और बाद में सभी उद्यमशीलता को निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया जा सकता हैं।
3. **तीव्र आर्थिक विकास (Rapid Economic Development):** दोनों सिद्धांतों का लक्ष्य अर्थव्यवस्था का तीव्र आर्थिक विकास करना हैं।
4. **बाहरी अर्थव्यवस्थाएँ (External Economies):** दोनों सिद्धांत बाहरी अर्थव्यवस्था को जन्म देते हैं।
5. **आपूर्ति सीमाओं और आपूर्ति असमानताओं की भूमिका पर ध्यान ना दें (Ignore Supply limitation and Supply Inelasticities):** दोनों सिद्धांत आपूर्ति सीमाओं और आपूर्ति असमानताओं की भूमिका को नजर अंदाज करते हैं।
6. **दोनों एक दूसरे के पूरक हैं (Both are Complementary to each other):** दोनों सिद्धांत एक दूसरे के पूरक हैं। कारक की कमी के कारण प्रारंभिक चरण में असंतुलित विकास सिद्धांत को अपनाया जा सकता हैं। जब संसाधन आधार समेकित हो जाता हैं, तो हम संतुलित विकास की रणनीति पर स्विच कर सकते हैं।
7. **निवेश का न्यूनतम पैमाना (Minimum Scale of Investment):** दोनों सिद्धांत निवेश के पर्याप्त न्यूनतम पैमाने की बुनियादी आवश्यकता को स्वीकार करते हैं।

असमानताओं (Dissimilarities)

1. **क्षेत्रों का विकास (Development of Sectors):** संतुलित विकास के सिद्धांत का लक्ष्य अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास करना हैं, जबकि असंतुलित विकास सिद्धांत केवल अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों के विकास पर केंद्रित हैं।
2. **निवेश की राशि (Amount of Investment):** संतुलित विकास सिद्धांत के कार्यान्वयन के लिए भारी मात्रा में निवेश की आवश्यकता होती हैं क्योंकि सभी क्षेत्रों को एक साथ विकसित किया जाना हैं। इसके विपरीत, असंतुलित सिद्धांत के कार्यान्वयन के लिए कम मात्रा में निवेश की आवश्यकता होती हैं क्योंकि केवल अग्रणी क्षेत्रों को प्राथमिकता के आधार पर विकसित किया जाना हैं।
3. **रणनीति की अवधि (Term of Strategy):** संतुलित विकास रणनीति विकास की दीर्घकालिक रणनीति हैं क्योंकि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों के विकास में लंबी अवधि लगना तय हैं। इसके विपरीत, असंतुलित विकास एक अल्पकालिक रणनीति हैं क्योंकि अल्पावधि में अर्थव्यवस्था के कुछ अग्रणी क्षेत्रों का विकास संभव हैं।
4. **बाज़ार का आकार (Size of Market):** संतुलित विकास सिद्धांत के अनुसार, बाजार का आकार मुख्य सीमा हैं परन्तु असंतुलित विकास में निर्णय की कमी हैं।
5. **विकास दर (Development Rate):** संतुलित विकास के तहत विकास दर क्रमिक, सामंजस्यपूर्ण और सुसंगत होती हैं, जबकि असंतुलित विकास के तहत असंगति और विसंगति होती हैं और विकास दर असमान और अव्यवस्थित होती हैं।
6. **कमी की समस्या (Problem of Scarcity):** संतुलित विकास कमी की समस्याओं पर विचार करता हैं, जबकि असंतुलित विकास कमी पर विशेष ध्यान देता हैं।
7. **पूरक बनाम प्रतिस्पर्धी (Complement VS Competition):** संतुलित विकास का मानना हैं कि उद्योग एक दूसरे के पूरक हैं जबकि असंतुलित विकास का मानना हैं कि उद्योग प्रतिस्पर्धी हैं।
8. **बाधाओं का फैलना (Spread of Hindrance):** संतुलित विकास सिद्धांत के अंतर्गत संपूर्ण अर्थव्यवस्था में रुकावटें फैली हुई हैं जो विकास के क्षेत्र में बाधाएँ उत्पन्न करती हैं। इसके विपरीत, संतुलित विकास सिद्धांत के तहत, बाधाएं अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में केंद्रित हैं जो आविष्कारों और नवाचारों के लिए काफी प्रोत्साहन प्रदान करती हैं।

16.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. प्रो. हर्षमैन के अनुसार.....पैदा करना आर्थिक विकास की पूर्व-आवश्यकता हैं। (असंतुलन **या** संतुलन)
2. असंतुलित विकास की रणनीति बड़े पैमाने पर.....उत्पन्न करती हैं। (उत्पादन की अर्थव्यवस्था **या** उपभोग की अर्थव्यवस्था)
3. असंतुलित विकास की रणनीति से प्रणाली में ..... अधिशेष उत्पन्न होने की उम्मीद हैं। (कम **या** अधिक)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथनों का चुनाव कीजिए-

1. अग्रिम अनुबंधन उत्पादन के बाद के चरणों में बचत को प्रोत्साहित करता हैं।
2. असंतुलित विकास सिद्धांत की एक और प्रमुख सीमा एक गरीब देश के भीतर मुद्रास्फीति के दबाव का उद्भव और विकास हैं।

16.9 सांराश (Summary)

प्रस्तुत इकाई में आपने असंतुलित विकास के सिद्धांत के बारे में पढ़ा और जाना की इस सिद्धांत के अनुसार अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में एक साथ निवेश करने के बजाय केवल कुछ महत्वपूर्ण या रणनीतिक क्षेत्रों पर ही ध्यान केंद्रित करना चाहिए। अविकसित देशों में पूंजी की भारी कमी हैं और ऐसे में उनके लिए अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में निवेश करना संभव नहीं हैं।

इस सिद्धांत में आपने तीन तरीके पढ़े जिससे अर्थव्यवस्था को असंतुलित किया जा सकता हैं, जिसमें पहला हैं, **सामाजिक उपरि पूंजी**, इसका तात्पर्य उन बुनियादी सेवाओं से हैं जिनके साथ प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीयक उत्पादक गतिविधियाँ कार्य नहीं कर सकती हैं। बुनियादी सेवाओं में शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सार्वजनिक उपयोगिताएँ जैसे पानी, बिजली, सिंचाई, जल निकासी, संचार, परिवहन आदि शामिल हैं। ऐसी बुनियादी सेवाओं के निर्माण एवं विस्तार पर निवेश सार्वजनिक एजेंसियों द्वारा सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देने और सीधे उत्पादक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के लिए किया जाता हैं। इसमें दूसरा आता हैं, **अनुबंधन प्रभाव**, इसके अंतर्गत हमने जाना की कैसे अर्थव्यवस्था में अनुबंधन हैं, एक जगह निवेश करने से दुसरे जगह क्या प्रभाव पड़ता हैं। किसी भी निवेश में 'अग्रिम अनुबंधन' एवं 'पश्चवर्ती अनुबंधन' दोनों प्रभाव हो सकते हैं। अग्रिम अनुबंधन उत्पादन के बाद के चरणों में निवेश को प्रोत्साहित करता हैं और पश्चवर्ती अनुबंधन विकास के शुरुआती चरणों में। अग्रिम अनुबंधन एवं पश्चवर्ती अनुबंधन का अध्ययन उन गतिविधियों की पसंद को सुविधाजनक बनाता हैं जिनके माध्यम से सिस्टम में असंतुलन के साथ विकास उत्पन्न किया जाना चाहिए। अधिकतम अनुबंधन उत्पन्न करने वाले उद्योगों को पहले विकसित किया जाना चाहिए।

प्रोफेसर हर्षमैन के अनुसार, स्टील और कोयला जैसे मध्यवर्ती उद्योगों से अधिकतम अनुबंधन उत्पन्न होने की उम्मीद की जा सकती हैं। इसमें तीसरा हैं **अंतिम उद्योगों की स्थापना**, असंतुलित विकास रणनीति की सफलता के लिए उन परियोजनाओं के बुद्धिमान चयन की आवश्यकता होती हैं जिनमें पहले निवेश किया जाना हैं। इस उद्देश्य के लिए, एक विकासशील देश स्वयं औद्योगिक प्रक्रिया नहीं अपना सकता बल्कि वह विदेशों से आयात कर सकता हैं और तैयार उत्पादों (final goods) को इकट्ठा कर सकता हैं।

इसके बाद आपने इकाई में असंतुलित विकास के सिद्धांत के लाभ को भी पढ़ा एवं साथ ही इसकी आलोचनाओं को भी विस्तार से पढ़ा। इकाई में आगे आपने संतुलित विकास के सिद्धांत एवं असंतुलित विकास के सिद्धांत के बीच समानताएँ एवं असमानताएँ को भी जाना और यह समझा की किस प्रकार यह दोनों सिद्धांत एक दुसरे के समान हैं परन्तु साथ ही यह एक दुसरे से भिन्न हैं।

16.10 शब्दावली (Glossary)

- **आर्थिक स्वतंत्रता (Economic Independence)-** कुछ व्यक्ति धनराशि जमा करके आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होना चाहते हैं।
- **स्वतन्त्र नीति अर्थव्यवस्था (Laissez Faire):** स्वतन्त्र नीति अर्थव्यवस्था से तात्पर्य उस अर्थव्यवस्था से हैं जिसमे सरकार बिलकुल भी हस्तछेप नहीं करती हैं।
- **पूंजी (Capital):** पूंजी का अर्थ हैं किसी व्यवसाय को बनाने, चलाने या विस्तार करने के लिए उपयोग किया जाने वाला धन।
- **विकास (Development):** विकास का तात्पर्य अंगों के बेहतर और संवर्धित कामकाज के लिए रूप या संरचना में वृद्धि से हैं, जिसे मापा नहीं जा सकता, जिससे गुणात्मक परिवर्तन होते हैं। गुणात्मक परिवर्तन तब होते हैं जब कोई व्यक्ति अपने सोचने और व्यवहार करने के तरीके में प्रगति करता हैं।
- **सरकारी व्यय (Government Expenditure):** सरकारी व्यय में सभी सरकारी उपभोग, निवेश एवं हस्तांतरण भुगतान शामिल होते हैं। राष्ट्रीय आय लेखांकन के अनुसार लोगो की व्यक्तिगत या

सामूहिक आवश्यकताओं को सीधे संतुष्ट करने के लिए वर्तमान उपयोग के लिए वस्तुओं एवं सेवाओं पर किया गया व्यय सरकारी व्यय कहलाता हैं।

- **पूर्ति (Supply):** किसी वस्तु की पूर्ति वस्तु की उस मात्रा से हैं जिसे विक्रेता एक निश्चित समय में तथा एक निश्चित कीमत पर बाजार में बेचने को तैयार हैं।
- **निवेश (Investment):** निवेश का अर्थ हैं अपने पैसे को ऐसी संपत्ति में लगाना जो आय उत्पन्न करती हो या उसका मूल्य बढ़ाती हो। निवेश के जरिए आप अपना पैसा बढ़ा सकते हैं।
- **बाहरी अर्थव्यवस्थाएँ (External Economies):** बाहरी अर्थव्यवस्थाएँ बाहरी कारक हैं जो किसी फर्म की लागत को कम करती हैं। यह कारक किसी फर्म के नियंत्रण से बाहर हैं परन्तु उद्योग के भीतर होते हैं। बाहरी अर्थव्यवस्थाएँ संपूर्ण उद्योग, भौगोलिक क्षेत्र या अर्थव्यवस्था की उत्पादकता बढ़ाती हैं।

16.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. असंतुलन 2. उत्पादन की अर्थव्यवस्था 3. अधिक

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथनों का चुनाव कीजिए-

1. असत्य 2. सत्य

16.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- प्रो. एम. एल. झिगन (2010) ***विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन***, बिन्द्रा पब्लिशिग हाउस, दिल्ली।
- प्रो. एस. एन. लाल (1999) ***आर्थिक विकास एवं आयोजन*** , शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद।
- प्रो. एस. पी. सिह (2009) ***आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन***, एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन दिल्ली।

16.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Text)

- Agarwal, R. C. : "***Economics of Development and Planning***" , Lakshmi Narayan Agarwal, Agra 2007
- Taneja, M.L. & Myer R.M.: "***Economics of Development and Planning***" Vishal Publishing Co., Delhi, 2010

16.14 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. असंतुलित विकास के सिद्धांत की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
2. असंतुलित विकास के सिद्धांत के लाभ एवं हानि लिखिए।
3. संतुलित विकास के सिद्धांत एवं असंतुलित विकास के सिद्धांत के बीच समानता एवं असमानता की व्याख्या कीजिए।

इकाई 17 - सामाजिक एवं तकनीकी द्वैतवाद विश्लेषण
(Analysis of Social and Technical Dualism)

17.1 प्रस्तावना (Introduction)
17.2 उद्देश्य (Objectives)
17.3 सामाजिक द्वैतवाद का सिद्धान्त (Theory of Social Dualism)
    17.3.1 सामाजिक द्वैतवाद से अभिप्राय (Meaning of Social Dualism)
    17.3.2 द्वैतीय समाज की विशिष्टताएं (Specifications of Social Dualism)
    17.3.3 पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त की द्वैतीय समाज में अप्रयोज्यता (Inapplicability of Western Economic Theory in Dualistic Society)
    17.3.4 समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal)
    17.3.5 निष्कर्ष (Conclusion)
17.4 तकनीकी द्वैतवाद (Technical Dualism)
    17.4.1 तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय (Meaning of Technical Dualism)
    17.4.2 समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal)
    17.4.3 तकनीकी द्वैतवाद के दोष (Defects of Technical Dualism)
17.5 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)
17.6 सारांश (Summary)
17.7 शब्दावली (Glossary)
17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
17.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
17.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)
17.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

17.1 प्रस्तावना (Introduction)

द्वैतीय आर्थिक संरचना वर्तमान अल्पविकसित देशों की एक सामान्य विशेषता है जिसमें दो परस्पर विरोधी अर्थव्यवस्थाओं का सह-अस्तित्व पाया जाता है। अल्पविकसित देशों में एक ओर आधुनिक अर्थव्यवस्था एवं दूसरी ओर परम्परागत अथवा पिछडी अर्थव्यवस्था की विशेषताएं रहा होता है। इन दो परस्पर विरोधी अर्थव्यवस्थाओं के सह-अस्तित्व के कारण **'द्वैतवाद की समस्या'** उत्पन्न होती है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा **'द्वैतवाद की समस्या'** का अध्ययन करने के लिए अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया जिनमें प्रोफेसर जे. एच. बूके (Professor J.H. Boeke) द्वारा प्रतिपादित **"सामाजिक द्वैतवाद का सिद्धान्त"** एवं **हिग्गिन्स** द्वारा प्रतिपादित **"तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त"** महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

17.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम -

- ✓ सामाजिक द्वैतवाद एवं तकनीकी द्वैतवाद के अर्थ को सीखेंगे।
- ✓ द्वैतीय समाज की विशिष्टताओं को जानेंगे।
- ✓ बूके द्वारा प्रतिपादित सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाओं को समझेंगे।
- ✓ सामाजिक द्वैतवाद एवं तकनीकी द्वैतवाद के प्रमुख अन्तरों को समझेंगे।
- ✓ हिग्गिन्स द्वारा प्रतिपादित तकनीकी द्वैतवाद के सिद्धान्त के प्रमुख दोषों को जानेंगे।

17.3 सामाजिक द्वैतवाद का सिद्धान्त (Theory of Social Dualism)

हॉलैण्ड के अर्थशास्त्री **प्रोफेसर जे. एच. बूके (Professor J.H. Boeke)** ने एक विशिष्ट सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो केवल अल्पविकसित देशों पर ही लागू होता है। उनका "सामाजिक द्वैतवाद" का सिद्धान्त अल्पविकसित देशों के आर्थिक एवं सामाजिक विकास का एक सामान्य सिद्धान्त है जो प्रमुख रूप से उनके इण्डोनेशियाई अर्थव्यवस्था के अध्ययनों पर आधारित है।

17.3.1 सामाजिक द्वैतवाद से अभिप्राय (Meaning of Social Dualism)

प्रोफेसर जे. एच. बूके (Professor J.H. Boeke) के अनुसार आर्थिक दृष्टिकोण से किसी समाज की तीन विशिष्टताएं होती हैं

1. सामाजिक भावना,
2. संगठनात्मक रूप एवं,
3. व्याप्त तकनीक

इनकी परस्पर निर्भरता एवं परस्पर संबंध को सामाजिक प्रणाली या सामाजिक ढंग कहते है। वह समाज सजातीय होता है जिसमें केवल एक सामाजिक प्रणाली पाई जाती हो। परन्तु किसी समाज में दो या अधिक प्रणालियां एक-साथ विद्यमान हो सकती है। तब वह द्वैत या बहु-संख्यक समाज होता है। **बूके** ने **'द्वैत समाज' शब्द का प्रयोग 'ऐसे समाजों' के लिए किया है, जो दो समसामयिक एवं पूर्णत: विकसित सामाजिक प्रणालियों का स्पष्ट विभाजन प्रकट करती है; जो (प्रणालियां) सजातीय समाजों के स्वाभाविक ऐतिहासिक क्रम-विकास में संक्रमणकालीन रूपों द्वारा एक-दूसरी से अलग कर दी जाती हैं। उदाहरण के लिए, शुरू के पूँजीवाद द्वारा पूर्व-पूँजीवाद एवं उच्च पूँजीवाद।** उन्नत आयातित पश्चिमी प्रणाली एवं स्वदेशीय पूर्व-पूँजीवादी कृषि सम्बन्धी प्रणाली का पाया जाना इस प्रकार के द्वैत समाज की विशिष्टता होती है।

प्रथम प्रणाली अर्थात उन्नत आयातित पश्चिमी प्रणाली पश्चिमी प्रभाव एवं देखरेख में होती है, जो उन्नत तकनीकों का प्रयोग करती है और जिसमें जीवन का औसत स्तर ऊंचा होता है। दूसरी स्वदेशी होती है जिसमें तकनीकी, आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण के स्तर नीचे होते हैं। **बूके** ने इसे **'सामाजिक द्वैतवाद'** कहा है और इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है : ***"यह एक आयातित सामाजिक प्रणाली की दूसरी ढंग की स्वदेशीय सामाजिक प्रणाली से भिडन्त है। प्रायः आयातित सामाजिक प्रणाली उच्च पूँजीवाद होती है। पर यह समाजवाद या साम्यवाद भी हो सकती है या फिर दोनों का मिश्रण भी।"***

17.3.2 द्वैतीय समाज की विशिष्टताएं (Specifications of Social Dualism)

दो परस्पर विरोधी सामाजिक प्रणालियों की आर्थिक अन्त:- क्रियाओं के वर्णन एवं स्पष्टीकरण के लिए **बूके** ने **'द्वैतीय समाज'** का आर्थिक सिद्धान्त दिया है जिसे उन्होनें 'द्वैतीय अर्थशास्त्र' या **'पूर्वीय अर्थशास्त्र'** की संज्ञा दी है। बूके का सिद्धान्त अधिकतर इण्डोनेशियाई अनुभव पर आधारित है।
द्वैतीय अर्थव्यवस्था के पूर्वीय क्षेत्र की कुछ विशिष्टताएं है जो उसे पश्चिमी समाज से पृथक करती हैं। पूर्वीय समाज की आवश्यकताएं सीमित होती हैं। यदि लोगों की तात्कालिक आवश्यकताएं पूरी हो जाएं तो वे संतुष्ट हो जाते हैं। ***"जब नारियल की कीमत अधिक हो जाती है, तो संभावनाएं ये हैं कि थोड़ी वस्तुएं विक्रय के लिए आएंगी; जब मजदूरी बढ़ाई जाती है तो संपदा का प्रबन्धकर्ता यह जोखिम मोल लेता है कि पहले से थोड़ा कम काम होगा; यदि किसी कृषक के परिवार की आवश्यकता के लिए तीन एकड़ काफी हैं, तो वह छ; की काश्त नहीं करेगा; जब रबड़ की कीमतें गिरती हैं तो वाटिका का मालिक वृक्षों को अधिक गहनता से उपयोग का निर्णय करता है। जबकि उंची कीमतों का मतलब है कि वह उपयोगिता वृक्षों के थोड़े बहुत भाग को बिना उपयोग के छोड देता है।"*** ऐसा इसलिए कि लोग आर्थिक की अपेक्षा सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा अधिक प्रभावित होते हैं। वस्तुओं का मूल्यांकन प्रयोग- मूल्य की अपेक्षा प्रतिष्ठा-मूल्य के अनुसार होता है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि पीछे की ओर ढालू प्रयत्न एवं जोखिम का पूर्ति वक्र पूर्वीय अर्थव्यवस्था की विशिष्टता है।

स्वदेशी उद्योग लगभग संगठनरहित, पूँजीहीन, तकनीक की दृष्टि से विवश और मार्केट से अनभिज्ञ होता है। लोग लगातार लाभ देने वाले उद्योगों की अपेक्षा सट्टा-क्रियाओं में अधिक लगे रहते हैं। वे जोखिम वाले निवेशों में विश्वास नहीं करते। उनमें उस उपक्रम एवं संगठनात्मक कुशलता का अभाव होता है, जोकि द्वैत समाज के पश्चिमी क्षेत्र की विशेषता है। ये भाग्यवादी होते हैं और आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने में झिझकते हैं। श्रम **'असंगठित, निष्क्रिय, शान्त, आकस्मिक'** एवं अकुशल होता है। आप्रवासन एवं देश के भीतर एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाना राज्य हस्तक्षेप के माध्यम से होता हैं। देहाती जीवन की लागत पर शहरी विकास होता है। पूर्वीय समाज में विदेशी व्यापार का प्रमुख लक्ष्य निर्यात है जो पश्चिमी समाज के लक्ष्य से बिल्कुल भिन्न है, जहां वह आयात को संभव बनाने वाला साधन मात्र है।

17.3.3 पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त की द्वैतीय समाज में अप्रयोज्यता (Inapplicability of Western Economic Theory to Dualistic Soceity)

पूर्वीय समाज की ये महत्वपूर्ण विशिष्टताएं पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त को अल्पविकसित देशों के लिए पूर्णतया अव्यवहार्य बना देती हैं। **बूके** के अनुसार, पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त पूँजीवादी समाज की व्याख्या के लिए है, जबकि पूर्वीय समाज पूर्व-पूँजीवादी है। पहला, असीमित आवश्यकताओं, मौद्रिक अर्थव्यवस्था एवं विभिन्न प्रकार के सहकारी संगठनों पर आधारित है। फिर, अल्पविकसित अर्थव्यवस्था

में साधनों की अगतिशीलता के कारण, साधनों के विभाजन अथवा आय के वितरण की व्याख्या के लिए वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को लागू करना गलत है। इसलिए **प्रोफेसर बूके** ने चेतावनी दी है कि ***"अच्छा यही है कि हम पश्चिमी सिद्धान्त के कोमल, कमजोर, कांच-गृह के पौधों को उष्णदेशीय धरती में प्रतिरोपित करने का प्रयत्न न करें, जहां कि शीघ्र मृत्यु उनकी प्रतीक्षा करती है।"*** इस प्रकार, समस्त अर्थव्यस्था पर एक ही नीति लागू करना संभव नहीं है क्योंकि जो एक समाज के लिए हितकर है, वह दूसरे के लिए अहितकर हो सकती है।

पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति द्वैतीय होने के कारण पश्चिमी ढंग से उनकी पूर्व-पूँजीवादी कृषि के विकास का प्रयत्न निष्फल ही नहीं होगा बल्कि हास भी ला सकता है। आधुनिक कृषि तकनीकों का प्रचलन करने के लिए लोगों की मानसिक वृत्तियों में परिवर्तन आवश्यक है अन्यथा उनके परिणमस्वरूप होने वाली धन में वृद्धि, जनसंख्या में और वृद्धि लाएगी। फिर, यदि पश्चिमी प्रौद्योगिकी फेल हो जाए तो ऋणग्रस्तता बढ़ जाएगी। इसलिए उनकी वर्तमान कृषि व्यवस्था को नहीं छेडना चाहिए क्योंकि उसमें सुधार कर सकना कठिन है।

जहाँ तक औद्योगिक क्षेत्र का प्रष्न है उसमें पूर्वीय उत्पादक अपने को प्रौद्योगिकीय, आर्थिक अथवा सामाजिक रूप से पश्चिमी प्रारूप के अनुकूल नहीं ढाल सकता। यदि पूर्वीय उत्पादक पश्चिम की नकल करेगा तो नुकसान उठाएगा। अपने तर्क की पष्टि में बके ने इण्डोनेशिया का उदाहरण दिया। जहां इण्डोनेशियाई अर्थव्यवस्था का औद्योगीकरण करने के लिए प्रौद्योगिकी के अपनाने से आत्मनिर्भरता की मंजिल को और भी दूर कर दिया है एवं उसके छोटे उद्योग का नाश किया है।

बूके ने अल्पविकसित देशों में पाँच प्रकार की बेरोजगारी की ओर संकेत किया है: ***"सामयिक (ऋतुकालिक), आकस्मिक, नियमित श्रमिकों की बेरोजगारी, बाबू लोगों की बेरोजगारी एवं यूरेशियाईयों की बेरोजगारी।" वह समझते है कि "उन्हें दूर करना सरकार के वष की बात नहीं क्योंकि इससे वित्तीय भार पड़ेगा एवं वह सरकर के साधनों से अधिक होगा।"***

अल्पविकसित देशों में सीमित आवश्यकताएं एवं सीमित क्रय-शक्ति पूरे आर्थिक विकास में रूकावट पैदा करती हैं। खाद्य आपूर्ति अथवा उद्योग-वस्तुओं की वृद्धि मार्केट में पदार्थों की भरमार कर देगी जिससे बाद में कीमतों में कमी होगी और मंदी आएगी। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि बूके पूरी तरह से औद्योगीकरण और कृषि-सुधारों के विरूद्ध हैं बल्कि वह तो औद्योगीकरण एवं छोटे पैमाने पर कृषि विकास की धीमी प्रक्रिया के पक्ष में है, जोकि पूर्वीय समाज के द्वैतीय ढांचे के अनुकूल ढाल ली गई हो। विकास की प्रेरणा स्वयं लोगों के भीतर से आए। नए नेता प्रकट हों, जो आर्थिक विकास के लक्ष्य के लिए विश्वास, निष्कपटता और धैर्य से प्रत्यन करें।

17.3.4 समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal)

बूके की विचारधारा कुछ हद तक अव्यवहारिक है **प्रोफेसर बैंजामिन हिग्गिन्स (Professor Benjamin Higgins)** का मानना है कि बूके का सिद्धान्त अधिकतर इण्डोनेशियाई अनुभव पर आधारित है जिसे सभी अल्पविकसित देशों पर लागू नहीं किया जा सकता है। उन्होंने निम्नलिखित आधार पर बूके के द्वैतीय विकास के सिद्धान्त की बहुत कड़ी आलोचना की है:

1. **आवश्यकतायें सीमित नहीं होतीं (Wants are not limited) -** स्वयं इण्डोनेशिया का अनुभव बूके के इस कथन का समर्थन नहीं करता कि अल्पविकसित देशों में लोगों की आवश्यकताएं सीमित होती हैं अथवा प्रयत्न एवं जोखिम का पूर्ति वक्र पीछे की ओर ढालू होता है। वहां सीमान्त उपभोग एवं आयात प्रवृतियां दोनों ही ऊंची है। लोगों की आवश्यकताएं सीमित नहीं है बल्कि घरेलू एवं

आयातित अर्द्ध-विलास वस्तुओं की मांग बहुत है। भारत में यदि अच्छी फसल हो जाए तो रेडियो, ट्रांजिस्टरों और घड़ियों आदि के आर्डरों की बाढ आ जाती है।

2. **आकस्मिक श्रम असंगठित नहीं (Causal labour is not unorganized) -** बूके का पूर्वीय आकस्मिक श्रमिक को असंगठित, निष्क्रिय, शान्त एवं आकस्मिक बताना ***"इण्डोनेशिया और भारत में एवं अन्यत्र संगठित श्रम की बढ़ती हुई शक्ति से मेल नहीं खाता।"*** इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में आकस्मिक श्रम कृषि में भले ही संगठित न हो परन्तु चाय, कॉफी एवं रबड बागान में ट्रेड यूनियन आन्दोलन प्रबलतम होता है।
3. **पूर्वीय श्रम अगतिशील नहीं (Eastern labour is not immobile) - बूके** का यह विचार भी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं में लोग अपने गाम समुदाय नहीं छोड़ना चाहते। वास्तव में अपने सिनेमा, दुकानों, होटलों, खेल प्रतियोगिताओं आदि के समस्त आकर्षणो से युक्त शहरी जीवन ने हमेशा देहाती क्षेत्रों से स्थानान्तरण कराया है। बड़े-बड़े शहरों में जो भीड़-भाड़, बेरोजगारी और अनुपयुक्त आधारभूत सुख सुविधाएं मिलती हैं, वे इसी का परिणाम हैं। इसके अतिरिक्त आय प्रेरणा से भी श्रम एक बागान से दूसरे में और यहां तक कि आकस्मिक श्रम फसल के दिनों में देहाती क्षेत्रों में चले जाते हैं। प्रोफेसर हिग्गिन्स लिखते हैं, ***"मुझे इसका कोई प्रमाण दिखाई नहीं देता कि पूर्वीय श्रम आन्तरिक रूप में पश्चिमी श्रम की अपेक्षा अधिक अगतिशील है।"***
4. **पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की ही विशेषता नहीं (Not Peculiar to Eastern-Economies) - बूके** ने अपने सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त को केवल पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं से सम्बद्ध किया है, परन्तु वह स्वयं भी यह मानते है कि अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका की अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में भी सामाजिक द्वैतवाद विद्यमान है। यह केवल अल्पविकसित क्षेत्रों की ही विशेषता नहीं है वरन इटली, केनेडा और यहां तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका में भी यह विद्यमान है। बल्कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था ***"प्रौद्योगिकीय उन्नति की विभिन्न कोटियों के अनुसार पृथक-पृथक क्षेत्रों में विभक्त की जा सकती है।"***
5. **पश्चिमी समाजों पर भी लागू (Applicable to Western Societies also) -** पूर्वीय समाज की जिन खास विशिष्टताओं का बूके ने वर्णन किया है, उनमें से अनेक पश्चिमी समाजों पर भी लागू की जा सकती हैं। पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं में जब कभी दीर्घकालिक स्फीति आती या आने लगती है, तो लोग दीर्घकालीन निवेशों की अपेक्षा सट्टा-सम्बन्धी लाभों को अधिमान देते हैं। **प्रोफेसर हिग्गिन्स** के अनुसार, ***"पश्चिमी अर्थशास्त्रियों ने 'तरलता अधिमान' एवं 'सुरक्षा अधिमान' से सम्बन्धित विश्लेषण के पूरे क्षेत्र का हाल ही में विकास किया है ताकि सारी दुनिया में निवेशकों के जोखिम या अतरलता उठाने की अनिच्छा और उनके पूँजी को सुरक्षित एवं तरल रूप में रखने के प्रबल अधिमान का हिसाब लगाया जा सके।"***
6. **प्रतिष्ठा-मूल्य (Prestige Value) -** बूके का यह कथन कि पूर्वीय अर्थव्यवस्था में लोग वस्तुओ को उनके प्रयोग-मूल्य की अपेक्षा प्रतिष्ठा-मूल्य के कारण खरीदते हैं- पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं पर भी समान रूप से लागू होता है। यदि ऐसा न होता, तो **वैब्लन (Veblen)** अमेरिकी समाज के लिए **'प्रत्यक्ष उपभोग'** शब्द न गढ़ता।
7. **पीछे की ओर ढालू प्रयत्न का पूर्ति वक्र (Backward Sloping Supply Curve of Effort) -** पीछे की ओर ढालू प्रयत्न का पूर्ति वक्र भी पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की ही विलक्षणता नहीं है। आस्ट्रेलिया ने

युद्धोत्तर काल में और संयुक्त राज्य अमेरिका ने वर्तमान शताब्दी के पांचवें दशक के वर्षों में इसे अनुभव किया था।

8. **सिद्धान्त नहीं वरन् विवरण (Not a Theory but Description) - बूके** अल्पविकसित देशों के लिए विशिष्ट आर्थिक एवं सामाजिक सिद्धान्त देने में विफल रहे हैं। उनका द्वैतीय सिद्धान्त पूर्वीय समाज का विवरण मात्र है जिसमें वह पूर्वीय समाज के उन विलक्षण तत्वों का प्रदर्शन करता है, जिनका पश्चिमी ढंग से विकास नहीं होना चाहिए। बूके का यह कथन है कि पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त पूर्वीय समाजों पर लागू नहीं होता। वह नव-क्लासिकी सिद्धान्त पर आधारित है जिसकी व्यवहार्यता पश्चिमी जगत में भी सीमित है।
9. **पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त के औजारों का पूर्वीय समाजों में प्रयोग (Tools of Western Economic Theory used in Eastern societies) -** मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियो के मूल में निहित पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त के कुछ औजार और भुगतान- शेष के असंतुलन को दूर करने वाले साधन थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ पूर्वीय समाजों पर भी लागू होता हैं। **प्रोफेसर हिग्गिन्ज** का विश्वास है कि ***"उपयुक्त संस्थानिक धारणाओं से परिभाषित मॉडल के भीतर आर्थिक एवं सामाजिक विश्लेषण के परिचितऔजारों का व्यवहार करके"*** अल्पविकसित देशों की समस्या का हल ढूंढा जा सकता है।
10. **बेरोजगारी की समस्या का हल नहीं सुझाता (Does not provide solution to the problem of Development) - बूके** के द्वैतवाद में यह एक बड़ी कमी है कि यह बेरोजगारी की समस्या का कोई हल नहीं सुझाता। बूके का द्वैतवाद आर्थिक की अपेक्षा सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों पर अधिक केन्द्रित है। वह विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी को, सरकार के बस की बात नहीं मानता और अल्प-रोजगार की बात ही नहीं करता, जो घनी आबादी वाली अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख विशेषता है।

17.3.5 निष्कर्ष (Conclusion)

वास्तव में द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं की बड़ी समस्या यह है कि वर्तमान एवं संभावित अल्प-विकसित श्रम-शक्ति को उचित रोजगार की सुविधाएं प्रदान की जाएं। इसी कारण **प्रोफेसर हिग्गिन्स ने प्रौद्योगिकी द्वैतवाद** के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जो ***"दो क्षेत्रों में साधन-सम्पन्नताओं एवं उत्पादन फलनों में भेदों को 'प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद' का आधार मानता है जिसका परिणाम यह हुआ है कि उत्पादक रोजगार के लिए अपर्याप्त संख्या में मार्ग पाए जाते हैं।"*** यह बूके की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी द्वैतीय सिद्धान्त है क्योंकि यह सिद्धान्त विकास के आदर्श पर द्वैतीय समाज के प्रभावो का विश्लेषण करता है।

17.4 तकनीकी द्वैतवाद (Technological Dualism)

बूके के सामाजिक द्वैतवाद के विकल्प के रूप में प्रोफेसर हिग्गिन्स ने तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है जो बूके की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी माना जाता है।

17.4.1 तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय (Meaning of Technical Dualism)

तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय यह है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकसित एवं पंरापरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों का प्रयोग होता है। इस प्रकार के द्वैतवाद ने औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक या तकनीकी बेरोजगारी एवं देहाती क्षेत्र में अल्प-रोजगार की समस्या को बढ़ाया है। हिग्गिन्स का प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद का सिद्धान्त **ऐकॉस (R.S. Ekaus)** द्वारा विवेचित साधन अनुपातों

की समस्या को शामिल करता है और उन सीमित उत्पादकीय रोजगार सुविधाओं से संबंध रखता है, जो बाजार की अपूर्णताओं, विभिन्न सीमित साधन-सम्पन्नताओं एवं उत्पादन फलनों के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के दो क्षेत्रों में पाई जाती है।

वास्तव में, अल्पविकसित देशों की एक विशिष्टिता साधन स्तर पर संरचनात्मक असंतुलन है। साधन स्तर पर असंतुलन या तो इस कारण उत्पन्न होता है कि एकल साधन विभिन्न प्रयोगों में विभिन्न प्रतिफल प्राप्त करता है या इसलिए कि साधनों के बीच कीमत संबंध साधन प्राप्यताओं से मेल नहीं खाते। **डॉ. ऐकॉस** के अनुसार, ऐसे असंतुलन से अल्पविकसित देशों में दो प्रकार से बेरोजगारी या अल्प-बेरोजगारी होती है। ***प्रथम***, कीमत प्रणाली में अपूर्णताओं या कु-कार्यकरण से। ***दूसरे***, वर्तमान औद्योगिकी या माँग की संरचना में बाधाओं से, जो अति जनसंख्या वाले पिछड़े हुए देशों में अतिरेक श्रम का कारण बनती है। अत: एक अल्पविकसित देश में संरचनात्मक बेरोजगारी का संबंध अतिरेक श्रम से होता है, जो साधनों के कुवितरण, माँग की संरचना और प्रौद्योगिकीय रूकावटों से उत्पन्न होता है।

बैंजामिन हिग्गिन्स ने अपने सिद्धान्त का निर्माण दो वस्तुओं, उत्पादन के दो साधनों और दो क्षेत्रों के आधार पर उनके साधन सम्पन्नता एवं उत्पादन-फलनों से किया है। इन दो क्षेत्रों में से ***एक*** औद्योगिक क्षेत्र बागानों, खानों, तेल-क्षेत्रों, रिफाइनरियों या बड़े पैमाने के उद्योगों में प्रवृत्त रहता है यह पूँजी-गहन होता है और तकनीकी गुणांक इसे विशिष्टता प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में, साधनों की तकनीकी स्थानापन्नता नहीं होती और उन्हें स्थिर अनुपातों में मिलाया जाता है। ***दूसरा***, ग्रामीण क्षेत्र खाद्य वस्तुओं के उत्पादन, दस्तकारी या बहुत छोटे उद्योगों में प्रवृत्त रहता है। इसके उत्पादन के तकनीकी गुणांक परिवर्ती होते हैं ताकि यह तकनीकों के विस्तृत क्षेत्र और श्रम एवं पूँजी (जिसमें सुधारी हुई भूमि भी शामिल है) के वैकल्पिक संयोगों से एक ही वस्तु का उत्पादन कर सके।

दो क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों के दिए हुए होने पर प्रोफेसर हिग्गिन्स ने उस प्रक्रिया का विश्लेषण किया है जिसके परिणामस्वरूप तकनीकी द्वैतवाद ने द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी और अदृश्य बेरोजगारी बढ़ाई है। दो क्षेत्रों में से, औद्योगिक क्षेत्र विदेशी पूँजी की सहायता से विकास एवं विस्तार करता है। इस प्रकार, औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप पूँजी-संचय की दर से बहुत अधिक जनसंख्या की वृद्धि हो जाती है क्योंकि यह क्षेत्र पूँजी-गहन तकनीकों और स्थिर तकनीकी गुणांकों का प्रयोग करता है, इसलिए यह उसी दर से रोजगार के अवसर उत्पन्न नहीं कर सकता जिससे जनसंख्या बढ़ती है। बल्कि यह भी हो सकता है कि औद्योगीकरण ***"उस क्षेत्र में कुल रोजगार के अनुपात में सापेक्ष कमी ला दे।"*** इस प्रकार, अतिरेक श्रम के पास इसके सिवाय कोई चारा नहीं कि वह ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार ढूंढे।

विकास प्रक्रिया के प्रारम्भ होने से पहले, ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन के साधनों की न तो प्रचुरता होती है और न ही दुर्लभता। शुरू में तो यह सम्भव है कि अधिक भूमि को काश्त में लाकर अतिरिक्त श्रम शक्ति को खपा लिया जाए। इसके परिणामस्वरूप श्रम एवं पूँजी (सुधारी हुई भूमि) के अनुकूलतम संयोग बनते हैं क्योंकि उत्पादन बढ़ता है। उस क्षेत्र में श्रम का उपलब्ध पूँजी से अनुपात धीरे-धीरे बढ़ता जाता है और क्योंकि तकनीक गुंणाक उपलब्ध है, इसलिए इस क्षेत्र में तकनीकें उत्तरोत्तर परिवर्ती बनती जाती हैं। उदाहरणार्थ, कई एशियाई देशों में परिवर्ती शुष्क धान खेती के स्थान पर जलयुक्त धान खेती स्थानापन्न कर दी गई है। अन्तत: बहुत अधिक श्रम-गहन तकनीकों द्वारा समस्त उपलब्ध भूमि काश्त हो जाती है और श्रम की सीमान्त उत्पादकता गिरकर शून्य या शून्य से भी कम हो जाती है। इस

प्रकार जनसंख्या की निरंतर वृद्धि होने पर, अदृश्य बेरोजगारी प्रकट होने लगती है। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत, कृषकों के लिए कोई प्रेरणा नहीं होती कि वे अधिक पूँजी लगाएं अथवा श्रम-बचत तकनीकें अपनाएं। इसके अतिरिक्त न तो प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ाने की कोई तकनीक उपलब्ध है और न ही श्रम की ओर से अपने आप उत्पादन बढ़ाने का कोई प्रोत्साहन होता है। परिणाम यह होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन की तकनीकें, श्रम-घण्टा उत्पादकता एवं सामाजार्थिक कल्याण एक निम्न स्तर पर रहते हैं।

दीर्घकाल में प्रौद्योगिकीय प्रगति अदृश्य बेरोजगारी को दूर करने में सहायक नहीं होती बल्कि उसे बढ़ाती है। प्रोफेसर हिगिन्स का मत है कि पिछली दो शताब्दियों में देहाती क्षेत्र में बहुत थोड़ी या नहीं के बराबर प्रौद्योगिकीय प्रगति हुई है, इससे अदृश्य बेराजगारों की संख्या बढ़ी है। ट्रेड यूनियन क्रियाओं अथवा सरकार की नीति के परिणामस्वरूप मजदूरी की कृत्रिम ऊंची दरों ने इस स्थिति को ओर भी अधिक गम्भीर बना दिया है। क्योंकि उत्पादकता की सापेक्षता में ऊंची औद्योगिक मजदूरी दरें उद्यमियों को इस बात के लिए प्रेरित करती हैं कि वे श्रम-बचत तकनीकें अपनाएं, जिसका परिणाम यह होता है कि अतिरेक श्रम को खपा सकने की औद्योगिक क्षेत्र की क्षमता और भी कम हो जाती है। इसलिए ये साधन अल्पविकसित देशों में औद्योगिकीय द्वैतवाद की प्रवृत्ति बनाए रखते हैं।

17.4.2 समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal)

प्रोफेसर हिग्गिन्स ने आधनिक एवं परम्परागत क्षेत्रों का ऐतिहासिक विकास- क्रम प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जिसके कारण पहले क्षेत्र में धीरे-धीरे बेराजगारी बढ़ती जाती है। प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद बूके के सामाजिक द्वैतवाद से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। यह यथार्थिक है क्योंकि यह इस बात पर विचार करता है कि द्वैतीय समाजों के ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी धीरे-धीरे कैसे बढ़ती जाती है।

17.4.3 तकनीकी द्वैतवाद के दोष (Defects of Technological Dualism)

तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त में अनेक गुण होने के उपरान्त भी यह कुछ दोषों से परिपूर्ण है इसके प्रमुख दोष निम्नवत हैं -

1. **औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकी गुणांक स्थिर नहीं होते हैं। (Technological Coefficients are not fixed in Industrial Sector) -** बिना किसी प्रमाण के यह मानना सही नहीं है कि औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकी गुणांक स्थिर पाए जाते हैं क्योंकि जहां ग्रामीण क्षेत्र में परिवर्ती तकनीकी गुणांकों से उत्पादन हुआ है, वहां यह सन्देहास्पद है कि औद्योगिकीय क्षेत्र में उत्पादन वास्तव में स्थिर गुणांकों से होता रहा है।
2. **श्रम खपाने वाली तकनीकों की अवहेलना (Neglect of the use of Labour Absorbing Techniques) -** हिग्गिन्स का यह कथन, कि औद्योगिक क्षेत्र में प्रयोग के लिए अत्यन्त पूँजी गहन प्रक्रियाएं आयात की जाती हैं, श्रम खपाने वाली अन्य तकनीकों के प्रयोग की पूर्णरूप से अवहेलना करता है। सब आयातित तकनीकें श्रम की बचत करने वाली नहीं होती। उदाहरणार्थ, जापान का कृषि विकास पूँजी-गहन तकनीकों के कारण नहीं हुआ है बल्कि यह अच्छे बीजों, सुधरी हुई खेती के ढंगों, उर्वरकों के अधिक प्रयोग आदि के कारण हुआ है।
3. **संस्थानिक साधनों की उपेक्षा (Neglect of Institutional Factors) -** हिग्गिन्स ने ऐसे अनेक संस्थानिक और मनोवैज्ञानिक तत्वों की उपेक्षा की है जो साधन अनुपातों को भी प्रभावित करते हैं।
4. **साधन कीमतें साधन सम्पन्नताओं पर निर्भर नहीं करती (Factor prices do not depend upon Factor Endowments) -** यह सिद्धान्त इस ओर संकेत करता है कि किस कारण साधन

सम्पन्नताओं एवं विभिन्न उत्पादन फलनों ने ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी को जन्म दिया है। यह साधन कीमतों के ढंग से महत्वपूर्ण रुप से सम्बद्ध है। परन्तु साधन कीमतें केवल साधन सम्पन्नताओं पर ही निर्भर नहीं करतीं।

5. अदृश्य बेरोजगारी की प्रकृति एवं आकार को स्पष्ट नहीं किया (Nature and Size of Disguised Unemployment not Clarified) - हिग्गिन्स ने ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी एवं औद्योगिक क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम-पूर्ति की प्रकृति को स्पष्ट नहीं किया है और न ही उन्होंने तकनीकी द्वैतवाद से उत्पन्न होने वाली अदृश्य बेरोजगारी की वास्तविक सीमा की चर्चा की है।

17.5 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. प्रोफेसर जे. एच. बूके (Professor J.H. Boeke) के अनुसार आर्थिक दृष्टिकोण से किसी समाज की .....विशिष्टताएं होती हैं। (दो **या** तीन)
2. तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त.....द्वारा दिया गया है। (प्रोफेसर बैंजामिन हिग्गिन्स **या** आर्थर लेविस)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथनों का चुनाव कीजिए-

1. बूके के अनुसार आर्थिक दृष्टिकोण से किसी समाज की तीन विशिष्टताएं होती हैं।
2. तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय यह है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकसित एवं परापरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों का प्रयोग होता है।
3. जे. एच. बुके अमेरिकन अर्थशास्त्री हैं।

17.6 सारांश (Summary)

आर्थिक विकास के सिद्धान्तों में द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं के विश्लेषण का महत्वपूर्ण स्थान है। द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख समस्या वर्तमान एवं सम्भावित अल्पविकसित श्रम शक्ति को उचित रोजगार की सुविधाएं प्रदान करने की है। दो परस्पर विरोधी प्रणालियों की आर्थिक अन्तः क्रियाओं की व्याख्या एवं विश्लेषण करने हेतु प्रो. जे. एच. बूके ने सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो केवल अल्पविकसित देशों पर लागू होता है। बूके का सिद्धान्त अधिकतर इण्डोनेशियाई अनुभव पर आधारित है।

किसी समाज में दो या अधिक प्रणालियां एक-साथ विद्यमान हो सकती है। तब वह द्वैत या बहु-संख्यक समाज होता है। बूके ने 'द्वैत समाज' शब्द का प्रयोग 'ऐसे समाजों' के लिए किया है, जो दो समसामयिक एवं पूर्णतः विकसित सामाजिक प्रणालियों का स्पष्ट विभाजन प्रकट करती है; जो (प्रणालियां) सजातीय समाजों के स्वाभाविक, ऐतिहासिक क्रम-विकास में संक्रमणकालीन रूपों द्वारा एक-दूसरी से अलग कर दी जाती हैं। प्रथम प्रणाली अर्थात उन्नत आयातित पश्चिमी प्रणाली पश्चिमी प्रभाव एवं देखरेख में होती है, जो उन्नत तकनीकों का प्रयोग करती है और जिसमें जीवन का औसत स्तर ऊंचा होता है। दसरी स्वदेशीय पर्व पूँजीवादी कृषि सम्बन्धी प्रणाली होती है जिसमें तकनीकी आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण के स्तर नीचे होते हैं। बूके ने इसे 'सामाजिक द्वैतवाद' कहा है। द्वैतीय अर्थव्यवस्था के पूर्वीय क्षेत्र की कुछ विशिष्टताएं है जो उसे पश्चिमी समाज से पृथक करती हैं।

बुके के सामाजिक द्वैतवाद के विकल्प के रूप में बैन्जामिन हिगिन्स ने तकनीकी अथवा प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय यह है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकसित एवं पंरापरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों का प्रयोग होता है। इस प्रकार के द्वैतवाद ने औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक या तकनीकी बेरोजगारी एवं देहाती क्षेत्र में अल्प-रोजगार की समस्या को बढ़ाया है। हिगिन्स का तकनीकी द्वैतवाद का यह सिद्धान्त आर. एस. रेकॉस द्वारा विवेचित

साधन अनुपातों की समस्या को शामिल करता है एवं उन सीमित उत्पादकीय रोजगार सुविधाओं से सम्बन्ध रखता है जो बाजार की अपूर्णताओं, विभिन्न साधन सम्पन्नताओं एवं उत्पादन फलनों के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के दो क्षेत्रों में पायी जाती है। प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद बूके के सामाजिक द्वैतवाद से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। यह यथार्थिक है क्योंकि यह इस बात पर विचार करता है कि द्वैतीय समाजों के ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी धीरे-धीरे कैसे बढ़ती जाती है। तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त में अनेक गुण होने के उपरान्त भी यह अनेक दोषों से परिपूर्ण है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष के रुप में यह कहा जा सकता है कि बूके के सामाजिक द्वैतवाद एवं हिगिन्स के तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त का आर्थिक विकास के सिद्धान्तों के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि दोनों के अपने-अपने गुण एवं दोष हैं एवंपि द्वैतवाद बूके के सामाजिक द्वैतवाद से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। तकनीकी द्वैतवाद का विचार सामाजिक द्वैतवाद की तुलना में कुछ अधिक आधुनिक प्रतीत होता है। इसमें अदृश्य या छिपी बेरोजगारी की समस्या को समझाने का प्रयास किया गया है।

17.7 शब्दावली (Glossary)

- **द्वैत अर्थव्यवस्था (Dual Economy) :** दोहरी या द्वैत अर्थव्यवस्था वह है जिसमें दो क्षेत्र (Sectors) होते हैं : प्रथम, कृषि क्षेत्र अथवा जीवन- निर्वाह क्षेत्र अथवा पोषण क्षेत्र एवं द्वितीय, उद्योग क्षेत्र अथवा पूँजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र । ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ कुछ क्षेत्रों में पूँजी गहन तकनीक का प्रयोग होता है वहीं साथ ही उन्हीं क्षेत्रों या अन्य क्षेत्रों में परम्परागत व श्रम गहन तकनीक का भी प्रयोग हो रहा होता है।
- **पूँजीवादी क्षेत्र (Capitalist Sector) :** पूँजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग करता है एवं पूँजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है।
- **जीवन निर्वाह क्षेत्र (Subsistence Sector) :** यह अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग नहीं करता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में पूँजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है।
- **काली मुद्रा (Black Money) :** ऐसा धन जिसकी उत्पत्ति अवैधानिक गतिविधियों के कारण हुई हो। तस्करी, करों की चोरी, काला-बाजारी आदि ऐसी गतिविधियां हैं जिनको गैर कानूनी माना जाता है। इनसे प्राप्त आय पर कोई भी कर नहीं चुकाया जाता। काले धन से की गई खरीद व बिकी से प्राप्त मुनाफे पर कोई आय कर नहीं चुकाया जाता, इस कारण इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।
- **पूँजी निर्माण (Capital Formation) :** कुल आय में से पृथक किया गया वह धन जिसे उद्योगों, कृषि, सेवा आदि क्षेत्रों में उत्पादन बढाने हेतु लगाया जाता है।
- **श्रम की सीमांत उत्पादकता (Marginal Productivity of Labour) :** श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने पर कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि । प्रायः श्रम की सीमांत उत्पादकता श्रम की अंतिम इकाई से प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा होती है।
- **बन्द अर्थव्यवस्था (Closed Economy) :** एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में शामिल नहीं होती है।
- **अदृश्य बेरोजगारी (Disguised Unemployment) :** यह बेरोजगारी प्रकट रूप में दिखाई नहीं देती है। इस दशा में श्रमिक काम में लगा हुआ प्रतीत होता है किन्तु उत्पादन में उसका योगदान नगण्य या शून्य होता है अर्थात श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है।

- **सीमान्त भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity) :** जब सीमान्त उत्पादकता को उत्पादन (वस्तुओं) की भौतिक मात्रा में होने वाली वृद्धि के रूप में व्यक्त किया जाता है तो उसे सीमान्त भौतिक उत्पादकता कहते हैं अर्थात यह किसी साधन की अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि को व्यक्त करती है।
- **पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scales) :** जब उत्पादन के किसी एक साधन या अनेक साधनों को जिस अनुपात में बढ़ाया या घटाया जाता है यदि उत्पादन में भी उसी अनुपात में वृद्धि या कमी हो तो उसे पैमाने के स्थिर प्रतिफल की स्थिति कहते हैं।
- **बाह्य घटक (Exogenous Factor) :** एक ऐसा घटक जो मॉडल के कार्य को प्रभावित तो करता है किन्तु मॉडल में दिये गये सम्बन्धों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. तीन 2. प्रोफेसर बैंजामिन हिग्गिन्स (Professor Benjamin Higgins)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथनों का चुनाव कीजिए-

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य

17.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- झिंगन, एम. एल. : ***"विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन",*** वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 2003
- सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमार : "***विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन***", राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2008
- सिन्हा, वी. सी. : "***आर्थिक संवृद्धि और विकास***", मयूर पेपर बैक्स, नौएडा, 2007
- Agarwal, R. C. : "***Economics of Development and Planning***", Lakshmi Narayan Agarwal, Agra 2007
- Taneja,M.L. & Myer R.M.: "***Economics of Development and Planning***" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010

17.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- Bocke , J.H. : "***Economics and Economic Policy of Dual Societies***" 1953, "Three Forms of Disintegration in Dual Societies" , Indonesia, April, 1954 and "Western Influence on the growth of Eastern Population", Economics Internazionale , May,1954.
- Higgins Benjamin : "***The Dualistic Theory of Underdeveloped Areas***", Economic Development and Cultural Change , January, 1956.
- Higgins Benjamin : "***Economic Development***,Principles, Practice and Policies"

- Eskaus R.S. : "*The Factor Proportions Problems in Under developed Areas*" , in Aggrawal and Singh
- Meier, G.M.: "*Leading Issues in Economic Development*" ,Oxford University Press, Delhi ,1989

17.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. तकनीकी द्वैतवाद क्या है? यह सामाजिक द्वैतवाद से किस प्रकार भिन्न है? व्याख्या कीजिए।
2. सामाजिक द्वैतवाद क्या है? इसकी प्रमुख विशेषताओं की व्याख्या कीजिए एवं इसका आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
3. हिगिन्स के तकनीकी द्वैतवाद सिद्धांत की विवेचना कीजिए। इसकी क्या सीमाएं हैं?

इकाई 18 - आर्थर लेविस का असीमित श्रमपूर्ति विश्लेषण
(Arthur Lewis Theory of Unlimited Supply of Labour)

18.1 प्रस्तावना (Introduction)

18.2 उद्देश्य (Objectives)

18.3 आर्थर लेविस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त (Arthur Lewis Theory of Unlimited Supply of Labour)

18.3.1 आर्थर लेविस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की अवधारणा (Concept of Arthur Lewis Theory of Unlimited Supply of Labour)

18.3.2 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त के तत्व (Elements of Theory of Unlimited Supply of Labour)

18.3.3 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की श्रेष्ठता (Superiority of Theory of Unlimited Supply of Labour)

18.3.4 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की आलोचनाएं (Criticism of Theory of Unlimited Supply of Labour)

18.4 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)

18.5 सारांश (Summary)

18.6 शब्दावली (Glossary)

18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

18.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

18.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

18.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

18.1 प्रस्तावना (Introduction)

अल्पविकसित देशों की विकास प्रक्रिया की व्याख्या करने हेतु विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित माडलों में आर्थर लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त का विशेष स्थान है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की भाँति लेविस ने भी यह माना है कि अल्पविकसित देशों में जीवन निर्वाह के बराबर मजदूरी पर श्रम की असीमित पूर्ति उपलब्ध होती है। अतः श्रम को निर्वाह क्षेत्र से हटाकर पूँजीवादी क्षेत्र में लगाकर आर्थिक विकास को सम्भव किया जा सकता है।

18.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम-

- ✓ अल्पविकसित देशों के विकास में लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त को समझेंगे।
- ✓ लेविस के विकास मॉडल के तत्वों को जानेंगे।
- ✓ लेविस के मॉडल और प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के मॉडल के अंतर को समझेंगे।
- ✓ लेविस के विकास मॉडल की आलोचनाओ को जानेंगे।

18.3 आर्थर लेविस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त (Arthur Lewis Theory of Unlimited Supply of Labour)

18.3.1 आर्थर लेविस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की अवधारणा (Concept of Arthur Lewis Theory of Unlimited Supply of Labour)

सन् 1954 में प्रकाशित अपने प्रसिद्ध लेख ***"श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास (Economic Development with Unlimited Supplies of Labour)"*** **प्रो. डब्लू आर्थर लेविस (W. Arthur Lewis)** ने प्रतिष्ठित आर्थिक विकास के मॉडल को भारत जैसे श्रम बाहुल्य वाले देशों की विकास प्रक्रिया पर लागू किया और रिकार्डो के दो-क्षेत्रीय विकास मॉडल को वर्तमान विकासशील देशों की स्थिति में सार्थक बताया। लेविस मॉडल को **दो-क्षेत्रीय या द्वैत अर्थव्यवस्था मॉडल (Dualistic Economy Model)** भी कहा जाता है क्योंकि उसका मॉडल द्वैत-अर्थव्यवस्था-(अ) जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थात कृषि एवं (ब) पूँजीवादी क्षेत्र अर्थात उद्योग पर आधारित है।

1. **दोहरी (द्वैत) अर्थव्यवस्था (Dual Economy) -** लेविस अपने मॉडल की व्याख्या एक 'दोहरी-अर्थव्यवस्था' (द्वैत अर्थव्यवस्था) (Dual Economy) की मान्यता से आरम्भ करते हैं। इस दोहरी अर्थव्यवस्था में दो क्षेत्र (Sectors) हैं: (1) कृषि क्षेत्र अथवा जीवन निर्वाह क्षेत्र अथवा पोषण क्षेत्र, एवं (2) द्योग क्षेत्र अथवा पूँजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र।

   इनमें पूँजीवादी क्षेत्र वह है जिसमें **'पुनरूत्पादनशील पूँजी (Reproducible Capital)'** का प्रयोग किया जाता है। पूँजी के प्रयोग का नियंत्रण पूँजीपति करता है। यह श्रम की सेवाओं को किराये पर लेता है। लेविस के अनुसार पूँजीवादी क्षेत्र के अन्तर्गत **'प्लांटेशन एवं खनन'** भी आ जाते हैं। यहां पूँजीपति, श्रमिकों को अपने लाभ के लिए किराये पर लेता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र (अथवा पोषण क्षेत्र अथवा कृषि क्षेत्र) वह क्षेत्र है जिसमें पुनरुत्पादनशील पूँजी का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसे **घरेलू परम्परागत क्षेत्र (Indigenous Traditional Sector)** भी कहा जा सकता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में **'प्रति व्यक्ति उत्पादन'** (GNP Per Capita) अथवा प्रतिव्यक्ति आय (Per Capita

Income) पूँजीवादी क्षेत्र से काफी कम होती है।

2. **असीमित श्रम पूर्ति (Unlimited Supply of Labour) -** लेविस विकास मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि जीवन निर्वाह के क्षेत्र में **'श्रम की असीमित पूर्ति'** है। इस असीमित श्रम अथवा श्रमाधिक्य (Surplus Labour) को जीवन निर्वाह के बराबर मजदूरी पर किसी दूसरी जगह रोजगार में लिया जा सकता है। यहां श्रमिकों की असीमित पूर्ति का अर्थ है जीवन निर्वाह (अथवा कृषि) क्षेत्र में श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता जीवन निर्वाह मजदूरी से काफी नीचे है जिसके परिणामस्वरुप कृषि क्षेत्र से श्रमिकों को निकाल लेने पर श्रम के औसत उत्पादन में कमी नहीं आयेगी। लेविस की असीमित श्रम पूर्ति की आवश्यकता को रेखाचित्र 18.1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। रेखाचित्र में भूमि की स्थिर मात्रा पर श्रम की उत्तरोत्तर अधिक इकाइयां लगायी गयी है।

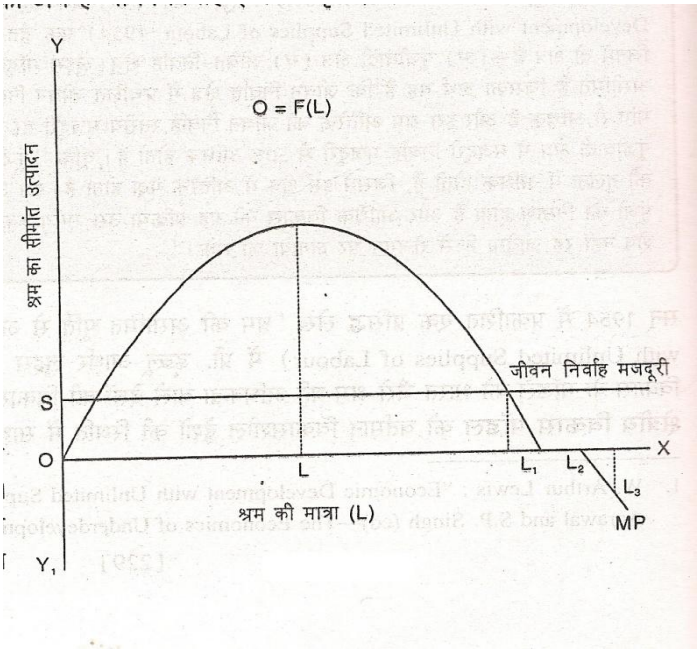

चित्र संख्या -18.1

OL श्रम के बाद श्रम की सीमांत उत्पादन में गिरावट शुरू हो जाती है और जब इसकी मात्रा OL_1 होती है तो इसका मूल्य जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी के बराबर हो जाता है। L_1 L_2 तक श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य है और L_2 के बाद ऋणात्मक हो जाती है। इस प्रकार OL_1 के बाद जितने भी श्रमिक कृषि क्षेत्र में लगेंगे वे सभी अतिरिक्त श्रमिक होंगे। प्रो. लेविस के अनुसार कृषि क्षेत्र के अतिरिक्त श्रमिकों (रेखाचित्र 18.1 में OL_1 के बाद श्रमिकों) की सेवाओं को उद्योगपति जीवन निर्वाह मजदूरी के बराबर अथवा इससे कुछ अधिक देकर किराये पर प्राप्त कर सकता है। उद्योगपति (अथवा पूँजीपति) दी हुई मजदूरी पर जितने श्रमिक चाहे उतने क्रय कर सकता है। इस तरह, औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम की पूर्ति की लोच पूर्णतया लोचदार (Perfectly Elastic) होगी।

18.3.2 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त के तत्व (Elements of Theory of Unlimited Supply of Labour)

लेविस मॉडल का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

1. **केन्द्रीय समस्याः श्रमशक्ति को एकत्र करना (Central Problem: Collection of Labour Force) -** लेविस ने अपना मॉडल इस मान्यता से प्रारम्भ किया है कि अल्प-विकसित देशों में प्रचलित मजदूरी की दरों पर श्रम की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है। श्रम की यह असीमित पूर्ति अर्थव्यवस्था के निर्वाह क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक मात्रा में लगे श्रमिकों, कृषि पर बढ़ती हुई निर्भरता एवं अदृश्य बेरोजगारी के रूप में देखी जा सकती है।

   श्रम-शक्ति को एकत्र करने के लिए निम्न उपाय किये जाते हैं:

   (अ) सर्वप्रथम अर्द्धविकसित देशों में काम न करने वाली महिलाओं को श्रमिकों की पूर्ति में सम्मिलित करना होगा। बहुत-सी महिलाएं गृह-कार्यों में लगी रहती हैं, परंतु उनकी क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है।

   (ब) हमें उन व्यक्तियों को भी रोजगार में लगाना होगा, जो अदृश्य रूप से बेरोजगार हैं या अर्द्ध-बेरोजगारी से पीड़ित हैं एवं जो छोटे व्यापारियों, घरेलू और वाणिज्यिक सेवकों के रूप में कार्य कर रहे हैं।

   (स) इसी श्रम-शक्ति में देश की बढ़ती हुई जनसंख्या से फलित अतिरिक्त, श्रम शक्ति को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

   परंतु उपर्युक्त सभी व्यक्ति अकुशल श्रम की श्रेणी में आते हैं, जबकि आर्थिक विकास और पूँजीवादी क्षेत्र के लिए कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इस संबंध में लेविस का कथन है कि कुशल श्रमिकों का अभाव एक अस्थायी गतिरोध ही होता है, जिसे अकुशल श्रमिकों की शिक्षा और प्रशिक्षण आदि की सहायता से दूर किया जा सकता है।

2. **समस्या का समाधान :श्रमशक्ति का उचित उपयोग (Solution of Problem : Proper Utilization of Labour Force) -** अतः अर्द्धविकसित देशों की प्रमुख समस्या इस अतिरिक्त श्रम शक्ति का उचित ढंग से उपयोग करने की है। प्रो. लेविस ने एक अर्थव्यवस्था को दो भागों में बांटा है-पूँजीवादी क्षेत्र और जीवन निर्वाह क्षेत्र। पूँजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग करता है एवं पूँजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है। इसके दूसरी ओर जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग नहीं करता है जीवन निर्वाह क्षेत्र में पूँजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है।

   अतः लेविस के मतानुसार आवश्यकता इस बात की है कि जीवन-निर्वाह-क्षेत्र से श्रमिकों को हटाकर और उन्हें पूँजीवादी क्षेत्र में लगाकर नए उद्योगों की स्थापना की जाये या वर्तमान उद्योगों का विस्तार किया जाये ताकि आर्थिक विकास की गति तीव्र हो सके। इस प्रकार निर्वाह-क्षेत्र से बाहर इस अतिरिक्त श्रम-शक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था करना, राष्ट्रीय आय के बढ़ाने का अचूक साधन है।

3. **पूँजीवादी अतिरेक (Capitalist Surplus) –** (पूँजीवादी-मजदूरी एवं जीवन निर्वाह मजदूरी के अन्तर के रूप में) अब प्रश्न यह उठता है कि **'जीवन निर्वाह मजदूरी दर'** (जिस पर **'पूँजीवादी-क्षेत्र'** में अतिरिक्त श्रम उपलब्ध होता है) का निर्धारण किस प्रकार होता है? संक्षेप में यह कहा जा सकता हैं कि यह जीवन-निर्वाह के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी का स्तर निर्वाह क्षेत्र में प्राप्त होने वाली आय पर निर्भर करता है। सामान्यतः मजदूरी का यह स्तर निर्वाह क्षेत्र में श्रमिक की औसत उपज से कम नहीं हो सकता लेकिन कुछ परिस्थितियों में (जब किसान को लगान देना हो या खाने पर अधिक व्यय होता हो या उनकी दृष्टि में कर के प्रति अधिक मोह हो) मजदूरी दर श्रम की औसत उत्पादन से भी अधिक हो सकती है। **प्रो. लेविस** के अनुसार **'जीवन निर्वाह'** क्षेत्र में श्रमिकों को प्राप्त होने वाली आय पूँजीवादी क्षेत्र में मजदरी की न्यूनतम सीमा को निर्धारित करती है, किन्तु व्यवहार में मजदूरियों का इससे अधिक होना आवश्यक है और पूँजीवादी मजदूरी एवं जीवन निर्वाह मजदूरी में सामान्यतः 30 प्रतिशत या उससे अधिक का

अन्तर होता है।

4. पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी की दर के ऊंचे होने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं:
    1. निर्वाह क्षेत्र या पिछड़े प्राथमिक क्षेत्र के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होने के परिणामस्वरूप वास्तविक आय में वृद्धि होने के कारण श्रमिकों के द्वारा पूँजीवादी क्षेत्र में काम करने के लिए अधिक मजदूरी का मांगा जाना।
    2. निर्वाह क्षेत्र से श्रमिकों को हस्तांतरित करने पर यदि उत्पादन की मात्रा में कमी नहीं होती है तो उस क्षेत्र में बचे कार्यरत श्रमिकों की औसत वास्तविक आय में वृद्धि के कारण पूँजीवादी क्षेत्र में हस्तांतरित होने वाले श्रमिक वर्ग द्वारा भी अधिक मजदूरी पर जोर दिया जाना।
    3. जीवन-स्तर की बढ़ती हुई लागतों और मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण सेवायोजकों द्वारा वास्तविक मजदूरी में वृद्धि कर देना ।
    4. राज्य द्वारा श्रमसंघों को प्रोत्साहन देना, जिसके परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग की सौदा करने की शक्ति में वृद्धि हो जाना।

    इस प्रकार पूँजीवादी मजदूरी की तुलना में पूँजीवादी क्षेत्र की ऊंची सीमांत उत्पादकता के परिणाम स्वरूप है पूँजीवादी अतिरेक उत्पन्न होता है।

5. **पूँजी निर्माण पूँजीवादी अतिरेक पर निर्भर करता है (Capital Formation depends upon Capitalists Surplus) -** पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरेक श्रम की सीमांत उत्पादकता उसकी जीवन निर्वाह मजदूरी एवं पूँजीवादी मजदूरी दोनों से अधिक होती है जिसके परिणामस्वरूप पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त आय या अतिरेक उदय होती है। इस अतिरेक को नयी परिसम्पत्तियों में निवेश करने पर पूँजी का निर्माण होता है जिससे अधिक लोगों को रोजगार पर लगाया जाता है। इस क्षेत्र में जैसे-जैसे रोजगार बढ़ता जाता है वैसे-वैसे पूँजीवादी अतिरेक भी बढ़ता जाता है और उसके साथ ही साथ पूँजी निर्माण अर्थात आर्थिक विकास का चक्र शुरू हो जाता है। यह प्रक्रिया उस समय तक चलती रहती है जब तक कि कुल अतिरेक श्रम को रोजगार प्राप्त नहीं हो जाता। पूँजी श्रम अनुपात नहीं बढ़ जाता और श्रम की पूर्ति लोचरहित नहीं बन जाती। इस प्रकार लेविस के अनुसार आर्थिक विकास का मूल्य पूँजी निर्माण के लिए आवश्यक पूँजीवादी अतिरेक के उत्पन्न होने पर उसके पुनर्निवेश में निहित है। इस प्रक्रिया को रेखाचित्र द्वारा भी प्रदर्शित किया गया है।

    चित्र 18.2 में, OX अक्ष पर श्रमिकों की संख्या एवं OY अक्ष पर मजदूरी की दर व सीमांत उत्पादकता को दर्शाया गया है।

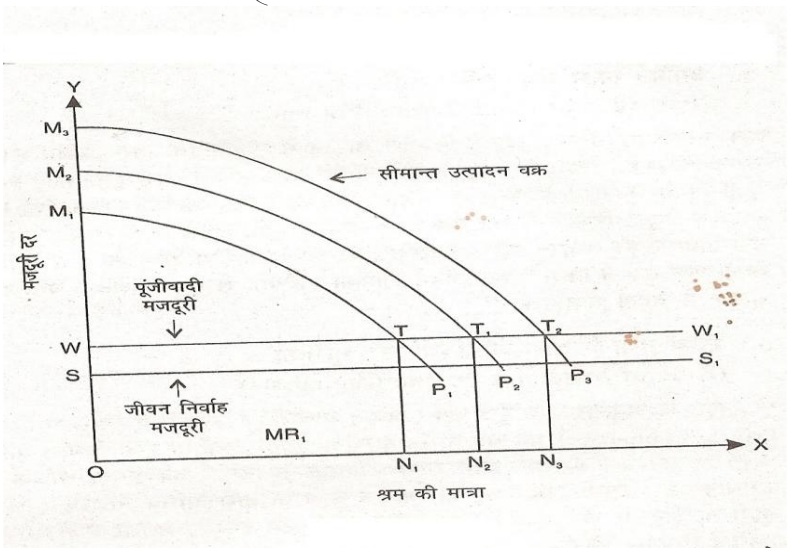

चित्र संख्या- 18.2

कृषि क्षेत्र में व्यापक बेरोजगारी व अदृश्य बेरोजगारी पाये जाने के कारण पूँजीवादी या औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम की पूर्ति पूर्णतया लोचदार है।अतः औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम पूर्ति वक्र WW_1 है जो Y अक्ष के समानांतर एक सीधी रेखा के रूप में दर्शाया गया है। मजदूरी की प्रचलित दर (पूँजीवादी मजदूरी) OW कृषि में प्रचलित जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी OS से थोड़ी अधिक है।

उद्योगों में पूँजीपति लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य से कार्य करते हैं और इस प्रकार वे दी हुई मजदूरी OW को श्रम की सीमांत उत्पादकता के बराबर करेंगे। जब मजदूरी की दर OW है तो सीमांत उत्पादकता वक्र M_1P_1 उसे T बिन्दु पर काटती है जो यह प्रदर्शित करती है कि इस बिन्दु पर मजदूरों की सीमांत उत्पादकता मजदूरी दर के बराबर है। अतः जब मजदूरी की दर OW है तो पूँजीपति ON_1 श्रमिकों की मांग करेंगे और रोजगार उपलब्ध करायेंगे। श्रमिकों की ON_1 मात्रा से कुल औद्योगिक उत्पादन OM_1TN_1 के बराबर है एवं मजदूरी का भुगतान $OWTN_1$ के बराबर होगा। अतः WM_1T क्षेत्र के बराबर पूँजीपतियों को लाभ प्राप्त होगा। इन लाभों के विनियोग से अधिक पूँजी निर्माण होगा। अधिक पूँजी के उपलब्ध होने पर श्रम का सीमांत उत्पादन (MP) वक्र दायीं ओर विवर्तित होकर M_2P_2 हो जाएगा परन्तु मजदूरी की दर पूर्ववत OW रहने पर श्रमिकों की प्रयुक्त मात्रा बढ़कर ON_2 हो जायेगी और पूँजीपतियों का लाभ बढ़कर WM_2T_1 के बराबर हो जाएगा। इन लाभों को पूँजीपति अधिक पूँजी निर्माण के लिए प्रयोग करेंगे। इस प्रकार आगे भी लाभों के विनियोग से अधिक पूँजी निर्माण होगा। डच वक्र दायीं ओर विवर्तित होता जाएगा जिससे रोजगार व उत्पादन में वृद्धि होती जायेगी। यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक कि श्रम-अतिरेक (Labour Suplus) समाप्त नहीं हो जाता। श्रम-अतिरेक की समाप्ति के पश्चात मजदूरी दर बढ़ने लगेगी जिससे उद्योगों में अर्जित लाभ घटने लगेंगे और लाभ की दर कम होती जायेगी। फलतः विकास की गति घट जायेगी परन्तु लेविस के अनुसार तब तक विकासशील देशों में खुली बेरोजगारी एवं अदृश्य बेरोजगारी समाप्त हो चुकी होगी।

6. **अर्जित लाभ एवं पूँजी निर्माण(Earned Profit and capital Formation) -** इस प्रकार प्रो. लेविस ने अपने विकास माडल में पूँजीपतियों द्वारा अर्जित लाभ में से ही पूँजी निर्माण की सम्भावना को स्पष्ट किया है। लेविस के अनुसार पूँजीपतियों द्वारा अर्जित लाभ (Earmed Profit) से पूँजी निर्माण किया जाएगा और पूँजी निर्माण आर्थिक विकास को बढ़ावा देगा। इस तरह अल्पविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति विकास की बाधा न हो कर पूँजी निर्माण में सहायक सिद्ध होती है। **प्रो. लेविस** के अनुसार, ***"आर्थिक विकास के सिद्धान्त में केन्द्रीय समस्या उस प्रक्रिया को समझने की है जिसके द्वारा अपनी राष्ट्रीय आय का 4 प्रतिशत या 5 प्रतिशत बचत एवं विनियोग करने वाला एक समाज किस प्रकार अपने आपको 12 प्रतिशत से 15 प्रतिशत अथवा इससे भी अधिक ऐच्छिक बचत करने वाले समाज में बदल सकता है।"***

7. **राज्य एवं निजी पूँजीपतियों की भूमिका(Role of State and Private Capitalists)** - प्रो. लेविस के अनुसार राज्य पूँजीपतियों (अर्थात सार्वजनिक उपक्रम एवं सरकार) और देशीय निजी पूँजीपतियों (Indigenous Private Capitalists) को बढ़ावा दिया जाना चाहिए क्योंकि पूँजी निर्माण का कार्य केवल इनके द्वारा अर्जित लाभों में से ही हो सकता है। यद्यपि इनमें राज्य पूँजीपति के निर्माण की क्षमता अधिक होती है क्योंकि वह समाज से अतिरिक्त कराधान और/अथवा अतिरिक्त सार्वजनिक ऋण के द्वारा अधिक राजस्व (Revenue) जुटा पाने में सफल रहता है। लेविस के अनुसार जब पूँजी के उत्पादक सम्बन्धी उपयोग के अवसर तेजी से बढ़ते हैं तो पूँजी अतिरेक, पूँजीनिर्माण व आर्थिक विकास भी क्रमशः तेजी से बढ़ते हैं। प्रो. लेविस के अनुसार अर्द्धविकसित देशों में पूँजी की मात्रा कम होती है

क्योंकि

1. अर्थव्यवस्था की बचतें कम होती हैं क्योंकि पूँजीवादी लाभ का राष्ट्रीय आय में अनुपात कम होता है। उदाहरण के लिए वेतन व मजदूरी प्राप्त करने वाला वर्ग मुश्किल से राष्ट्रीय आय का 3 प्रतिशत या 5 प्रतिशत भाग ही बचा पाता है।
2. अर्थव्यवस्था की बचतें कम होती हैं क्योंकि बड़े व्यापारी, राजघराने, भूपति आदि उत्पादन निवेश करने के बजाय अनावश्यक उपभोग में अधिक रूचि रखते हैं।
3. अर्द्धविकसित देश में 'उत्पादन निवेश' के कम होने में निकासी (Withdrawals) बहुत महत्वपूर्ण है। व्यवहार में इसे काली मुद्रा (Black Money) समानांतर अर्थव्यवस्था (Parallel Economy) आर्थिक भ्रष्टाचार (Economic Corruption) आदि नामों से पुकारा जाता है। अर्थशास्त्री इसे पूँजी रिसाव (Capital Leakage) कहते हैं। यह पूँजी उत्पादन कार्य में न लग कर विलासिता व शान-ओ-शौकत जैसे उपभोग कार्य में लगी रहती है।

अतः अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक है कि (i) जो अधिक बचत कर सकते हैं उनके द्वारा अर्थव्यवस्था में **'बचत क्षमता'** को बढ़ाया जाये, एवं (ii) सम्पूर्ण बचत को उत्पादन कार्य में विनियोग किया जाये। बचत का कोई भी अंश पूँजी रिसाव के रूप में उपभोग में न लगने दिया जाये।

यह उल्लेखनीय है कि राज्य पूँजीपति की पूँजी संचय की क्षमता निजी पूँजीपति की अपेक्षा अधिक होती है। कारण यह है कि राज्य पूँजीवादी क्षेत्र के लाभ का उपयोग करने के अतिरिक्त निर्वाह क्षेत्र में से कुछ न कुछ अतिरेक कराधान के रूप में प्राप्त करने में सफल रहता है। इस प्रकार लेविस का मत है कि जब पूँजी के उत्पादकीय उपयोग के अवसर तीव्र गति से बढ़ते हैं तो अतिरेक भी तेजी से बढ़ता है और उसके साथ-साथ पूँजीपति वर्ग का भी विकास होने लगता है।

8. **बैंक साख द्वारा पूँजी निर्माण (Capital Formation through bank Credit) -** लेविस का विचार है कि यद्यपि अर्द्धविकसित देशों में पूँजीवादी क्षेत्र में उपर्युक्त प्रक्रिया द्वारा पूँजी-निर्माण हो सकता है, किन्तु साख-सृजन (मुद्रास्फीति) द्वारा भी पूँजी निर्माण में योगदान लिया जा सकता है और उत्पादन एवं रोजगार का स्तर बढ़ाया जा सकता है। लेविस का मत है कि यद्यपि इससे मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियों को जन्म मिल सकता है, परन्तु दीर्घकाल में इससे कोई हानि नहीं होगी, क्योंकि पूँजी निर्माण के लिए मुद्रा-प्रसार स्वयं विनाशक या समाप्त हो जाने वाला (Self Liquidating) होता है। इसके उन्होंने निम्न कारण बताये: (अ) प्रारंभिक अवस्था में आय तो बढ़ेगी किंतु उपभोग वस्तुओं का उत्पादन प्रारंभ होने से मूल्य गिरने प्रारंभ हो जायेंगे, (ब) राज्य की करारोपण से आय बढ़ जायेगी और सरकार को बाद में हीनार्थ प्रबंधन नहीं करना पड़ेगा।
9. **विकास प्रक्रिया का अंत (End of Growth Process) -** इस प्रकार, ज्यों-ज्यों पूँजी निर्माण होता जाता है, उत्पादन और रोजगार में वृद्धि होती जाती है, जिसके परिणामस्वरूप लाभ की मात्रा में वृद्धि होती है जिन्हें विनियोजित करके पुनः पूँजी निर्माणको बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार आर्थिक विकास का क्रम भी चलता रहता है। परंतु विकास की यह प्रक्रिया अनिश्चित काल तक नहीं चल सकती है। लेविस के अनुसार विकास की यह प्रक्रिया निम्न परिस्थितियों में रूक जाती है:
   1. जब पूँजी निर्माण के परिणामस्वरूप अतिरिक्त श्रम नहीं बचते।
   2. जबकि पूँजीवादी क्षेत्र का विस्तार इतनी तीव्रगति से हो जिससे **'पिछड़े प्राथमिक क्षेत्र या निर्वाह क्षेत्र'** में जनसंख्या बहुत कम रह जाने से इसकी सीमांत उत्पादकता बढ़ जाये जिसके फलस्वरूप निर्वाह क्षेत्र और पूँजीवादी क्षेत्र दोनों में मजदूरी का स्तर ऊंचा हो जाये।
   3. जबकि निर्वाह क्षेत्र में उत्पादन की नयी प्रविधि अपनायी जाये जिससे पूँजी क्षेत्र में भी वास्तविक

मजदूरी बढ़ जाये।

4. जबकि पूँजीवादी क्षेत्र का निर्वाह क्षेत्र की तुलना में तेजी से विस्तार होने पर खाद्यान्नों आदि की कीमतें बढ़ जाने के कारण व्यापार की शर्ते पूँजीवादी क्षेत्र में प्रतिकूल हो जायें और उन्हें श्रमिकों को अधिक मजदूरी देनी पड़े।
5. निर्वाह क्षेत्र में श्रम की औसत उत्पादकता इतनी बढ़ जाय (क्योंकि इस क्षेत्र की उपज के हिस्सेदार कम हो चुके हैं) कि पूँजीवादी क्षेत्र में भी मजदूरी बढ़ानी पड़ जाय और फलस्वरूप लाभकी मात्रा कम हो जाये।
6. इस क्षेत्र में श्रमिक पूँजीवादी जीवन व्यतीत करने का ढंग अपना ले, तो इन सभी परिस्थितियों में पूँजी अतिरेक कम हो जाएगा जिसके फलस्वरूप पूँजी निर्माण व आर्थिक विकास का कार्य रूक जाएगा।

उपर्युक्त परिस्थितियों में पूँजीवादी क्षेत्र का आधिक्य, जो अर्द्धविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति के कारण उत्पन्न होता है, समाप्त हो जाता है और पूँजी निर्माण की दर कम हो जाती है। लेविस के शब्दों में, ***"विकास की यह प्रक्रिया उस समय समाप्त हो जायेगी और यह नीति उस समय प्रभावपूर्ण नहीं होगी जबकि पूँजी निर्माण की वृद्धि, मात्रा व दर, जनसंख्या की वृद्धि दर के बराबर हो जायेगी। अगर मजदूरी बढ़ने दी गयी तो यह नीति और पहले ही प्रभावहीन हो जायेगी।"***

प्रो. लेविस का मत है कि यदि उपर्युक्त परिस्थितियों के कारण पूँजी निर्माण की दर कम हो और विकास की प्रक्रिया में गतिरोध उत्पन्न हो जाये तो निम्न दो तरीकों से पूँजी निर्माण की प्रक्रिया को बनाये रखा जा सकता है:

क. बड़े पैमाने पर श्रमिकों का आवास (Mass Immigration of Labour) किया जाय। परन्तु ऐसी स्थिति में सभी प्रकार के श्रमिकों की मजदूरी का स्तर नीचे गिरता है। अतः श्रम संघों द्वारा इसका कड़ा विरोध किया जाता है।

ख. दूसरा उपाय यह है कि ऐसे देशों को पूँजी का निर्यात किया जाये जहां-निर्वाह मजदूरी के स्तर पर पर्याप्त मात्रा में श्रम शक्ति उपलब्ध हो। इससे पूँजी-निर्यात करने वाले देश में श्रम की मांग कम हो जाती है और मजदूरी की दर गिरने लगती है।

18.3.3 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धांत की श्रेष्ठता (Superiority ofTheory of Unlimited Supply of Labour)

लेविस के अनुसार उनका मॉडल प्रतिष्ठित मॉडल से श्रेष्ठ है। इस सम्बन्ध में वे निम्नलिखित तर्क देते है:

1. उनका मॉडल प्रयोग करने पर उपभोग को कम करने की आवश्यकता नहीं पड़ती (जैसा कि नवप्रतिष्ठित मॉडलों में किया गया है) और न ही उपभोग को बढ़ाने की आवश्यकता है (जैसा कि कीन्स का मत है) इस प्रकार लेविस बलात बचतों के स्थान पर बलात पुनः वितरण के विकल्प को स्वीकार करते हैं।
2. लेविस के मॉडल में मुद्रास्फीति स्वयं समाप्त होने वाली है क्योंकि वह हीनार्थ प्रबन्धन रहित और उत्पादन प्रेरित है।
3. लेविस के मॉडल में लाभ-वित्त-व्यवस्था और साख-वित्त-व्यवस्था दोनों ही विकास प्रेरक हैं।

18.3.4 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धांत की आलोचानाएं (Criticism of Theory of Unlimited Supply of Labour)

प्रो. लेविस के विकास मॉडल की निम्न आधारों पर आलोचनाएं की जाती हैं:

1. पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम का स्थानान्तरण सरल नहीं है (Transfer of Surplus Labour

to Capitalist Area is not easy): लेविस के मॉडल को कार्यान्वित करने में जो महत्वपूर्ण कठिनाई आती है वह यह है कि निर्वाह क्षेत्र से पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम-शक्ति का स्थानान्तरण सरल नहीं है, क्योंकि अर्द्धविकसित देशों में जाति व धर्म बन्धनों के कारण एक ओर तो व्यावसायिक गतिशीलता कम रहती है और दूसरी ओर भाषा, आवास की समस्या, उत्साह की कमी, स्थान व वातावरण से प्रेम आदि के कारण भौगोलिक गतिशीलता भी कम रहती है।

2. **जीवन निर्वाह के बराबर मजदूरी सम्भव नहीं है (Wage equal to subsistence level is not possible):** आज जब हम कल्याणकारी समाज की स्थापना की बात करते हैं और श्रम आंदोलन व श्रम संघ सुदृढ़ होते जा रहे हैं, सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया काल में श्रमिक-जीवन निर्वाह मजदूरी पर कार्य नहीं करेगा। वह भी बढ़ती हुई महंगाई के तदनुरूप अपनी मजदूरी बढ़ाने की मांग करेगा और बढ़ते हुए लाभ में अपना हिस्सा मांगेगा। इन परिस्थितियों में **'जीवन निर्वाह'** के बराबर मजदूरी देते रहकर पूँजी निर्माण करके विकास करना सम्भव नहीं होगा।
3. **उचित प्रशिक्षण (Proper Training):** प्रो. लेविस के सिद्धांत का आधार यह है कि अर्द्धविकसित देशों में पर्याप्त मात्रा में अकुशल श्रम-शक्ति होती है और कुशल श्रमिकों का अभाव एक अस्थायी गतिरोध उपस्थित करता है, जिसे श्रमिकों के प्रशिक्षण आदि के द्वारा किया जा सकता है। वास्तव में पर्याप्त मात्रा में श्रम-शक्ति के उचित प्रशिक्षण आदि में काफी समय लगता है। इसलिए कशल और तकनीकी श्रमिकों का अभाव एक बहुत बड़ी कठिनाई उपस्थित करता है।
4. **साहसी वर्ग का अभाव (Lack of Entrepreneur Class):** इस सिद्धांत में यह मान लिया गया है कि अल्प-विकसित देशों में पर्याप्त मात्रा में पूँजीपति वर्ग और साहसी वर्ग मौजूद रहते हैं। परन्तु वास्तव में अधिकांष अर्द्धविकसित देशों में इनका सर्वथा अभाव रहता है और जब ये साहसी नहीं होंगे तो अतिरेक श्रम-शक्ति का उपयोग करके विकास करना सम्भव नहीं होगा।
5. **विनियोग गुणक क्रियाशील न होना (Not functioning of Multiplier):** लेविस ने अपने मॉडल में ऐसे पूँजीपतियों की कल्पना की है जो अधिक लाभ कमाकर उसे पुनः विनियोजित करके पूँजी का संचय करते हैं। इसका अर्थ यह है कि यहां विनियोग गुणक क्रियाशील रहता है, किन्तु वस्तुतः अर्द्धविकसित देशों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता।
6. **बचतकर्ताओं की गलत व्याख्या (Wrong Interpretation of Savers):** लेविस की यह धारणा कि बचत केवल अधिक आय वाले लोग (पूँजीवादी क्षेत्र के लोग) ही करते हैं, गलत है। कम आय वाले लोग भी बचत करते हैं। योजना आयोग के एक अध्ययन के अनसार भारत में 53 प्रतिशत भाग घरेल बचत से प्राप्त होता है। अतः कम आय वाले लोग भी बचत करते हैं।
7. **विषमताओं को बढ़ावा (Encouragement to Disparity):** प्रो. कुजनेट्स का विचार है कि लेविस का मॉडल स्वीकार करने पर अर्द्धविकसित देशों में आय का वितरण और भी असमान हो जाएगा। मायर एवं बाल्डविन का भी कथन है कि आय की असमानता, उत्पादक विनियोग में प्रत्याशा से कहीं कम वृद्धि कर पाती है। अतः आय वितरण की असमानता उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती।
8. **मॉडल की अव्यावहारिकता (Impracticability of Model):** प्रो. ए.एन. खुसरो का विचार है कि लेविस ने अदृश्य बेरोगारी के रूप में सम्भाव्य बचतों का उपयोग करके औद्योगीकरण की जो नीति तैयार की है वह पूर्णतया अव्यावहारिक है क्योंकि इस प्रक्रिया में अनेक ऐसे रिसाव हैं जो सदैव रिसते रहते हैं, जैसे-पूर्ति का मूल्य बेलोचदार होना, कृषकों व व्यापारियों द्वारा स्टाक जमा करने की प्रवृत्ति का पाया जाना इत्यादि।
9. **पूँजीवादी स्फीतिकारी प्रभाव की अस्थायी प्रकृति (Temporary Nature of Capitalist Inflationary Effect):** लेविस का यह तर्क कि पूँजीवादी क्षेत्र में मूल्य वृद्धि अस्थायी होती है और

इसका अन्त स्वजनित घटकों से स्वतः होता है, गलत है।

10. **श्रम की सीमांत उत्पादकता का शून्य न होना (Marginal Productivity of Labour not zero):** यह कहना ठीक नहीं है कि जीवन निर्वाह क्षेत्र में श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता शून्य अथवा नहीं के बराबर होती है। यदि ऐसा होता तो जीवन निर्वाह मजदूरी भी शून्य होनी चाहिए थी, किन्तु ऐसा नहीं है इसलिए शून्य सीमांत उत्पादकता की मान्यता अवास्तविक है।
11. **सीमित क्षेत्र (Limited Scope):** इस सिद्धांत का क्षेत्र सीमित है, क्योंकि यह सिद्धांत अर्द्धविकसित देशों में असीमित मात्रा में श्रम की पूर्ति पर आधारित है। जबकि दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका के कई देशों में ऐसी परिस्थितियां नहीं पायी जाती हैं।
12. **अकुशल कर प्रशासन (Inefficient Tax Administration):** लेविस का यह कथन कि कराधान बढ़ती हुई आय को इकट्ठा करेगा, माना नहीं जा सकता क्योंकि अल्पविकसित देशों में कर प्रशासन इतना कुशल और विकसित नहीं होता कि वह पूँजी-संचय के लिए पर्याप्त मात्रा में कर इकट्ठा कर सके।

18.4 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. लेविस का 'श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास (Economic Development with Unlimited Supplies of Labour)' नामक प्रसिद्ध लेख..... मै प्रकाशित हुआ। (सन् 1954 **या** सन् 1955)
2. जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो.....का प्रयोग नहीं करता है। (पुनरूत्पादकीय पूँजी **या** अपुनरूत्पादकीय पूँजी)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथनों का चुनाव कीजिए-

1. लेविस ने अर्थव्यवस्था को तीन क्षेत्रों में बांटा है।
2. आर्थर लेविस को अर्थशास्त्र का नोबल पुरस्कार 1971 वर्ष में दिया गया।
3. लेविस की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम "थ्योरी ऑफ इकनोमिक ग्रोथ" है।

18.5 सारांश (Summary)

प्रो. डब्लू आर्थर लेविस (W. Arthur Lewis) का श्रम की असीमित पूर्ति मॉडल बहुत ही स्पष्ट एवं सरल शब्दों में अल्पविकसित देशों की विकास प्रक्रिया की व्याख्या करता है। लेविस ने प्रतिष्ठित आर्थिक विकास के मॉडल को भारत जैसे श्रम बाहुल्य वाले देशों की विकास प्रक्रिया पर लागू किया और रिकार्डो के दो-क्षेत्रीय विकास मॉडल को वर्तमान विकासशील देशों की स्थिति में सार्थक बताया।

लेविस मॉडल को दो-क्षेत्रीय या द्वैत अर्थव्यवस्था मॉडल (Dualistic Economy Model) भी कहा जाता है क्योंकि यह मॉडल द्वैत-अर्थव्यवस्था-(अ) जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थात कृषि एवं (ब) पूँजीवादी क्षेत्र अर्थात उद्योग पर आधारित है। पूँजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग करता है एवं पूँजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है। इसके दूसरी ओर जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग नहीं करता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में पूँजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है। अपने दो-क्षेत्रीय या द्वैत अर्थव्यवस्था मॉडल द्वारा लेविस ने यह सिद्ध किया है कि अल्पविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति विकास की बाधा न हो कर पूँजी निर्माण में सहायक होती है। श्रम को निर्वाह क्षेत्र से हटाकर पूँजीवादी क्षेत्र में लगाकर आर्थिक विकास को सम्भव किया जा सकता है।

अतः लेविस के मतानसार आवश्यकता इस बात की है कि जीवन निर्वाह क्षेत्र से श्रमिकों को हटाकर

और उन्हें पूँजीवादी क्षेत्र में लगाकर, नए उद्योगों की स्थापना की जाये या वर्तमान उद्योगों का विस्तार किया जाये ताकि आर्थिक विकास की गति तीव्र हो सके। इस प्रकार निर्वाह-क्षेत्र से बाहर इस अतिरिक्त श्रम-शक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था करना, राष्ट्रीय आय के बढ़ाने का अचूक साधन है।

निष्कर्ष के रुप में यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त अनेक आलोचनाओं के होते हुए भी श्रम की असीमित पूर्ति वाले अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लेविस के माडल की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता है।

18.6 शब्दावली (Glossary)

- **द्वैत अर्थव्यवस्था (Dual Economy):** दोहरी या द्वैत अर्थव्यवस्था वह है जिसमें दो क्षेत्र होते हैं : प्रथम, कृषि क्षेत्र अथवा जीवन- निर्वाह क्षेत्र अथवा पोषण क्षेत्र एवं द्वितीय, उद्योग क्षेत्र अथवा पूँजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र। ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ कुछ क्षेत्रों में पूँजी गहन तकनीक का प्रयोग होता है वहीं साथ ही उन्हीं क्षेत्रों या अन्य क्षेत्रों में परम्परागत व श्रम गहन तकनीक का भी प्रयोग हो रहा होता है।
- **पूँजीवादी क्षेत्र (Capitalistic Area):** पूँजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग करता है एवं पूँजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है।
- **जीवन-निर्वाह क्षेत्र (Subsistence Area):** यह अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग नहीं करता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में पूँजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है।
- **काली मुद्रा (Black Money):** ऐसा धन जिसकी उत्पत्ति अवैधानिक गतिविधियों के कारण हुई हो। तस्करी, करों की चोरी, काला-बाजारी आदि ऐसी गतिविधियां हैं जिनको गैर कानूनी माना जाता है। इनसे प्राप्त आय पर कोई भी कर नहीं चुकाया जाता। काले धन से की गई खरीद व बिकी से प्राप्त मुनाफे पर कोई आय कर नहीं चुकाया जाता, इस कारण इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।
- **पूँजी निर्माण (Capital Formation):** कुल आय में से पृथक किया गया वह धन जिसे उद्योगों, कृषि, सेवा आदि क्षेत्रों में उत्पादन बढाने हेतु लगाया जाता है।
- **श्रम की सीमांत उत्पादकता (Marginal Productivity of Labour) :** श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने पर कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि। प्रायः श्रम की सीमांत उत्पादकता श्रम की अंतिम इकाई से प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा होती है।

18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. सन् 1954 2. पुनरूत्पादकीय पूँजी

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथनों का चुनाव कीजिए-

1.असत्य 2. सत्य 3. सत्य

18.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- झिंगन, एम. एल. : **"विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन"**, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 2003
- सिंह, एस0पी0 : **"आर्थिक विकास एवं नियोजन"** ,एस०चन्द एण्ड कं0 लि., नई दिल्ली, 2010

- सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमार : **"विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन"**, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2008
- सिन्हा, वी. सी. : **"आर्थिक संवृद्धि और विकास"**, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, 2007
- Agarwal, R.C.: **"Economics of Development and Planning"** , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
- Taneja, M. L. & Myer R. M.: **"Economics of Development and Planning"** Vishal Publishing Co. Delhi, 2010

18.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- Lewis, W. Arthur: **"Economic Development with Unlimited Supplies of Labour"** (1954) Reprinted in A.N. Agrawal and S.P.Singh (ed.) **-"The Economics of Underdevelopment"** (1969)
- Misra, S.K.& Puri, V.K.: **"Economic Development and Planning"**

18.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।
2. "लेविस माडल विकास सिद्धान्तों के ऐसे परिवार का प्रतिनिधि है जो असीमित श्रम शक्ति की मान्यता पर आधारित है।" व्याख्या कीजिए।
3. अतिरिक्त श्रम की अवधारणा को समझाइए। निम्न आय वाले देशों में श्रम अतिरेक को किस प्रकार पूँजी निर्माण में लगाया जा सकता है?

इकाई 19 - फाई एवं रेनिस विकास प्रारूप
(The Fei-Ranis Development Model)

19.1 प्रस्तावना (Introduction)
19.2 उद्देश्य (Objectives)
19.3 फाई एवं रेनिस विकास प्रारूप (The Fei-Ranis Development Model)
19.3.1 सिद्धांत की मान्यताएं (Assumption of this Theory)
19.3.2 दोहरी अर्थव्यवस्था का सिद्धांत (Theory of Dual Economy)
19.3.3 रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण (Diagrammatic Representation)
19.3.4 संतुलित विकास (Balanced Growth)
19.3.5 सिद्धांत के गुण (Merits of the Theory)
19.3.6 सिद्धांत की आलोचनाएं (Criticism of the Theory)
19.4 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)
19.5 सारांश (Summary)
19.6 शब्दावली (Glossary)
19.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)
19.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
19.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)
19.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

19.1 प्रस्तावना (Introduction)

लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की कमियों को दूर करते हुए फाई एवं रेनिस ने एक नया विकास प्रारूप प्रस्तुत किया जिसमें एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था की संक्रमण प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है और गतिहीनता की स्थिति से आत्मपरक विकास की अवस्था में जाने की प्रक्रिया की व्याख्या की गई है। फाई एवं रेनिस ने अपने विकास प्रारूप में इस तथ्य की व्याख्या की है कि एक दोहरी अर्थव्यवस्था में विकास की प्रक्रिया का आरम्भ अतिरिक्त श्रम के कृषि क्षेत्र से गैर-कृषि क्षेत्र में स्थानान्तरण के साथ होता है। विकास का केन्द्र अतिरिक्त श्रम के धीरे-धीरे कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरण में निहित है। इस प्रकार यह लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त से श्रेष्ठ है एवं उस पर एक सुधार माना जाता है। ।

19.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम -

- ✓ फाई एवं रेनिस का विकास प्रारूप की मान्यताओं को जानेंगे।
- ✓ श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था के विकास की तीन अवस्थाएं को समझेंगे।
- ✓ फाई एवं रेनिस विकास प्रारूप और लेविस के मॉडल के बीच अंतर को जानेंगे।
- ✓ इस मॉडल की प्रमुख आलोचनाएं को समझेंगे।

19.3 फाई एवं रेनिस विकास प्रारूप (The Fei-Ranis Development Model)

फाई-रेनिस ने अपने लेख **'A Theory of Economic Development'** में एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था की संक्रमण प्रक्रिया (Transition Process) का विश्लेषण किया है एवं यह व्याख्या की है कि किस प्रकार अर्द्धविकसित देश की गतिहीनता की स्थिति (Stagnation) आत्मजनक विकास (Self Sustained Growth) की ओर जाने की आशा करती है। उन्होंने **प्रोफेसर आर्थर लेविस (A. Lewis)** द्वारा प्रस्तुत असीमित श्रम पूर्ति सिद्धांत में निहित कमियों को दूर करते हुए अतिरिक्त श्रम वाली अर्थव्यवस्था के विकास के दो क्षेत्रा-मॉडल (दो सेक्टर मॉडल) से अपना विश्लेषण प्रारंभ किया है। इसके अतिरिक्त, जनसंख्या वृद्धि एवं वास्तविक संसार की अन्य जटिलताओं को अपने विकास माडल में शामिल करते हुए **रेनिस एवं फाई** ने **आवश्यक न्यूनतम प्रयास (Critical Minimum Effort)** के विचार को **'आत्म स्फूर्ति अवस्था'** के संदर्भ में अध्ययन करने का प्रयास किया है।

19.3.1 सिद्धांत की मान्यताएं (Assumptions)

फाई व रेनिस का विकास प्रारूप निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

1. दोहरी अर्थव्यवस्था की विद्यमानता: जिसमें परंपरागत एवं गतिहीन कृषि क्षेत्र के साथ एक सक्रिय औद्योगिक क्षेत्र विद्यमान होता है।
2. दोनों क्षेत्रों में श्रमिक केवल कृषि वस्तुओं का उपभोग करते हैं।
3. कृषि क्षेत्र का उत्पादन केवल भूमि एवं श्रम का फलन है।
4. भूमि के सुधार के अतिरिक्त कृषि में पूँजी का संचय नहीं होता है।
5. कृषि कार्य में पैमाने के स्थिर प्रतिफल पाये जाते हैं।
6. यदि जनसंख्या उस मात्रा से अधिक होती है जहां श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य बन जाती है, तो श्रम को कृषि उत्पादन में हानि किये बिना औद्योगिक क्षेत्रा में स्थानांतरित किया जा सकता है।
7. औद्योगिक क्षेत्र का उत्पादन केवल पूँजी एवं श्रम का फलन है। भूमि की उत्पादन के साधन के रूप में कोई भूमिका नहीं है।
8. जनसंख्या की वृद्धि को एक बाह्य घटक (Exogenous) तत्त्व के रूप में माना गया है।

9. औद्योगिक क्षेत्र में वास्तविक मजदूरी स्थिर रहती है। यह कृषि क्षेत्र की प्रारंभिक वास्तविक आय के बराबर होती है। वे इसे संस्थानिक (Institutional) मजदूरी कहते हैं।
10. भूमि की पूर्ति स्थिर है।

इस सिद्धांत का संबंध श्रम अतिरेक (Labour Surplus) और संसाधनहीन (Resource Poor) ऐसे अर्द्धविकसित देश से है जिसमें अधिकांश जनसंख्या कृषि में कार्यरत है, बेरोजगारी की स्थिति गंभीर है एवं जनसंख्या की वृद्धि दर ऊँची है। कृषि अर्थव्यवस्था भी गतिहीन है और लोग पारंपरिक कृषि व्यवसायों में संलग्न हैं। यद्यपि गैर-कृषि व्यवसाय भी पाये जाते हैं परंतु उनमें पूँजी का अल्प उपयोग होता है। इसमें एक सक्रिय एवं गत्यात्मक औद्योगिक क्षेत्र भी विद्यमान रहता है।फाई और रेनिस के मतानुसार विकास से अभिप्राय कृषि अतिरेक श्रमिक जिनका कृषि उत्पादन में योगदान शून्य अथवा नगण्य है उनको औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित करना है। जहां वे कृषि में संस्थानिक मजदूरी (Institutional Wage) के बराबर मजदूरी पर उत्पादक बन जाते हैं। इस प्रकार विकास में तीन बातें सम्मिलित हैं :

1. कृषि क्षेत्र में श्रमिकों की अधिकता रहती है, फलतः कृषि उत्पादन में उनका योगदान शून्य अथवा नगण्य रहता है।
2. अर्थव्यवस्था में एक सक्रिय औद्योगिक क्षेत्र है, जिसमें अतिरेक श्रमिकों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित किया जाता है।
3. अतिरेक श्रमिकों का कृषि क्षेत्र में उत्पादन में योगदान शून्य या नगण्य होता है। परंतु औद्योगिक क्षेत्रा में इन्हें संस्थानिक मजदूरी प्राप्त होती है, फलतः ये उत्पादक बन जाते हैं।

19.3.2 दोहरी अर्थव्यवस्था का सिद्धांत (Theory of Double Economy)

विकास की अवस्थाएं (Phases of Growth) -उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर फाई एवं रेनिस ने श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था के विकास की निम्नलिखित तीन अवस्थाएं प्रस्तुत की हैं:

1. **प्रथम अवस्था (First Stage) :** इस अवस्था में अदृश्य बेरोजगार श्रमिक जो कृषि उत्पादन में कोई योगदान नहीं दे रहे हैं, उनको स्थिर संस्थानिक मजदूरी की दर पर, औद्योगिक क्षेत्रा में स्थानांतरित कर दिया जाता है।
2. **द्वितीय अवस्था (Second Stage) :** इस अवस्था में कृषि श्रमिक जो कृषि उत्पादन वृद्धि तो करते हैं परंतु उनकी उपज का मूल्य संस्थानिक मजदूरी से कम होता है, ऐसे श्रमिकों को भी औद्योगिक क्षेत्रा में भेज दिया जाता है। यदि इस प्रकार के श्रमिकों का औद्योगिक क्षेत्र की ओर निरंतर स्थानांतरण किया जाता रहता है तो अंततः ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जब कृषि श्रमिकों के उत्पादन का मूल्य संस्थानिक मजदूरी के बराबर हो जाता है।
3. **तृतीय अवस्था (Third Stage) :** द्वितीय अवस्था से ही तीसरी अवस्था का शुभारंभ होता है अर्थात द्वितीय अवस्था आत्मस्फूर्ति ;जंम वद्धि की अंतिम स्थिति होती है और यहीं से आत्मपोषित विकास मा नेपदमक तवूजीद्ध शुरु होता है। जबकि खेतिहर मजदूर संस्थानिक मजदूरी से अधिक उत्पादन करने लगते हैं। इस अवस्था में श्रम अतिरेक समाप्त हो जाता है, और कृषि का व्यावसायीकरण हो जाती है।

19.3.3 रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण (Diagrammatic Representation)

रेखाचित्र 19.1 (A) कृषि की प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है, जहां पर श्रम एवं भूमि द्वारा वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। चित्र में OX अक्ष पर श्रम (W) व OY अक्ष पर भूमि (L) को दर्शाया गया है। उत्पादन की अवस्थाओं को ORरेखा द्वारा प्रदर्शित किया गया है। ABC वक्र कृषि वस्तुओं की उत्पादन

परिधि रेखा है। भूमि को OL पर स्थिर मान कर छ1 श्रम के द्वारा अधिकतम उत्पादन किया जा सकता है।

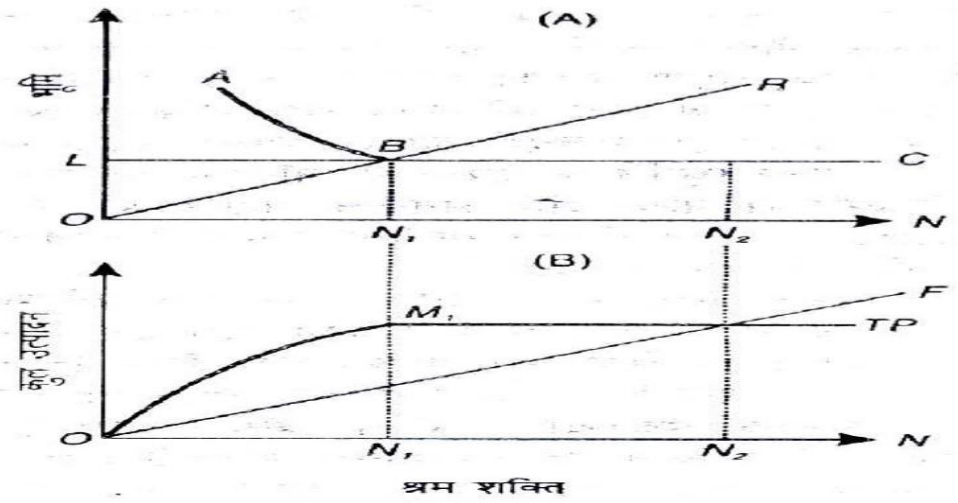

चित्र संख्या- 19.1

चित्र B में TP वक्र श्रम की कुल उत्पादकता को दर्शाता है। यदि भूमि OL के साथ ON_1 से अधिक श्रम लगाया जाता है, तो उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होगी क्योंकि वक्र TP पर M_1 बिंदु के बाद श्रम की कुल उत्पादकता स्थिर हो जाती है। यदि यह मान लिया जाये कि कृषि में कार्यरत श्रम की मात्रा ON_2 है, एवं ON_1 कार्यरत श्रमिक हैं और N_1, N_2 अतिरेक बेरोजगार श्रमिक हैं, तो इस का अर्थ यह होगा कि N_1, N_2 श्रमिकों की संख्या का उत्पादन में कोई योगदान नहीं है, और उनका सीमान्त भौतिक उत्पादकता वक्र TP बिंदु M_1 के आगे शून्य की ओर चला जाता है, अर्थात M_1 बिंदु के आगे उनकी सीमांत उत्पादकता शून्य हो जाती है।

इस प्रकार के श्रमिक अदृश्य बेरोजगार कहलाते हैं। आर्थिक विकास तब होता है जब उन अदृश्य बेरोजगारों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर तीन अवस्थाओं में स्थानांतरित किया जाता है। आर्थिक विकास की इन तीन वर्णित अवस्थाओं को चित्र 19.2 द्वारा दर्शाया गया है। रेखाचित्र 19.2 के (A) भाग में औद्योगिक क्षेत्र को और (B) एवं (C) भाग में कृषि क्षेत्र को दर्शाया गया है।

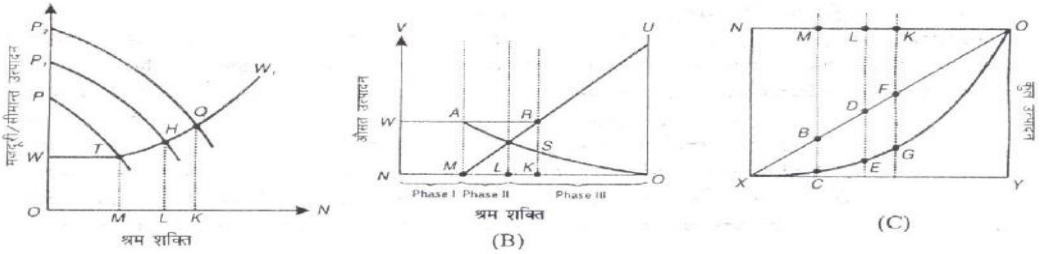

चित्र संख्या -19.2

चित्र के C भाग में कृषि क्षेत्र में श्रम शक्ति को दायीं ओर से बायीं ओर क्षैतिज अक्ष ON पर एवं कृषि उपज को O से नीचे की ओर अनुलंब अक्ष OYपर मापा गया है। OXC वक्र कृषि क्षेत्र की कुल भौतिक उत्पादकता

का वक्र कुल भौतिक उत्पादकता है CX वक्र का सामानांतर भाग यह दर्शाता है कि इस क्षेत्र में कुल उत्पादकता स्थिर है, एवं MN श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य है अर्थात MN अतिरेक श्रम की मात्रा है,जिसे औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित करने पर कृषि उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि यह मान लिया जाये कि संपूर्ण श्रम शक्ति ON कृषि क्षेत्र में लगी हुई है, तो वह NX कुल कृषि उत्पादन करेगी। यह मानते हुए कि कुल कृषि उपज NX को कुल श्रम शक्ति ON द्वारा उपभोग कर लिया जाता है तो वास्तविक मजदूरी NX/ON के बराबर होगी। इस मजदूरी को संस्थानिक (Institutional Wages) कहते हैं। आत्म स्फूर्ति के दौरान स्थानांतरण की तीन अवस्थाओं को चित्र B द्वारा दर्शाया गया है। जहाँ कुल श्रम शक्ति को दायीं ओर से बायीं ओर अनुलंब अक्ष ON पर एवं औसत उत्पादन को क्षैतिज अक्ष छट पर दर्शाया गया है। वक्र NMRU श्रम की सीमांत भौतिक उत्पादकता सीमांत भौतिक उत्पादकता को दर्शाता है। NW संस्थानिक मजदूरी है जिस पर कि मजदूरों को इस क्षेत्र में लगाया जाता है। प्रथम अवस्था में अदृश्य बेरोजगार श्रमिकों की मात्रा NM हैं और सीमांत उत्पादकता शून्य है जिसे चित्र के B भाग में NMRU वक्र के अंश NM द्वारा दर्शाया गया है अथवा चित्र के C भाग में कुल भौतिक उत्पादकता वक्र के अंश CX द्वारा दर्शाया गया है। इस अतिरिक्त श्रम शक्ति छड जिसे चित्र भाग (A) के OM में दर्शाया गया है, उसे संस्थानिक मजदूरी OW =NW पर औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित किया गया है। द्वितीय अवस्था में सीमांत भौतिक उत्पादकता वक्र NMRU पर MK कृषि मजदूरों की सीमांत भौतिक उत्पादकता MR रेन्ज में धनात्मक है लेकिन यह संस्थानिक मजदूरी KR = N जो वे प्राप्त करते हैं, उससे कम है जैसा कि चित्र के B भाग में दर्शाया गया है।

अतः वे कुछ सीमा तक अदृश्य बेरोजगार हैं जिनको औद्योगिक क्षेत्र में स्थानांतरित किया जा सकता है परंतु इस द्वितीय अवस्था में सामान्य मजदूरी औद्योगिक क्षेत्र में संस्थानिक मजदूरी के बराबर नहीं होगी इसका कारण यह है कि श्रम के औद्योगिक क्षेत्र में रूपांतरण से कृषि उत्पादन कम होता है जिसके परिणामस्वरूप कृषि वस्तुओं का अभाव हो जाता है। फलतः औद्योगिक वस्तुओं की सापेक्षता में कृषि वस्तु की कीमतों में वृद्धि हो जाती है। कृषि वस्तुओं की कीमतें बढ़ने से औद्योगिक क्षेत्र की व्यापार की शर्ते खराब हो जाती हैं जिसके कारण औद्योगिक क्षेत्र में सामान्य मजदूरी में वृद्धि की आवश्यकता पड़ती है।

सामान्य मजदूरी OW से LH एवं KQ तक संस्थानिक मजदूरी से अधिक बढ़ जाती है। यह श्रम के पूर्ति वक्र WT से H एवं Q से ऊपर W1 तक जाते हुए भाग (A) में दर्शाया गया है, जब ML तक LK मजदूर धीरे-धीरे औद्योगिक क्षेत्रा में स्थानांतरित हो जाते हैं। T से ऊपर की ओर श्रम के पूर्ति वक्र WTW1 पर गति ही लेविस का मोड़ बिंदु (Lewis Turning Point) है। जब तीसरी अवस्था (Third Phase) शुरु होती है तो कृषि मजदूरों का उत्पादन बढ़ कर संस्थानिक मजदूरी के बराबर हो जाता है और अंततः उनका उत्पादन संस्थानिक मजदूरी से अधिक हो जाता है अर्थात वे संस्थानिक मजदूरी से अधिक प्राप्त करते हैं। यह स्थिति आत्म स्फूर्ति का अंत है और आत्म जनक (Self-Generating) आर्थिक विकास का शुभारंभ है।

इस तथ्य को चित्र के B भाग में सीमांत भौतिक उत्पादकता वक्र के बढ़ रहे भाग RU से दर्शाया गया है जो कि संस्थानिक मजदूरी KR = NW से अधिक है परिणामस्वरूप KO श्रम को चित्र के भाग 1 में KQ से ऊपर बढ़ती हुई सामान्य मजदूरी पर कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित कर दिया जाता है। KO श्रम जो कृषि क्षेत्र में अतिरेक श्रम था जब उसे औद्योगिक क्षेत्र की ओर भेज दिया जाता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि कृषि क्षेत्र में अब श्रम अतिरेक (Labour Surplus) नहीं है और कृषि का

व्यावसायीकरण हो गया है। फाई और रेनिस के अनुसार इस अतिरेक श्रम की समाप्ति को श्रम शक्ति की भौतिक कमी की अपेक्षा एक बाजार तत्त्व (Market Phenomenon) के रूप में देखना चाहिए जिसे वास्तविक मजदूरी में वृद्धि द्वारा व्यक्त किया जाता है।

फाई एवं रेनिस का मत है कि जब कृषि श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिया जाता है तो कृषि वस्तुओं का अतिरेक प्रारंभ हो जाता है। इससे कृषि क्षेत्र में कुल कृषि अतिरेक (Total Agricultural Surplus or TAS) हो जाता है। संस्थानिक मजदूरी पर कृषि शक्ति का उपभोग आवश्यकता से अधिक कुल कृषि उत्पादन का अतिभाग कुल कृषि अतिरेक (TAS) कहा जाता है। कुल कृषि अतिरेक की मात्रा विकास प्रक्रिया की प्रत्येक अवस्था में औद्योगिक क्षेत्र में भेजे गये श्रमिकों की संख्या का फलन है। कुल कृषि अतिरेक को चित्र 19.2 के भाग C में OX रेखा एवं कुल भौतिक उत्पादकता वक्र OCX के बीच की अनुलंब दूरी (Vertical Distance) से मापा गया है। प्रथम अवस्था में जब NM श्रम को स्थानांतरित किया जाता है तो BC के बराबर कुल कृषि अतिरेक है। द्वितीय अवस्था में जब ML एवं LK के श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र की ओर भेजा जाता है तो कुल कृषि अतिरेक की DE एवं FG मात्रा उत्पन्न होती है। कुल कृषि अतिरेक को कृषि संसाधनों के रूप में देखना चाहिए, जिन्हें बाजार में कृषि मजदूरों के पुनः आवंटन द्वारा छोड़ा गया है। ऐसे संसाधनों को भूमिपति वर्ग की विनियोग क्रियाओं अथवा सरकार की कर नीति द्वारा एकत्रीकरण करके नयी औद्योगिक वस्तुओं के लिए उपयोग किया जा सकता है ।इसके अतिरिक्त औसत कृषि अतिरेक (AAS) का भी सृजन होता है। औसत कृषि श्रमिक (AAS) से तात्पर्य औद्योगिक क्षेत्र को आवंटित प्रति श्रमिक को उपलब्ध कुल कृषि अतिरेक से हैं। इसको इस प्रकार ज्ञात किया जा सकता है। जैसा कि प्रत्येक आवंटित श्रमिक अपने निर्वाह का भाग स्वयं उठाता है।

औसत कृषि श्रमिक वक्र को चित्र के B भाग को WASO वक्र द्वारा दर्शाया गया है। अवस्था I में औसत कृषि श्रमिक वक्र संस्थानिक मजदूरी के वक्र (WA) के साथ समरूप है। अवस्था II में जब (MK) श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिया जाता है, तब औसत कृषि श्रमिक चित्र के भाग B में A से S तक गिरने लगता है, जबकि T कुल कृषि अतिरेक भाग (C) में BC से DE से FG तक बढ़ता जाता है। अवस्था III में औसत कृषि श्रमिक अधिक तेजी से भाग B में S से 0 तक होता है और भाग C में क्षेत्र FG से 0 तक संकुचन से कुल कृषि अतिरेक भी कम हो जाता है। औसत कृषि श्रमिक एवं कुल कृषि अतिरेक दोनों में कमी कृषि श्रमिकों को सीमांत भौतिक उत्पादकता संस्थानिक मजदूरी से अधिक बढ़ने के कारण है, जो कि अंततः बचे हुए अतिरिक्त श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में ले जाती है।

फाई एवं रेनिस ने अवस्था I एवं अवस्था II के बीच की सीमा को 'दुर्लभता बिंदु' (Shortage Point) कहा हैं। जब कृषि वस्तुओं की कमी प्रारंभ होती हैं तो औसत कृषि श्रमिक (WASO) वक्र का AS भाग न्यूनतम संस्थानिक मजदूरी (NW) से नीचे गिरता हुआ दर्शाया गया है। अवस्था II एवं अवस्था III के बीच की सीमा व्यावसायीकरण बिंदु (Commercialisation Point) है जो कि कृषि में संस्थानिक मजदूरी एवं सीमांत भौतिक उत्पादकता के बीच समानता के शुभारंभ को व्यक्त करती है।

इस प्रकार लेविस का मोड़ बिंदु फाई एवं रेनिस के दुर्लभता बिंदु के समान होता है एवं औद्योगिक मजदूरी की वृद्धि व्यवसायीकरण बिंदु पर तीव्र होती है। फाई एवं रेनिस यह प्रदर्शित करते हैं कि यदि कृषि उत्पादकता में वद्धि होती है तो दुर्लभता बिंदु औरव्यावसायीकरण बिंदु आपस में मिल जाते हैं। इसका कारण यह है कि कृषि की उत्पादकता में वृद्धि के कारण (MRP) में वृद्धि हो जाती है। (MRP) में वृद्धि उत्पादन को संस्थानिक मजदूरी के स्तर तक अधिक शीघ्रता से बढ़ने के योग्य बनाती है।

चित्र 19.2 B में इसे (MRU) वक्र के ऊपर बायीं तरफ स्थानांतरित होते समझा जा सकता है। इसका तरफ कुल भौतिक उत्पादकता में वृद्धि के साथ (AAS) भी बढ़ता है। जिसका अर्थ यह है कि चित्र 19.2 B में ASO वक्र दायीं ओर ऊपर स्थानांतरित हो जाता है। यदि उत्पादकता में वृद्धि पर्याप्त है, तो चित्र 19.2 B में MRU वक्र एवं ASO वक्र इस प्रकार ऊपर की ओर स्थानांतरित हो जायेंगे कि दुर्लभता बिंदु A और व्यावसायीकरण बिंदु R आपस में मिल जाएंगे और इस प्रकार द्वितीय अवस्था समाप्त हो जायेगी। जहां तक औद्योगिक क्षेत्र का प्रश्न है कृषि उत्पादकता की वृद्धि का प्रभाव यह होता है कि मोड़ बिंदु के बाद यह औद्योगिक पूर्ति वक्र को ऊपर उठा देगी।

चित्र 19.2 B में इसे WTWI के नीचे दायीं ओर बिंदु T के नीचे दिखाया जा सकता है। फाई एवं रेनिस के अनुसार द्वितीय अवस्था के समाप्त होने का आर्थिक महत्त्व यह है कि यह अर्थव्यवस्था को आत्मजनक विकास (Self Sustained Growth) में सरलता से चलने की योग्यता प्रदान करती है।

19.3.4 संतलित विकास (Balanced Growth)

फाई एवं रेनिस के अनुसार उनका मॉडल आत्म स्फूर्ति प्रक्रिया के दौरान की शर्तों को पूरा करता है। संतुलित विकास की अवस्था में कृषि और उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में एक साथ विनियोग आवश्यक है। संतुलित विकास की अवस्था को चित्र 19.3 द्वारा दर्शाया गया है।

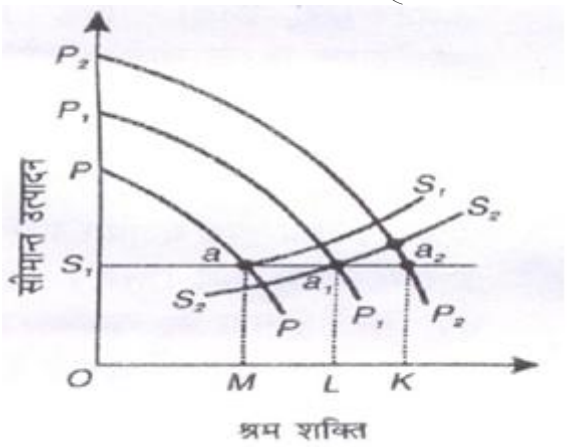

चित्र -19.3

चित्र 19.3 में PP श्रम का प्रारंभिक मांग वक्र एवं S_1S_1 प्रारंभिक पूर्ति वक्र हैं। ये दोनों एक दूसरे को जिस बिंदु पर काटते हैं वहां औद्योगिक क्षेत्र में OM श्रम शक्ति काम में लगी है ।रोजगार के इस स्तर पर औद्योगिक क्षेत्र S_1aP क्षेत्र के बराबर लाभ कमाता है। यह लाभ आत्म स्फूर्ति प्रक्रिया के दौरान अर्थव्यवस्था का उपलब्ध कुल निवेश कोष है। कुल निवेश कोष का एक भाग कृषि क्षेत्र को आवंटित किया जाता है जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है और श्रम पूर्ति वक्र औद्योगिक क्षेत्र में नीचे दायीं ओर S_1S_1 से स्थानांतरित होकर हो S_2S_2 हो जाता है। कुल निवेश का शेष भाग औद्योगिक क्षेत्र को आवंटित किया जाता है जो औद्योगिक मांग वक्र को ऊपर दायीं ओर PP से स्थानांतरित करके P_1P_1 कर देता है।

संतुलित विकास पथ S_1a_3 पर स्थित बिंदु a_1 पर वक्र S_2S_2 एवं P_1P_1 काटते हैं। कृषि क्षेत्र को निवेश कोष के आवंटन के कारण कृषि उत्पादकता में वृद्धि होने से जो कृषि क्षेत्र द्वारा श्रम शक्ति ML छोड़ी गयी है वह a_1 पर औद्योगिक क्षेत्र द्वारा काम में लगायी जाती है। चित्र 19.3 में दर्शायी गयी औद्योगिक क्षेत्र में लगायी हुई श्रम शक्ति ML चित्र 19.2 B में कृषि क्षेत्र से स्थानांतरित की गयी श्रम शक्ति ML के

बिल्कुल बराबर है। इस प्रकार जब काल पर्यंत कुल विनियोग कोष को कृषि और उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में निरंतर आवंटित किया जाते हैं तो अर्थव्यवस्था संतुलित विकास पथ पर चलती रहती है परंतु इस बात की भी संभावना रहती है कि वास्तविक विकास पथ संतुलित पथ से विचलित हो जाये। फिर भी ये विचलन इस प्रकार की संतुलन शक्तियों को जन्म देता है जो इसे पुन: संतुलित विकास पथ पर लाने की प्रवृत्ति रखती है। वस्तुतः यह पथ संतुलित विकास पथ के आसपास घूमने की संभावना रखता है।

उदाहरण के लिए, यदि औद्योगिक क्षेत्र में विनियोग की मात्रा अधिक हो जाने के कारण श्रम मांग वक्र स्थानांतरित हो कर P_2P_2 हो जाता है और a_2 पर श्रम पूर्ति वक्र S_2S_2 को काटता है तो वास्तविक विकास पथ संतुलित विकास पथ से ऊपर होगा इससे कृषि वस्तुओं में कमी आयेगी एवं औद्योगिक क्षेत्र की व्यापार शर्तों में गिरावट आयेगी और औद्योगिक क्षेत्र में मजदूरी की दर बढ़ेगी। परिणामस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र में विनियोग हतोत्साहित होगा एवं कृषि क्षेत्र में विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा जिसके कारण वास्तविक विकास एवं संतुलित विकास पथ a_3 के स्तर पर आ जाएगा।

19.3.5 सिद्धांत के गुण (Merits of the Theory)

फाई एवं रेनिस के मॉडल को लेविस के मॉडल पर एक सुधार माना गया है जिसके निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं :

1. लेविस का मॉडल अपना ध्यान केवल औद्योगिक क्षेत्र पर ही केंद्रित करता है जिसके फलस्वरुप यह मॉडल कृषि क्षेत्र में विकास का संतोषजनक विश्लेषण कर पाने में असमर्थ रहा है।
2. फाई व रेनिस का मॉडल लेविस के मोड़ बिंदु (Lewis turning point) को अधिक वास्तविक ढंग से समझाता है।
3. फाई व रेनिस का यह मॉडल अर्द्धविकसित देशों में पूँजी के संचय के लिए कृषि वस्तुओं के महत्त्व को प्रकट करता है।
4. यह सिद्धांत अर्द्धविकसित देशों के कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्रों के परस्पर प्रभावों की विकास प्रक्रिया का आत्मस्फूर्ति से आत्मजनक विकास तक व्यवस्थित ढंग से विश्लेषण करता है।

19.3.6 सिद्धांत की आलोचनाएं (Criticism of the Theory)

उपर्युक्त अनेक गुणों के होते हुए भी फाई व रेनिस के सिद्धांत की निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर आलोचनाएं की जाती हैं :

1. **स्थिर संस्थानिक मजदूरी (Fixed Institutional wage) :** इस सिद्धांत की धारणा है कि कृषि उत्पादकता में वृद्धि होने के बावजूद भी विकास की प्रथम और द्वितीय अवस्थाओं में संस्थानिक मजदूरी स्थिर रहती है। परन्तु यह मान्यता वास्तविक अनुभव से मेल नहीं खाती है क्योंकि सामान्यतया जैसे जैसे कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है कृषि में मजदूरी भी बढ़ती जाती है।
2. **सीमांत भौतिक उत्पादकता का अधिक होना (High MPP) :** यह मॉडल इस धारणा पर आधारित है कि विकास प्रक्रिया की अवस्था I एवं II के दौरान संस्थानिक मजदूरी स्थिर होती है एवं सीमांत भौतिक उत्पादकता (MPP) से ऊंची होती है। इस मान्यता के पक्ष में कोई आनुभाविक प्रमाण नहीं है। वास्तव में श्रम अतिरेक अल्पविकसित देशों में कृषि श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी सीमांत भौतिक उत्पादकता से काफी कम होता है।
3. **शून्य सीमांत भौतिक उत्पादकता (Zero MPP) :** फाई एवं रेनिस की यह धारणा है कि भूमि की स्थिर मात्रा के साथ जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा होता है जिसका उत्पादन में कोई योगदान नहीं होता है अर्थात उनकी सीमांत भौतिक उत्पादकता शून्य या नगण्य होती है। प्रो. शूल्ज इस मत से सहमत नहीं हैं कि श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्थाओं में सीमांत भौतिक उत्पादकता

शून्य होती है क्योंकि यदि ऐसा होता तो संस्थानिक मजदूरी भी शून्य होती। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक मजदूर को न्यूनतम मजदूरी मिलती है जो नकद रूप में या वस्तु के रूप में होती है। अतः यह कहना सर्वथा गलत है कि कृषि क्षेत्र में सीमांत भौतिक उत्पादकता शून्य होती है।

4. **कृषि का व्यावसायीकरण (Commercialisation of Agriculture) :** इस सिद्धांत के अनुसार जब कृषि क्षेत्र तीसरी अवस्था में प्रवेश करता है तो उसका व्यावसायीकरण हो जाता है। परंतु अर्थव्यवस्था की आत्मजनक विकास की ओर जाने की संभावनाएं नहीं रहती क्योंकि अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जब अनेक श्रमिक कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्रों की ओर स्थानांतरित हो जाते हैं तो कृषि क्षेत्र में श्रमिकों की कमी अनुभव होने लगती है। इसी दौरान संस्थानिक मजदूरी श्रमिकों की डच्च के बराबर होती है एवं इस प्रकार कृषि वस्तुओं की कमी हो जाती है। ये सभी तत्त्व अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न करते हैं।
5. **स्थिर भूमि की पूर्ति (Supply of Fixed Land) :** यह मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि विकास की प्रक्रिया के दौरान भूमि की पूर्ति स्थिर रहती है परंतु यह धारणा सही नहीं है क्योंकि दीर्घकाल में फसल एकड़ उत्पत्ति का अध्ययन करने पर यह पाया गया है कि भूमि की मात्रा स्थिर नहीं रहती है। उदाहरण के लिए, भारत में फसल क्षेत्र का निर्देशांक (आधार वर्ष 1881-82) 1870-71 में 96.3 था जो 2000-01 में बढ़ कर 102.0 हो गया।
6. **बंद अर्थव्यवस्था (Closed Economy) :** यह मॉडल बंद अर्थव्यवस्था की धारणा पर आधारित है जिसमें विदेशी व्यापार नहीं होता। आलोचकों के अनुसार यह धारणा अवास्तविक है क्योंकि इसमें अर्थव्यवस्था के विकास में विदेशी व्यापार की भूमिका को नकारा गया है। वर्तमान जगत में कोई भी देष बाहरी विष्व की सहायता के बिना उन्नति नहीं कर सकता है। विदेशी पूँजी, सहायता एवं सहयोग किसी भी अर्द्धविकसित देश के विकास के लिए आवश्यक माने जाते हैं। अत: वर्तमान अर्द्धविकसित देश बंद अर्थव्यवस्थाएं न हो कर खुली अर्थव्यवस्थाएं हैं जहां कमी आने पर वस्तुओं को विदेशों से आयात किया जाता है।

19.4 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. फाई-रेनिस का विश्लेषण ..... क्षेत्र मॉडल पर आधारित है। (दो **या** तीन)
2. फाई-रेनिस का सिद्धान्त ..... अर्थव्यवस्था की धारणा पर आधारित है। (बन्द **या** खुला)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथनों का चुनाव कीजिए-

1. फाई एवं रेनिस के अनुसार कृषि परम्परागत एवं गतिहीन क्षेत्र है।
2. फाई एवं रेनिस के अनुसार औद्योगिक क्षेत्र में वास्तविक मजदूरी अस्थिर रहती है।
3. अर्थव्यवस्था में एक सक्रिय औद्योगिक क्षेत्र है, जिसमें अतिरेक श्रमिकों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित किया जाता है।

19.5 सारांश (Summary)

उपर्युक्त विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि फाई एवं रेनिस का विकास प्रारूप वास्तविकता से परे है एवं अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। किन्तु इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि अर्द्धविकसित देश सामान्यत: जनसंख्या वृद्धि की समस्या का सामना कर रहे हैं और ऐसी दशा में अतिरेक श्रम एक वास्तविक समस्या है जिस पर फाई एवं रेनिस के विकास प्रारूप में प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार विकास का यह प्रारूप श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था के संदर्भ में अप्रासंगिक नहीं है एवं यह लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त पर एक सुधार है। लेविस का सिद्धान्त कृषि क्षेत्र के विकास को ध्यान में रखते हुए केवल औद्योगिक क्षेत्र पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता है जबकि फाई- रेनिस मॉडल विकास को

प्रारम्भ एवं तीव्र करने में कृषि एवं औद्योगिक दोनों क्षेत्रों के परस्पर प्रभाव को व्यक्त करता है। यद्यपि इस मॉडल की अनेक आलोचनाएं की गई हैं किन्तु इनसे इसका महत्व कम नहीं होता है। अतिरेक श्रम की समस्या को हल करने के लिए नीति निर्धारकों द्वारा फाई एवं रेनिस के विकास प्रारूप को कुछ संषोधनों के साथ प्रयोग किया जा सकता है।

19.6 शब्दावली (Glossary)

- **बन्द अर्थव्यवस्था (Closed Economy) :** एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में शामिल नहीं होती है।
- **द्वैत अर्थव्यवस्था (Dual Economy) :** दोहरी या द्वैत अर्थव्यवस्था वह है जिसमें पोषण क्षेत्र एवं द्वितीय, उद्योग क्षेत्र अथवा पूँजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र। ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ कुछ क्षेत्रों में पूँजी गहन तकनीक का प्रयोग होता है वहीं साथ ही उन्हीं क्षेत्रों या अन्य क्षेत्रों में परम्परागत व श्रम गहन तकनीक का भी प्रयोग हो रहा होता है।
- **बाह्य घटक (Exogenous Factor) :** एक ऐसा घटक जो मॉडल के कार्य को प्रभावित तो करता है किन्तु मॉडल में दिये गये सम्बन्धों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
- **पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scale) :** जब उत्पादन के किसी एक साधन या अनेक साधनों को जिस अनुपात में बढ़ाया या घटाया जाता है यदि उत्पादन में भी उसी अनुपात में वृद्धि या कमी हो तो उसे पैमाने के स्थिर प्रतिफल की स्थिति कहते हैं।
- **अदृश्य बेरोजगारी (Disguised Unemployment) :** यह बेरोजगारी प्रकट रूप में दिखाई नहीं देती है। इस दशा में श्रमिक काम में लगा हुआ प्रतीत होता है किन्तु उत्पादन में उसका योगदान नगण्य या शून्य होता है अर्थात श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है।
- **सीमान्त भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity) :** जब सीमान्त उत्पादकता को उत्पादन (वस्तुओं) की भौतिक मात्रा में होने वाली वृद्धि के रूप में व्यक्त किया जाता है तो उसे सीमान्त भौतिक उत्पादकता कहते हैं अर्थात यह किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि को व्यक्त करती है।
- **आत्म-स्फूर्ति की अवस्था (Take-off Stage) :** आत्म-स्फूर्ति अविकसित अवस्था और विकास की चरम सीमा के बीच एक मध्यान्तर की अवस्था है। इसमें पुरानी बाधाओं एवं प्रतिरोधों पर परी तरह से काब पा लिया जाता है। आर्थिक विकास की उत्प्रेरक शक्तियाँ सक्रिय हो जाती हैं। विकास एक सामान्य प्रक्रिया का रुप ले लेता है संचयी विकास समाज की आदतों एवं उसके संस्थानिक ढाँचे का अभिन्न अंग बन जाता है। प्रति व्यक्ति आय में दीर्घकाल तक एक निश्चित दर से वृद्धि होती है एवं इसके लिए आवश्यक निवेश स्वतः होने लगता है।
- **श्रम की सीमांत उत्पादकता (Marginal Productivity of Labour) :** श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने पर कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि । प्रायः श्रम की सीमांत उत्पादकता श्रम की अंतिम इकाई से प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा होती है।

19.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. दो, 2. बन्द,

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथनों का चुनाव कीजिए-

1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य

19.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- झिंगन, एम. एल. : ***"विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन",*** वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 1903
- सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमार: ***"विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन"*** राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1908
- सिन्हा, वी. सी. : ***"आर्थिक संवृद्धि और विकास"***, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, 1907
- Agarwal, R. C. : ***"Economics of Development and Planning"*** Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 1907
- Taneja, M. L. & Myer R. M. : ***"Economics of Development and Planning"*** Vishal Publishing Co., Delhi, 1910

19.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- Myrdal, G. : ***"Economic Theory and Under-developed Regions"*** 1957
- Myint, H. M. : ***"Economic Theory and the Underdeveloped Countries"***
- Meier ,G.M.: ***"Leading Issues in Economic Development"*** , Oxford University Press, Delhi ,1989
- Lewis, W. Arthur : ***"Economic Development with Unlimited Supplies of Labour"*** (1954) Reprinted in A.N.Agrawal and S.P.Singh (ed.) **-"The Economics of Underdevelopment"** (1969)
- Meier and Baldwin : ***"Economic Development"***
- Kindleberger C. P. : ***"Economic Development"***
- Misra, S. K. & Puri, V. K. : "***Economic Development and Planning"***

19.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. फाई एवं रेनिस के दोहरी अर्थव्यवस्था के सिद्धांत की संक्षेप में व्याख्या कीजिए। यह लेविस के असीमित पूर्ति सिद्धांत से किस प्रकार श्रेष्ठ है?
2. फाई एवं रेनिस के सिद्धांत में मोड़ बिंदु क्या है? क्या यह सिद्धांत लेविस के सिद्धांत का एक सुधरा हुआ रूप है? विवेचना करो।
3. फाई एवं रेनिस के विकास मॉडल की प्रासंगिकता का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

इकाई 20 - एच. मिन्ट एवं गुन्नार मिर्डल का अल्प विकास प्रारूप
(The H. Myint and Gunnar Myrdal Under Development Model)

20.1 प्रस्तावना (Introduction)

20.2 उद्देश्य (Objectives)

20.3 एच. मिन्ट एवं गुन्नार मिर्डल का सिद्धांत (Theory of H. Myint and Gunnar Myrdal)

20.3.1 वित्तीय द्वैतवाद का सिद्धांत (Theory of Financial Dualism)

20.3.1.1 वित्तीय द्वैतवाद का अर्थ (Meaning of Financial Dualism)

20.3.1.2 वित्तीय द्वैतवाद के प्रभाववृ (Effects of Financial Dualism)

20.3.1.3 वित्तीय द्वैतवाद को कम करने हेतु सुझाव (Suggestions to Reduce Financial Dualism)

20.3.2 मिर्डल का चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत (Circular Causality Theory of Myrdal)

20.3.2.1 प्रादेशिक असमानताएं (Regional Inequalities)

20.3.2.2 देशांतर, पूँजीगतियों एवं व्यापार के अतिनिर्यात प्रभाव (The Backwash Effects of Migration, Capital Movements and Trade)

20.3.2.3 अंतर्राष्ट्रीय असमानताएं (International Inequalities)

20.3.2.4 समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

20.3.2.5 सिद्धांत के दोष (Demerits of this Theory)

20.4 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)

20.5 सारांश (Summary)

20.6 शब्दावली (Glossary)

20.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

20.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

20.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

20.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

20.1 प्रस्तावना (Introduction)

आर्थिक विकास के सिद्धान्तों में **प्रो. मिंट (Myint)** का **वित्तीय द्वैतवाद का सिद्धांत** एवं **गुन्नार मिर्डल** का **अल्पविकास विश्लेषण** महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वित्तीय द्वैतवाद के सिद्धांत में प्रो. मिन्ट ने एक अल्पविकसित राष्ट्र के मुद्रा बाजार में विद्यमान वित्तीय द्वैतवाद के उस राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या की एवं उन्हें कम करने हेतु उपयुक्त सुझाव भी दिये है। जबकि मिर्डल के मतानुसार आर्थिक विकास के कारण चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया उत्पन्न होती है जिससे असमानताओं का जन्म होता है। उनका सिद्धांत राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से उत्पन्न असमानताओं पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने अतिनिर्यात प्रभाव एवं प्रसरण प्रभाव की धारणाओं का उपयोग किया है।

20.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम -

- ✓ वित्तीय द्वैतवाद के अर्थ को समझेंगे।
- ✓ वित्तीय द्वैतवाद का एक अल्पविकसित राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव को समझेंगे।
- ✓ प्रो. मिर्डल का चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत को जानेंगे।
- ✓ अतिनिर्यात प्रभाव एवं प्रसरण प्रभाव को समझेंगे।
- ✓ प्रादेशिक एवं अंतर्राष्ट्रीय असमानताएं को जानेंगे।
- ✓ मिर्डल के चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत के गुण एवं दोषों को जानेंगे।

20.3 एच. मिन्ट एवं गुन्नार मिर्डल का सिद्धांत (Theory of H. Myint and Gunnar Myrdal)

20.3.1 वित्तीय द्वैतवाद का सिद्धांत (Theory of Financial Dualism)

20.3.1.1 वित्तीय द्वैतवाद का अर्थ (Meaning of Financial Dualism)

वित्तीय द्वैतवाद के सिद्धांत का प्रतिपादन **प्रो. एच. एम. मिंट** द्वारा किया गया । वित्तीय द्वैतवाद से अभिप्राय है- अल्प विकसित राष्ट्रों में संगठित और गैरसंगठित मुद्रा बाजारों में विभिन्न ब्याज दरों का सहअस्तित्व। पारम्परिक क्षेत्र के असंगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें आधुनिक क्षेत्र के संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं।

मिंट के अनुसार संगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें कम एवं प्रचुर मात्रा में साख सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। इसमें केन्द्रीय बैंक, वाणिज्यिक बैंक, सहकारी समितियां और बैंक, विदेशी बैंक एवं अन्य वित्तीय संस्थाएं जिनमें कृषि सम्बन्धी वित्त निगम (भारत में नाबार्ड), औद्योगिक वित्त निगम (भारत में आई.एफ.स.आई) बीमा कम्पनियां (भारत में एल.आई.सी.जी.आई.सी.इत्यादि) और विकास बैंक (भारत में आई.डी.बी.आई, सिडबी इत्यादि) शामिल होते हैं। इसके विपरीत गैर-संगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं। इसमें देशी बैंकर्स, साहूकार, पैशेवर और गैर-पेशेवर व्यापारी, सौदागार, जमींदार, मित्र और सगे-सम्बन्धी अधिव्यवसायी, निधियां और चिटफंड आदि शामिल होते हैं।

गैर संगठित-मुद्रा बाजार की विशेषताएं हैं:

1. साहूकारों और ऋणकर्ताओं के बीच निजी सम्बन्ध;

2. साहूकारों द्वारा ऋणकर्ताओं में अनौपचारिक लेन-देन;
3. ऋणों के लेन-देन में लचीलापन;
4. ऋण देने की गतिविधियों में विविधता अर्थात ऋण देने की सुविधा के साथ व्यापार जैसी अन्य आर्थिक गतिविधियों में भी सहायक होना;
5. ब्याज-दरों की विविधता: ऋणी की आवश्यकता, ऋण की राशि, ऋण लौटाने का समय और प्रतिभूति के स्वरूप के अनुरुप ब्याज दरों में भिन्नता;
6. खातों के रख-रखाव की दोषपूर्ण पद्धति-पुन: अदा किए गए मूलधन और उस पर लिये गये ब्याज के लिए प्राप्तियां (रसीदे) जारी किया जाना; और
7. ऋण देने की प्रक्रियाओं और खातों के रखरखाव में अत्यधिक गोपनीयता।

20.3.1.2 वित्तीय द्वैतवाद के प्रभाव (Effects of Financial Dualism)

एक अल्पविकसित राष्ट्र के मुद्रा बाजार में इस प्रकार के वित्तीय द्वैतवाद के विद्यमान होने से उस राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं:

1. **विरोधी वित्त नीतियां (Inimical Public Policies)**: अल्पविकसित राष्ट्रों में पारम्परिक क्षेत्र के पिछड़ने का कारण यह है कि सार्वजनिक सेवाओं पर किया जाने वाला व्यय ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों पर अधिक किया जाता है। परिवहन, संचार और विद्युत शक्ति जैसी सार्वजनिक सेवाएं पारम्परिक क्षेत्र की अपेक्षा आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र में सरलता से और आसान शर्तों पर उपलब्ध हैं।

   कुछ अल्पविकसित राष्ट्रों की सरकारों ने कृषि बैंकों, सहकारी ऋण समितियों आदि की स्थापना करके और सूदखोरी कानूनों को समाप्त करके ऋण सुविधाओं की स्थिति में सुधार करने का प्रयास किया है। परन्तु इससे सहकारी समितियो द्वारा अपने कुछ खास **'मॉडल गांवों'** को रियायती दरों पर सीमित ऋण राशि उपलब्ध कराई जाती है। देखने में प्रभावी प्रतीत होने वाली इन प्रदर्शन सुविधाओं का शेष पारम्परिक क्षेत्र में प्रचलित उच्च ब्याज दर को कम करने में कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों के विकास में बाधा उत्पन्न हुई है जिसके परिणामस्वरूप बैंक ऋणों का उपयोग भी कम हुआ है। मिंट के अनुसार साहूकारों की गतिविधियों पर अंकुश लगाने एवं व्यापारिक बैंकों और सहकारी समितियों के द्वारा पारम्परिक क्षेत्र में सस्ता ऋण सुलभ कराने के प्रयास निम्नलिखित कारणों से विफल हो गए हैं: (क) ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापारिक बैंकों के अधिकारी एवं कर्मचारियों के वेतन-भत्ते एंव उपरिलागत का अधिक होना; (ख) उधार प्राप्त करने के कड़े नियमों के अनुसार छोटे उधारकर्ताओं के साथ लेनदेन में लालफीताशाही; (ग) प्रधान कार्यालय और शाखाओं में समन्वय का अभाव; और (घ) ग्रामीण क्षेत्रों के अपने कुछ खास क्षेत्रों में सहकारी ऋण समितियों द्वारा रियायती दरों के ऋण की सीमित उपलब्धता।

2. **ब्याज दर में भिन्नता (Interest Rate Differences):** वित्तीय द्वैतवाद के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के संगठित और गैर संगठित मुद्रा बाजारों में विभिन्न ब्याज दरें प्रचलित रहती हैं। पारम्परिक क्षेत्र के असंगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें आधुनिक क्षेत्र के संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं। गैर-संस्थागत ऋण ऊंची ब्याज दरों पर उपलब्ध होता हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि पारम्परिक क्षेत्र में बचतों की वस्तुतः कमी है, क्योंकि बचतों का बड़ा हिस्सा सोने और आभूषणों के रूप में जमा किया जाता है। यद्यपि इस गैर-संगठित मुद्रा बाजार की अपूर्णताओं के अन्य सहायक पहलू भी हैं। ग्रामीण दुकानदार, जमींदार, साहूकार और व्यापारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अनुकूल स्थान रखते हैं और किसानों पर एकाधिकार शक्तियां स्थापित कर लेते है। इसका प्रमुख कारण यह है कि उक्त समुदाय ऋण के लेने-देन में लचीलापन और वस्तुओं की बिक्री जैसे क्रिया-कलापों को ऋण देने के साथ शामिल करके ऋण लेने वालों से निजी और

अनौपचारिक सम्बन्ध बना लेते हैं। **मिंट** के अनुसार ***"किसानों द्वारा अदा की जाने वाली ब्याज की ऊंची दरें न केवल औपचारिक ब्याज खर्चे ;बींतहमेद्ध हैं अपितु इसका बड़ा भाग वह छिपा हुआ भार है जो किसानों द्वारा खरीदी अथवा बेचे जाने वाली वस्तुओं की कीमतों में हेरा-फेरी कर प्राप्त किया जाता है। छिपा हुआ भार स्थानीय दुकान से ऋण शर्तों पर वस्तुओं की ऊंची कीमतों के रूप में अथवा फसल कटाई के समय निर्धारित फसल की मात्रा सहित ऋण राशि जमींदार को अदा करने के रूप में हो सकता है।"***

दूसरी ओर अल्पविकसित राष्ट्रों के संगठित बाजार में ब्याज दरें कम और ऋण-सुविधाएं पर्याप्त होती हैं। संगठित मुद्रा बाजार में व्यावसायिक बैंक एवं अन्य वित्तीय संस्थाएं होती हैं जो निर्यात उद्योगों में बड़े विदेशी स्वामित्व वाले उद्यमियों, सरकार और बड़े पैमाने के आधुनिक वस्तुओं का निर्माण करने वाले उद्यमियों को कम ब्याज दर पर थोड़े समय के लिए ऋण प्रदान करते हैं।

3. **मुद्रास्फीति और भुगतान संतुलन दबाव (Inflation and Balance of Payment Pressures):** अल्पविकसित राष्ट्रों को दीर्घकालिक घरेलू मुद्रास्फीति और भुगतान संतुलन सम्बन्धी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप पारम्परिक क्षेत्र के किसानों, छोटे व्यापारियों, हथकरघा उत्पादकों जैसे छोटे कारोबार वाली इकाइयों को न केवल ऊंची ब्याज दर अपितु विदेशी विनिमय और आयातों का अभाव भी झेलना पड़ता है। अल्पविकसित राष्ट्रों के अपने केन्द्रीय बैंकों की स्थापना से उन्हें मौद्रिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है। अब इन राष्ट्रों में विदेशी मुद्रा नियन्त्रणों की शुरूआत हो गई है और विदेशी व्यावसायिक बैंकों द्वारा निधियों के हस्तांतरण और लाभ अपने यहां ले जाने की गतिविधियों पर अंकुश लगा है। इसके फलस्वरूप अल्पविकसित राष्ट्रों के संगठित मुद्रा बाजारों का सम्बन्ध विश्व पूँजी बाजार से टूट सा गया है। उक्त नीतियों के साथ-साथ अल्पविकसित राष्ट्र सस्ती मुद्रा नीति को अपना रहे हैं। इससे विरोधाभास वाली ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें पूँजी दुर्लभ अल्पविकसित राष्ट्रों के केन्द्रीय बैंक बहु-पूँजी विकसित राष्ट्रों में प्रचलित ब्याज दरों की तुलना में कम ब्याज दर रखे हुए हैं। इससे उनकी विनिमय दर का अधिमूल्यन (Overvaluation)हो जाता है। अल्पविकसित राष्ट्रों को भय होता है कि मुद्रा के अवलमूल्यन से उनकी मुद्राओं का पुनः अवमूल्यन एवं स्फीति दबाव हो जायेंगे। इस प्रकार, अल्पविकसित राष्ट्रों को मुद्रा स्फीतिक दबावों, विदेशी मुद्रा आरक्षित निधियों में गिरावट और भुगतान संतुलन के दबावों जैसी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतः अधिमूल्यक मुद्रा दरों पर विदेशी मुद्रा की दीर्घकालीन अतिमांग पाई जाती है। इन समस्याओं पर नियन्त्रण पाने के लिए अल्पविकसित राष्ट्रों ने विदेशी मुद्रा और आयात नियन्त्रणों एवं मौद्रिक एवं राजकोषीय उपायों एवं प्रत्यक्ष नियन्त्रणों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

4. **राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Effects of Fiscal and Monetary Policies):** वित्तीय द्वैतवाद के परिणामस्वरुप पारम्परिक क्षेत्र एवं आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र के मध्य आर्थिक द्वैतवाद में वृद्धि हुई है। राजकोषीय और मौद्रिक नीतियां पारम्परिक क्षेत्र की तुलना में आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र के पक्ष में अग्रसर हुई हैं। सस्ती मुद्रा नीति अपनाकर बड़ी औद्योगिक इकाइयों को कृत्रिम रूप से कम ब्याज दर एवं अनुकूल शर्तों पर ऋण उपलब्ध कराया गया है। कम ब्याज दर से न केवल विदेशों से आने वाली पूँजी निधियों के प्रवाह और देश के भीतर होने वाली बचतों में कमी हुई है अपितु विभिन्न ऋणों के लिए मांग अधिक हुई है। इस प्रकार घरेलू बचतों का बड़ा भाग कम ब्याज दर पर आधुनिक औद्योगिक क्षेत्रों को प्राप्त हुआ है। इससे पारम्परिक लघु उद्योगों और कृषि क्षेत्रों को पूँजी की आपूर्ति में कमी हुई है और उक्त क्षेत्रों को ऊंची ब्याज दरों पर पूँजी जुटानी पड़ती है। इसके परिणामस्वरूप मौद्रिक लेन-देनों की मात्रा में कमी हुई है और गैर-मौद्रिक लेन-देनों में निरन्तर बढ़ोतरी हुई है।

5. **नियन्त्रणों के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Effects of Controls):** प्रतिकूल भुगतान संतुलन को ठीक करने के लिए विदेशी मुद्रा और आयातों पर नियन्त्रण लगाने से पारम्परिक क्षेत्र की तुलना में आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र को लाभ हुआ है। सामान्य तौर से उपलब्ध विदेशी मुद्रा का बड़ा भाग आधुनिक क्षेत्र को आवंटित किया जाता है और विनिर्माण उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाता है ताकि वे उत्पादन के अति पूँजी गहन तरीके अपनायें। इसका कारण यह है कि आयातित पूँजी-वस्तुएं अतिमूल्य विनिमय दरों पर सस्ते में प्राप्त की जाती हैं। इस प्रकार घरेलू श्रम की बजाय अपेक्षाकृत सस्ती आयातित पूँजी वस्तुओं को अपनाने की प्रबल प्रेरणा मिलती है।

   कृषि और छोटे पैमाने के क्षेत्रों के विदेशी मुद्रा के अभाव और आयात नियन्त्रणों से ग्रसित होने के दो मुख्य कारण है: प्रथम, उन्हें आयातित उपभोक्ता वस्तुएं ऊंची कीमतों पर मिलती हैं और दूसरे, वे अल्प विकिसित राष्ट्रों में लालफीताशाही और भ्रष्टाचार व्याप्त होने के कारण विदेशी मुद्रा और आयात परमिट सरलता से नहीं प्राप्त कर पाते हैं। दुर्लभ पूँजी की आपूर्ति पर सरकारी नियन्त्रण से अल्पविकसित राष्ट्रों में वित्तीय बिचौलियों के विकास में बाधा उत्पन्न हुई है। इन नियन्त्रणों से बड़ी विनिर्माण इकाइयों और बैंकों को लाभ होता है। इसके अलावा वे उन छोटे उधारकर्ताओं ओर साहूकारों से भेदभाव करते हैं जो कि छोटे उधारकर्ताओं को ऋण प्रदान करते हैं। सरकार का मानना है कि केवल टिकाऊ पूँजीगत वस्तुओं और आधुनिक मशीनरी में निवेशित पूँजी निधियां ही उत्पादक हैं, जबकि कृषि और व्यापारिक गतिविधियों में निवेश किया गया धन गैर-उत्पादक होता है।

6. **पूँजी बाजार के विकास का धीमा होना (Retardation of the Growth of Capital Market):** वित्तीय द्वैतवाद से आधुनिक और पारम्परिक क्षेत्रों में संसाधनों का गलत आवंटन हुआ है और अल्पविकसित राष्ट्रों में एकीकृत घरेलू पूँजी बाजार के विकास में बाधा उत्पन्न हुई है। सरकारी नियन्त्रणों की विविधता से ऋण का मुक्त बाजार काला बाजार के रूप में विकसित हो गया है। अतिमूल्यक विनिमय दरों सहित घरेलू मुद्रा स्फीति के कारण आन्तरिक पूँजी का विदेशों में सट्टात्मक हस्तांतरण हआ है। जिन अल्पविकसित राष्टों ने ऐसी गतिविधियों को रोकने का प्रयास किया है, वहां पूँजी निधियों को स्वर्ण, आभूषण, वास्तविक सम्पदा और सट्टा गतिविधियों में लगाया गया है। इसका कारण यह है कि सस्ती मुद्रा नीति के अन्तर्गत निधियों के धारकों को निवेश करने पर कम ब्याज दर प्रदान की जाती है। इससे प्रभावी मुद्रा बाजार के विकास में बाधा आती है।

   इसके अलावा, अल्पविकसित राष्ट्रों के एकीकृत पूँजी बाजार के विकास में व्यापारिक गतिविधियों के विरूद्ध ऋण भेदभाव भी रूकावट बन जाता है। पर्याप्त पूँजी-निधियों की अनुपलब्धता और धारक स्टाकों की ऊंची लागतों के कारण व्यापारियों को वस्तुओं का बहुत कम भण्डार और प्रचल पूँजी अपने पास रखनी पड़ती है। इसके परिणाम स्वरूप थोक और खुदरा कीमतों का अंतर बढ़ जाता है।

20.3.1.3 वित्तीय द्वैतवाद को कम करने हेतु सुझाव (Suggestions to Reduce Financial Dualism)

अल्पविकसित राष्ट्रों में वित्तीय द्वैतवाद को कम करने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं:

1. **अधिक एकीकृत घरेलू पूँजी बाजार का निर्माण (Creation of a More Integrated Domestic Capital Market):** प्रो. मिंट ने यह सुझाव दिया है कि अल्पविकसित राष्ट्रों में अधिक एकीकृत घरेलू पूँजी बाजार का निर्माण किया जाए ताकि आधुनिक और पारम्परिक दोनों क्षेत्रों को पूँजी निधियां समान शर्तों पर एवं सरलता से उपलब्ध हो सकें। इससे दोनों क्षेत्रों में संसाधनों के गलत आवंटन में भी कमी होगी। सहकारिताओं और साहूकारों दोनों को समान शर्तों पर ऋण निधियों की असीमित आपूर्ति प्रदान करके पारम्परिक क्षेत्र में ब्याज दर कम की जाए ताकि वे छोटे उधारकर्ताओं से कम ब्याज दरें लेने के लिए प्रतिस्पर्द्धा कर सकें।
2. **संगठित और गैर-संगठित मुद्रा-बाजारों का एकीकरण (Integration of Organised and**

Unorganised Money Markets): वित्तीय द्वैतवाद को कम करने के लिए संगठित और गैर-संगठित मुद्रा बाजारों का एकीकरण किया जाना चाहिए। इसके लिए व्यापारिक बैंकों को प्रेरित किया जाए कि वे अपनी शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में खोलें। भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और अग्रणी बैंकों की स्थापना द्वारा ऐसा किया गया है।

3. **सहकारिता का सुदृढ़ीकरण (Strengthening of Cooperatives):** सहकारी समितियों और सहकारी बैंकों को सुदृढ किया जाए ताकि ये साहूकारों और देशी बैंकरों से अधिक प्रभावी ढंग से प्रतिस्पर्धा कर सकें।
4. **बहु-एजेन्सी दृष्टिकोण (Multi-agency Approach):** गैर-संगठित ग्रामीण क्षेत्र में बहु-एजेन्सी दृष्टिकोण अपनाया जाए और ऐसे क्षेत्रों में ऋण, बीज, खाद, उपकरण, पशु इत्यादि उपलब्ध कराये जाएं एवं विपणन और व्यापार सुविधाएं भी प्रदान की जाएं।
5. **शासकीय ब्याज-दर में वृद्धि (Raising Official Interest Rate):** प्रो. मिंट ने सुझाव दिया है कि ऐसे राष्ट्रों द्वारा अपनी मौजूदा पूँजी निधियों के अभाव को दर्शाने के लिए अपने संगठित ऋण बाजारों की शासकीय ब्याज दरों को काफी ऊंचा बढ़ाया जाए। इससे एकीकृत घरेलू पूँजी बाजार के विकास को प्रोत्साहन मिलेगा और इस प्रक्रिया से देश के भीतर और विदेश से बचतों को प्रभावपूर्ण ढंग से आकर्षित किया जा सकता है। इससे साहूकारों द्वारा गैर-संगठित ऋण बाजार को पुनः उधार देने हेतु बचतों की उपलब्ध पूर्ति को ऋणों की मांग, जिसमें निधियों की मांग भी शामिल है, के बराबर करने में सहायता मिलेगी।

20.3.2 मिर्डल का चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत (Circular Causality Theory of Myrdal)

नोबल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री **प्रो. गुन्नार मिर्डल** ने अपनी पुस्तक **'Economic Theory and Under-developed Regions'** में अर्द्धविकसित देशों के अल्पविकास के कारणों की व्याख्या एक नए दृष्टिकोण से की। जिसके अनुसार **चक्रीय संचयी कार्यकारण** एवं **अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effect)** के कारण अर्द्धविकसित और विकसित देशों के बीच एक दुश्चक्र (Vicious Circle) पैदा हो जाता है जो अर्द्धविकसित एवं विकसित देशों के बीच आय की असमानता के अंतराल को बढ़ाता रहता है।

प्रो. मिर्डल ने अपने चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत के आधार पर स्पष्ट किया कि असमानताओं के सम्बन्ध में प्राचीन सैद्धांतिक स्थिर संतुलन की मान्यता सर्वथा गलत है। **प्रो. गुन्नार मिर्डल** का यह मत है कि वास्तविक जगत में इस प्रकार की स्थिति नहीं पायी जाती। यह आवश्यक नहीं है कि अर्थव्यवस्था में सदैव संतुलन स्थापित होता रहे। वास्तविकता यह है कि अर्थव्यवस्था में जब एक बार संतुलन भंग हो जाता है तो अर्थव्यवस्था निरंतर संतुलन से दूर हटती चली जाती हैं, क्योंकि असंतुलन का उदय करने वाले घटकों का संचयी प्रभाव होता है। विकास को प्रभावित करने वाले आकस्मिक घटकों में परस्पर संबंध एवं परस्पर निर्भरता होती है। ये घटक चक्राकार रूप में संचयी प्रवृत्ति लिये रहते हैं जिसके फलस्वरूप जब इनमें किसी एक घटक में कोई परिवर्तन होता है तो उसके प्रभावों से अन्य घटकों में परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार एक परिवर्तन दूसरे परिवर्तन का कारण एवं प्रभाव बन जाता है।

प्रो. गुन्नार मिर्डल ने अपने चक्राकार सिद्धांत एवं संचयी कारण एवं परिणाम के सिद्धांत को अमेरिका की नीग्रो समस्या की सहायता से स्पष्ट किया है। उन्होंने बताया है कि गोरे लोगों द्वारा पक्षपात के कारण नीग्रो लोगों के साथ अनेक विभेदात्मक नीतियों को विभिन्न क्षेत्रों में अपनाया जाता है। दूसरे नीग्रों लोगों का निम्न जीवन स्तर गोरे लोगों द्वारा अपनायी गयी विभेदात्मक नीतियों का ही परिणाम है फलतः नीग्रो लोगों में पायी जाने वाली गरीबी, अंधविश्वास, अज्ञानता, शिष्ट व्यवहार का अभाव इत्यादि के कारण उनके प्रति गोरे घृणा का ही दृष्टिकोण रखते हैं। दोनों बातों में परस्पर धनात्मक सह-संबंध है। इस प्रकार

गोरे लोगों का पक्षपात और नीग्रो लोगों की गरीबी दोनों एक-दूसरे के कारण हैं। इस अवस्था को हम किसी प्रकार स्थिर संतुलन की अवस्था नहीं कह सकते। इन परिस्थितियों में यदि उपयुक्त दो बातों में से किसी एक में बाह्य परिवर्तनों या अन्य कारणों से परिवर्तन होने शुरू हो जाते हैं तो यह प्रक्रिया धीरे-धीरे संचयी रूप प्राप्त कर लेती है ऐसी स्थिति में संपूर्ण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होता है।अतः मिर्डल का यह मत है कि विकास की इस प्रक्रिया में आर्थिक एवं सामाजिक सभी शक्तियां क्रियाशील होती हैं जो असंतुलन को जन्म देती एवं बढ़ाती हैं।

मिर्डल का विचार है कि आर्थिक विकास के कारण चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया उत्पन्न होती है जिससे असमानताओं का जन्म होता है। उनका सिद्धांत राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से अत्पन्न असमानताओं पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने निम्नलिखित दो धारणाओं का उपयोग किया है:

1. अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effects)
2. प्रसरण प्रभाव (Spread Effects)

मिर्डल ने **अतिनिर्यात प्रभाव** के अंतर्गत उन सभी प्रभावों को सम्मिलित किया है जो श्रम के देशांतरण, पूँजी प्रवाह एवं व्यापार के माध्यम से उत्पन्न होते हैं एवं आर्थिक व अनार्थिक सभी साधनों के मध्य चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया के कारण उत्पन्न होते हैं। ये प्रभाव आर्थिक विकास के प्रतिकूल होते हैं। आर्थिक विकास विस्तार केंद्रों से अन्य क्षेत्रों की ओर विस्तारशील गति से कुछ उपकेंद्र **प्रसरण प्रभावों** को प्रदर्शित करते हैं। प्रसरण प्रभाव आर्थिक विकास के अनुकूल होते हैं। मिर्डल के अनुसार प्रादेशिक असमानताओं का प्रमुख कारण अर्द्धविकसित देशों में प्रबल अतिनिर्यात प्रभाव एवं दुर्बल प्रसरण प्रभाव रहे हैं।

20.3.2.1 प्रादेशिक असमानताएं (Regional Inequalities)

मिर्डल के अनुसार प्रादेशिक असमानताओं की उत्पत्ति का आधार गैर- आर्थिक होता है। यह पूँजीवादी व्यवस्था से संबंध रखता है जो लाभ के उद्देश्य से संचालित होती है। लाभ के उद्देश्य के कारण उन क्षेत्रों का विकास होता है जहां लाभों की प्रत्याशाएं अधिक होती हैं, जबकि अन्य क्षेत्र अर्द्धविकसित रह जाते हैं। बाजार शक्तियां प्रादेशिक असमानताओं को घटाने के बजाय बढाती है। **मिर्डल** के शब्दों में, ***"यदि बात बाजार शक्तियों पर ही छोड दी जाये और उन्हें किन्हीं नीति हस्तक्षेपों से न रोका जाय तो औद्योगिक उत्पादन, व्यापार, बैंकिग, बीमा, नौवहन और वास्तव में वे सभी आर्थिक क्रियाएं जो विकासशील अर्थव्यवस्था को औसत से अधिक प्रतिफल प्रदान करती हैं कुछ स्थानों एवं प्रदेशों में एकत्रित हो जाती हैं और देश के शेष भागों को अनदेखा छोड़ देती हैं। ऐसी स्थिति में आर्थिक विषमता घटने के स्थान पर बढ़ती है।"***

20.3.2.2 देशांतर, पूँजीगतियों एवं व्यापार के अतिनिर्यात प्रभाव (The Backwash Effects of Migration, Capital Movements and Trade)

मिर्डल के अनुसार श्रम देशांतर, पूँजी प्रभाव एवं अंतर्खेत्रीय व्यापार विकसित एवं अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं के बीच असमानताओं को कम नहीं करते बल्कि बढ़ाते हैं। उन्होंने अपनी थीसिस में यह बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार श्रम का देशांतर, पूँजी प्रभाव व व्यापार के अतिनिर्यात प्रभाव पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास में बाधा डालते हैं और साथ ही संपूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास को धीमा करते हैं।

मिर्डल के चक्रीय एवं संचयी प्रक्रिया के अतिनिर्यात एवं प्रसरण प्रभाव एवं विषमताओं मे वृद्धि को एक सरल उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। माना A और B दो क्षेत्र हैं जो विकास की दृष्टि से बराबर हैं अर्थात दोनों में प्रति व्यक्ति आय, श्रम की उत्पादकता और मजदूरी बराबर है। श्रम एवं पूँजी व उत्पादन के अन्य साधनों का आवागमन A और B क्षेत्र के बीच स्वतंत्र रूप से होता है। दोनों क्षेत्रों के बीच व्यापार पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं है और एक ही मुद्रा प्रचलित है।

माना A क्षेत्र में लोहा व कोयला मिल जाने के कारण B क्षेत्र की अपेक्षा विकास तीव्र गति से होता है। फलतः असंतुलन का जन्म होता है। मिर्डल के अनुसार जब एक बार इस तरह की असंतुलन की प्रक्रिया जन्म ले लेगी तो कुछ ऐसी आर्थिक एवं सामाजिक शक्तियां क्रियाशील हो जायेंगी जो इस असंतुलन को और बल देंगी। फलतः लाभ प्राप्तकर्ता A क्षेत्र में संचयी विस्तार की प्रक्रिया शुरू हो जायेगी जबकि B क्षेत्र जो अलाभकारी स्थिति में है निरंतर संचयी रूप से पिछड़ता जाएगा। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया दूसरे देश अर्थात B क्षेत्र को क्षति पहुंचा कर ही होगी।

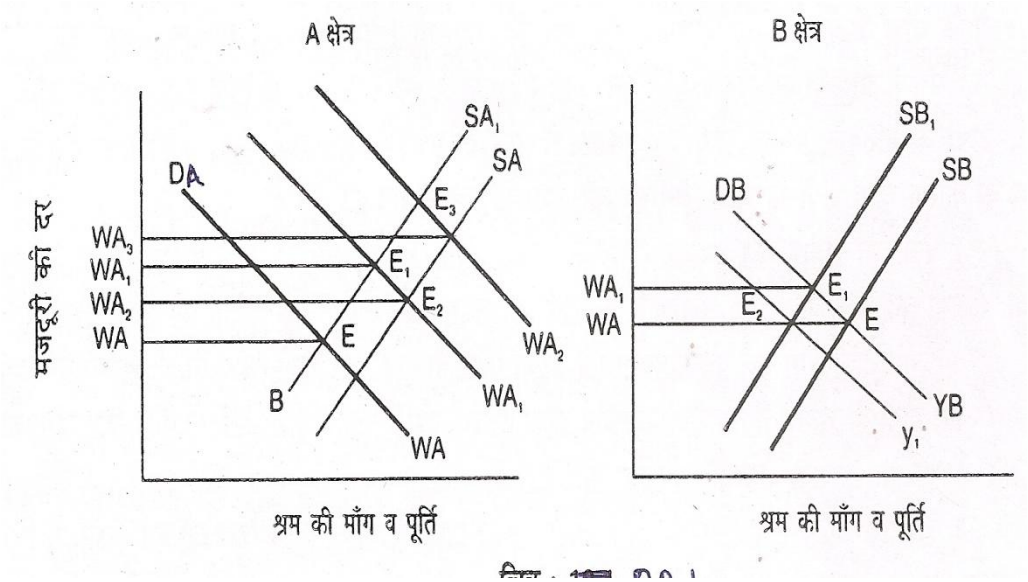

चित्र संख्या- 20.1

मिर्डल के मतानुसार यह मानना सर्वथा गलत होगा जैसा कि स्थैतिक विश्लेषण में हम मानते हैं कि असंतुलन अस्थायी होता है और कालांतर में संतुलन स्थापित हो जाता है। मांग एवं पूर्ति की शक्तियां परस्पर इस प्रकार से क्रियाशील होंगी कि संतलन पुनः स्थापित नहीं होगा बल्कि संचयी रूप से संतुलन दूर हटता जाएगा। मिर्डल के सिद्धांत को रेखाचित्र 20.1की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में A क्षेत्र विकसित और B क्षेत्र पिछड़ा हुआ है।

प्रारंभ में A क्षेत्र में मजदूरों का मांग वक्र DA और पूर्ति वक्र SA है। दोनों वक्र एक दूसरे को E बिंदु पर काटते हैं। अतः WA मजदूरी की दर है। B क्षेत्र में मजदूरों की मांग वक्र DB व पूर्ति वक्र SB है जो चित्र-20.1 एक दूसरे को E बिंदु पर काटते हैं, अतः B क्षेत्र में मजदूरी WB है। शुरू में दोनों क्षेत्रों में मजदूरी की दर बराबर है। अर्थव्यवस्था में विनियोग बढ़ने के कारण A क्षेत्र में मजदूरों की मांग बढ़ जाती है। फलतः मांग वक्र विवर्तित होकर DA हो जाता है और वह पूर्ति वक्र SA को बिंदु E_1 पर काटता है जिससे । क्षेत्र में मजदूरी की दर बढ़कर WA_1 हो जाती है। A क्षेत्र में बढ़ी हुई मजदूरी WA_1 की लालच में B क्षेत्र से मजदूरों का देशांतर A क्षेत्र की ओर होने लगेगा और B क्षेत्र में मजदूरों की पूर्ति कम हो जाने के कारण पूर्ति वक्र SB_1 हो जाएगा। यह पूर्ति वक्र (SA_1) मांग वक्र (DB) को E_1 बिंदु पर काटता है फलतः B क्षेत्र में मजदूरी की दर बढ़कर WB_1 हो जायेगी। दूसरी ओर A क्षेत्र में श्रम की पूर्ति बढ़ने से पूर्ति वक्र SA_1 हो जाता है जो मांग वक्र DA_1 को E_2 बिंदु पर काटता है। परिणामस्वरूप मजदूरी दर WA से कम होकर WB हो जायेगी।

स्थैतिक विश्लेषण की स्थिति में दोनों देशों में मांग व पूर्ति की शक्तियां परस्पर समायोजित हो

जायेंगी और संतुलन की स्थिति पुनः WA = WB पर कायम हो जायेगी। परंतु मिर्डल की संचयी प्रक्रिया की धारणा के अनुसार पूर्ति में परिवर्तन मांग को इस प्रकार एवं इस सीमा तक प्रभावित करेगी कि पुनः संतुलन की संभावना समाप्त हो जायेगी।

B क्षेत्र से श्रमिकों का A क्षेत्र में स्थानांतरण हो जाने से B क्षेत्र में वस्तुओं व सेवाओं की मांग कम होने लगती है जिससे मांग वक्र नीचे को सरक कर D हो जाता है जो पूर्ति वक्र SB_1 को E_1 बिंदू पर काटता है और श्रमिकों को सिर्फ न्यनूतम मजदूरी WA मिलने लगती है। अब A क्षेत्र में वस्तुओं व सेवाओ की मांग पहले से अधिक हो जाती है। फलतः इस क्षेत्र में कार्यरत उद्यमियों को नया उत्साह मिलता है। वस्तुओं की मांग बढ़ने से मांग वक्र DA से ऊपर सरक कर DA_1 हो जाता है। जो पूर्ति वक्र SB_1 को बिन्दु E_2 पर काटने से इस क्षेत्र में WA_3 के बराकर मजदूरी का निर्धारण होता है। उपर्युक्त पूरी प्रक्रिया A व B क्षेत्रों में संचयी रूप से चलती रहेगी और A क्षेत्र की स्थिति उत्तरोत्तर अच्छी एवं B क्षेत्र की स्थिति उत्तरोत्तर खराब होती जायेगी। इस प्रकार A क्षेत्र का आर्थिक विकास B क्षेत्र को हानि पहुंचाकर होगा और दोनों के बीच अंतराल बढ़ता जाएगा। अतः एक बार जब दोनों क्षेत्रों के बीच विकास संबंधी अंतर शुरू होगा तो विस्तार की संचयी प्रक्रिया लाभप्रद स्थिति वाले क्षेत्र (अर्थात A क्षेत्र) के पक्ष में होती चली जायेगी और उसका दूसरे क्षेत्र के ऊपर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा उसे मिर्डल ने अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effect) कहा है और इसके कारण दोनों क्षेत्रों के बीच विषमता का अंतराल बढ़ता जाएगा।

इसी प्रकार पूँजी का प्रवाह भी संचयी प्रक्रिया को और बल देकर प्रादेशिक विषमता को बढ़ाता है क्योंकि जो प्रदेश विकसित हो जाते हैं उनमें बढ़ी हुई मांग, विनियोग एवं पुनर्वियोग को प्रेरणा प्राप्त होती है एवं पूँजी की मांग भी बढ़ती है। ऐसी स्थिति में मांग एवं आय दोनों ही बढ़ती है। यह क्रम चलता रहता है एवं दूसरी ओर पिछड़े क्षेत्रों में पूँजी विनियोग की और कमी आ जाती है। फलतः पिछडे क्षेत्र और पिछड़ जाते हैं।

इसी प्रकार व्यापार भी पिछड़े क्षेत्रों की तुलना में विकसित क्षेत्रों को अधिक लाभ पहुंचाता है एवं पिछडे क्षेत्रों में केवल पिछड़ा कृषि क्षेत्र रह जाता है जबकि विकसित क्षेत्र में पूँजी, उद्योग, सेवा तीनों क्षेत्रों का तेजी से विकास होता है। **मिर्डल** के अनुसार, ***"व्यापार निर्धन देशों के सामने स्फीतिकारी अंतराल एवं दबाव, गरीबी में वृद्धि, भुगतान संतुलन की कठिनाई, उपभोक्ता वस्तुओं की कमी एवं गुणक प्रभाव के अभाव जैसी समस्या उत्पन्न कर देते हैं एवं पहले से विद्यमान छोटे-मोटे उद्योगों का गला घोटे देते हैं।"***

मिर्डल के अनुसार प्रसरण प्रभाव आर्थिक विस्तार के केन्द्रों के निकट के क्षेत्रों में फैल जाने की प्रवृत्ति रखते हैं। जिसके निम्नलिखित अनुकूल प्रभाव पडते हैं:

1. उस क्षेत्र के औद्योगिक विस्तार से कच्चे मालों व कृषि उपजों की मांग में वृद्धि होती है।
2. पिछड़े क्षेत्रों से प्रवाहित श्रम शक्ति को विकसित क्षेत्रों में अधिक आय प्राप्त होती है जिसका कुछ भाग पिछड़े क्षेत्रों को भेज दिया जाता है।
3. तकनीकी ज्ञान का विस्तार भी पिछड़े क्षेत्रों की ओर होने लगता है। मिर्डल का मानना है कि उपर्युक्त प्रसरण प्रभाव अर्द्धविकसित देशों में कमजोर होते हैं और उनमें अतिनिर्यात प्रभावों का प्रतिरोध करने की क्षमता कम रहती है।

अतः अर्द्धविकसित देशों के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण दुर्बल व कमजोर प्रसरण प्रभाव एवं प्रबल अतिनिर्यात प्रभाव रहे हैं जिससे संचयी प्रक्रिया में ***"निर्धनता स्वयं अपना कारण बन जाती है।"***

राज्य की भूमिका : मिर्डल ने निर्धनता के इस दुष्चक्र को तोड़ने के लिए राज्य की भूमिका को महत्व दिया है। उनके अनुसार अर्द्धविकसित देशों की सरकारों को चाहिए कि वे ऐसी समतावादी नीतियां अपनाएं जो अतिनिर्यात प्रभावों को दुर्बल बनाये और प्रसरण प्रभावों को शक्ति दे ताकि प्रादेशिक असमानताएं दूर हों और सतत आर्थिक प्रगति की आधरशिलाएं मजबूत हों।

20.3.2.3 अंतर्राष्ट्रीय असमानताएं (International Inequalities)

मिर्डल के अनुसार अर्द्धविकसित देशों में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के भी अतिनिर्यात प्रभाव होते हैं। **मिर्डल** ने कहा है कि ***"व्यापार धनवान एवं प्रगतिशील क्षेत्रों के पक्ष में एवं कम विकसित देशों के विपक्ष में कार्य करता है।"*** विकसित एवं अर्द्धविकसित देशों के बीच स्वतंत्र व्यापार पहले प्रकार के देशों को मजबूत बनायेगा एवं दूसरे प्रकार के देशों को गरीब बनायेगा। क्योंकि धनी देशों में प्रबल प्रसरण प्रभावों वाले निर्माणी उद्योगों का विस्तृत आधार होता है। औद्योगिक देशों का निर्यात माल सस्ता होने के कारण दस्तकारी देशों के निर्यातों को प्रतियोगिता में पीछे धकेल देंगे। ऐसी स्थिति में अर्द्धविकसित देश केवल प्राथमिक वस्तुओं के निर्यातक बन कर रह जाते हैं क्योंकि निर्यात बाजार में प्राथमिक वस्तुओं की मांगें लोचरहित होती हैं। अर्द्धविकसित देश विश्व बाजार कीमतों के उतार-चढ़ावों का लाभ भी प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

अर्द्धविकसित देशों में **पूँजी प्रवाह** भी अंतर्राष्ट्रीय असमानताओं को रोकने में असफल रहता है। अर्द्धविकसित देशों में संरचनात्मक ढांचे की कमी, असुरक्षा एवं लाभ की अनिश्चितता के कारण निवेशकर्ताओं में भी प्रेरणा की कमी रहती है जबकि पूँजीवादी एवं विकसित देशों में लाभ एवं सुरक्षा के कारण निवेशकर्ता प्रोत्साहित होते हैं राष्ट्रवाद के बढ़ते हुए वर्तमान युग में पूँजी का अंतरण भी कठिन सा होता जा रहा है।

श्रम देशांतर (Labour migration) : अर्द्धविकसित देशों में श्रम का देशांतर भी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सामंजस्यों की प्राप्ति के क्षेत्र में कोई सफलतम उपाय नहीं रहा है क्योंकि श्रम का देशांतर राष्ट्रवाद एवं राजनैतिक कारणों से दिनोदिन कठिन होता जा रहा है। वस्तुत: जिन घटकों ने विकसित देशों को उन्नत बनाया था वे ही घटक आज अर्द्धविकसित देशों में अतिनिर्यात प्रभावों का सृजन कर रहे हैं।

वर्तमान में प्रत्येक देश में आंतरिक दुर्बलताएं भी प्रसरण प्रभावों को प्रबल नहीं होने दे रही हैं। उदाहरण के लिए भारतवर्ष में आज बहुराष्ट्रीय कंपनियां, बड़े घराने, आयात अनिवार्यता एवं राजनैतिक भ्रष्टाचार प्रसरण प्रभावों के मार्ग में बहुत बड़े गतिरोधक हैं।

प्रो. मिर्डल ने अर्द्धविकसित देशों में व्याप्त मजबूत अतिनिर्यात प्रभावों का कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को माना है ऐसी स्थिति में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धांत की अवधारणा पर भी पुन: विचार की आवश्यकता है। मिर्डल के अनुसार अर्द्धविकसित देशों में व्यापारिक नीति विकसित देशों की व्यापारिक नीतियों से भिन्न होनी चाहिए। अर्द्धविकसित देशों को निर्यात में सहायतायुक्त स्वतंत्र व्यापारी एवं आयातों में प्रतिबंधवादी बनना चाहिए।

20.3.2.4 समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुन्नार मिर्डल का सिद्धांत अल्प-विकास के अन्य सिद्धांतों की तुलना में महत्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रथम, आर्थिक विकास संबंधी विस्तृत, क्रमबद्ध और विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के गहन अध्ययन एवं विश्लेषण पर आधारित है। दूसरे, यह स्पष्ट करता है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से किस प्रकार विकसित देश विकासशील देशों से लाभ प्राप्त कर रहे हैं। तीसरे, इस तथ्य पर भी प्रकाश डालता है कि अर्द्धविकसित देशों में प्रसरण प्रभाव किस प्रकार अतिनिर्यात प्रभावों के दुष्प्रभावों से मंद हो जाते हैं। चौथे, इससे इस तथ्य का भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि किस प्रकार एक देश की असमानता दूसरे देश को प्रभावित कर रही है।

20.3.2.5 सिद्धांत के दोष (Demerits of this Theory)

उपर्युक्त गुणों के होते हुए भी मिर्डल के सिद्धांत की निम्नलिखित आधारों पर आलोचनाएं की जाती है :

1. इस सिद्धांत में केवल पूँजी प्रवास एवं व्यापार को ही असमानता का आधार बनाया है जबकि असमानता के लिए अन्य तत्व भी उत्तरदायी है।
2. मिर्डल ने आंतरिक एवं बाह्य असमानताओं के अनुपात का समावेश नहीं किया कि कितनी मात्रा में

इनका प्रभाव पड़ता है।

3. यह सिद्धांत अर्थव्यवस्था में ह्रासमान प्रतिफल नियम की उपस्थिति को ध्यान में नहीं रखता है।

20.4 अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. मिर्डल के अनुसार अल्प विकसित देशों में अतिनिर्यात प्रभाव ..... होता है। (प्रबल **या** निर्बल)
2. मिर्डल के अनुसार प्रादेशिक असमानताओं की उत्पत्ति का आधार ..... होता है। (गैर आर्थिक **या** गैर सामाजिक)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथनों का चुनाव कीजिए-

1. 'वित्तीय द्वैतवाद' के सिद्धान्त का प्रतिपादन गुन्नार मिर्डल द्वारा किया गया था।
2. वित्तीय द्वैतवाद से अभिप्राय है- अल्प विकसित राष्ट्रों में संगठित और गैर-संगठित मुद्रा बाजारों में विभिन्न ब्याज दरों का सहअस्तित्व।
3. चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत का प्रतिपादन गुन्नार मिर्डल ने किया था।

20.5 सारांश (Summary)

प्रो. मिंट एवं **गुन्नार मिर्डल** के अल्पविकास के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है अल्प-विकास के सिद्धांतों में वित्तीय द्वैतवाद के सिद्धांत एवं गुन्नार मिर्डल के चक्रीय कार्यकारण सिद्धात का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रो. मिंट ने वित्तीय द्वैतवाद के सिद्धांत में एक अल्पविकसित राष्ट्र के मुद्रा बाजार में वित्तीय द्वैतवाद के विद्यमान होने से उस राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या की एवं इन्हें कम करने हेतु उपयुक्त सुझाव भी दिये। मिर्डल के मतानुसार आर्थिक विकास के कारण चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया उत्पन्न होती है जिससे असमानताओं का जन्म होता है। उनका सिद्धांत राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से उत्पन्न असमानताओं पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने अतिनिर्यात प्रभाव एवं प्रसरण प्रभाव की धारणाओं का उपयोग किया है। अनेक गुणों के होते हुए भी मिर्डल के सिद्धांत की आलोचनाएं भी की जाती है ।

20.6 शब्दावली (Glossary)

- **वित्तीय द्वैतवाद (Financial Dualism) :** वित्तीय द्वैतवाद से अभिप्राय है- अल्प विकसित राष्ट्रों में संगठित और गैर-संगठित मुद्रा बाजारों में विभिन्न ब्याज दरों का सह-अस्तित्व। पारम्परिक क्षेत्र के असंगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें आधुनिक क्षेत्र के संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं।
- **मुद्रा बाजार (Money Market) :** मुद्रा बाजार वह बाजार अथवा क्षेत्र है जहाँ अल्पकालीन ऋणों का लेनदेन होता है। मुद्रा बाजार संगठित या असंगठित हो सकता है।
- **संगठित मुद्रा बाजार (Organised Money Market) :** संगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें कम एवं प्रचुर मात्रा में साख सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। इसमें केन्द्रीय बैंक, वाणिज्यिक बैंक, सहकारी समितियां और बैंक, विदेशी बैंक एवं अन्य वित्तीय संस्थाएं जिनमें कृषि सम्बन्धी वित्त निगम, औद्योगिक वित्त निगम, बीमा कम्पनियां और विकास बैंक शामिल होते हैं।
- **गैर-संगठित मुद्रा बाजार (Unorganised Money Market):** गैर-संगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं। इसमें देशी बैंकर्स, साहूकार, पैशेवर और गैर-पेशेवर व्यापारी, सौदागार, जमींदार, मित्र और सगे-सम्बन्धी अधिव्यवसायी, निधियां और चिटफंड आदि शामिल होते हैं।

- **काला बाजार (Black Market) :** जब सरकारी हस्तक्षेप के परिणामस्वरुप किसी वस्तु की कीमत उसके साम्य स्तर से काफी नीचे तय का दी जाती है एवं विक्रेताओं को निर्धारित कीमत पर ही बेचने के लिये विवष किया जाता है तो पूर्ति की अपेक्षा मांग के आधिक्य के कारण अनधिकृत रुप से वह वस्तु काले बाजार में काफी ऊँची कीमत पर बिकनी प्रारंभ हो जाती है। ऐसी दषा में विकेता वस्तु को निर्धारित कीमत पर न बेचकर काले बाजार में बेचकर भारी लाभ कमाते हैं।
- **काली मुद्रा (Black Money) :** ऐसा धन जिसकी उत्पत्ति अवैधानिक गतिविधियों के कारण हुई हो। तस्करी, करों की चोरी, काला-बाजारी आदि ऐसी गतिविधियां हैं जिनको गैर कानूनी माना जाता है। इनसे प्राप्त आय पर कोई भी कर नहीं चुकाया जाता। काले धन से की गई खरीद व बिकी से प्राप्त मुनाफे पर कोई आय कर नहीं चुकाया जाता, इस कारण इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।
- **पूँजी निर्माण (Capital Formation) :** कुल आय में से पृथक किया गया वह धन जिसे उद्योगों, कृषि, सेवा आदि क्षेत्रों में उत्पादन बढाने हेतु लगाया जाता है।
- **पूँजी बाजार (Capital Market) :** पूँजी बाजार में शेयरों, ऋण-पत्रों एवं अन्य प्रकार की वित्तीय प्रतिभूतियों का कय-विक्रय किया जाता है। इसमें व्यक्तियों, संस्थाओं, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के अतिरिक्त विदेषी निवेषकों एवं बैंकों की सहभागिता होती है। नए शेयरों का निर्गम भी प्राय: मर्चेट बैंकरों द्वारा पूँजी बाजार के माध्यम से ही किया जाता है।
- **अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effect) :** अतिनिर्यात प्रभाव के अंतर्गत उन सभी प्रभावों को सम्मिलित किया जाता है जो श्रम के देशांतरण,पूँजी प्रवाह एवं व्यापार के माध्यम से उत्पन्न होते हैं एवं आर्थिक व अनार्थिक सभी साधनों के मध्य चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया के कारण उत्पन्न होते हैं। ये प्रभाव आर्थिक विकास के प्रतिकूल होते हैं।
- **प्रसरण प्रभाव (Spread Effects) :** आर्थिक विकास विस्तार केंद्रों से अन्य क्षेत्रों की ओर विस्तारशील गति से कुछ उपकेंद्र प्रसरण प्रभावों को प्रदर्शित करते हैं। प्रसरण प्रभाव आर्थिक विकास के अनुकूल होते हैं।

20.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. प्रबल, 2. गैर आर्थिक,

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथनों का चुनाव कीजिए-

1. असत्य, 2. सत्य, 3. सत्य

20.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची)Bibliography)

- झिंगन, एम. एल. : ***"विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन",*** वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 1903
- सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमार: ***"विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन"*** राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1908
- सिन्हा, वी. सी. : ***"आर्थिक संवृद्धि और विकास"***, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, 1907
- Agarwal, R. C. : ***"Economics of Development and Planning"*** Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 1907
- Taneja, M. L. & Myer R. M. : ***"Economics of Development and Planning"***

Vishal Publishing Co., Delhi, 1910

20.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- Myrdal, G.: *"Economic Theory and Under-developed Regions"* 1957
- Myint, H. M.: *"Economic Theory and the Underdeveloped Countries"*
- Meier ,G.M.: *"Leading Issues in Economic Development"* , Oxford University Press, Delhi ,1989
- Lewis, W. Arthur : *"Economic Development with Unlimited Supplies of Labour"* (1954) Reprinted in A.N.Agrawal and S.P.Singh (ed.) -"*The Economics of Underdevelopment" (1969)*
- Meier and Baldwin : *"Economic Development"*
- Kindleberger C. P. : *"Economic Development"*
- Misra, S. K. & Puri, V. K. : "*Economic Development and Planning"*

20.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. वित्तीय द्वैतवाद से आप क्या समझते हैं? वित्तीय द्वैतवाद के एक विकासशील अर्थव्यवस्था पर कौन-से कुप्रभाव पड़ते हैं? उनकी व्याख्या कीजिए और दूर करने के उपाय सुझाए।
2. मिंट के वित्तीय द्वैतवाद सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
3. मिर्डल के चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।